मोतीलाल बनारसीदास

प्रधान कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली–७

शाखाएँ : (१) चौक, वाराणसी (उ० प्र०)

(२) अशोक राजपथ, पटना–४

प्रथम संस्करण, वाराणसी १९७७

मूल्य रु० १२–००

श्री सुन्दरलाल जैन, मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी द्वारा प्रकाशित
तथा केशव मुद्रणालय, सुधाकर रोड, खजुरी, वाराणसी द्वारा मुद्रित।

ग्रन्थ-परिचय

भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व-प्राप्ति (ई० पूर्व ५८८) से लेकर महापरिनिर्वाण-पर्यन्त (ई० पूर्व ५४३) तक जो कुछ उपदेश दिया, सब मौखिक ही। उन्होंने किसी ग्रन्थ का न तो प्रणयन किया और न ग्रन्थ रूप में किसी उपदेश विशेष को दिया। उन्होंने समय-समय पर जो कुछ उपदेश दिया, उसे उनके शिष्य कंठाग्र करते आए और उनके महापरिनिर्वाण के ही वर्ष में, एक मास के ही उपरान्त राजगृह की सप्तपर्णी नामक गुहा में ५०० भिक्षुओं ने प्रथम संगीति का आयोजन किया। उस संगीति में भगवान् बुद्ध के सम्पूर्ण उपदेशों का संकलन किया गया और पठन-पाठन की सुविधा के लिए उन्हें तीन पिटकों में बाँट दिया गया जिसे 'तिपिटक' (=त्रिपिटक) कहते हैं। तिपिटक ही बौद्ध-धर्म की प्राचीनतम मूल थाती है। इसके ये तीन पिटक इस प्रकार हैं—

(१) सुत्त पिटक, (२) विनय पिटक, (३) अभिधम्म पिटक।

१. सुत्त पिटक—निम्नलिखित पाँच निकायों में विभक्त है—

(१) दीघ निकाय, (२) मज्झिम निकाय, (३) संयुत्त निकाय, (४) अंगुत्तर निकाय, (५) खुद्दक निकाय।

खुद्दक निकाय—में १५ ग्रन्थ हैं—

(१) खुद्दकपाठ, (२) धम्मपद, (३) उदान, (४) इतिवुत्तक, (५) सुत्तनिपात, (६) विमानवत्थु, (७) पेतवत्थु, (८) थेरगाथा, (९) थेरीगाथा, (१०) जातक, (११) निद्देस, (१२) पटिसम्भिदामग्ग, (१३) अपदान, (१४) बुद्धवंस, (१५) चरियापिटक।

२. विनय पिटक—निम्नलिखित पाँच भागों में विभक्त है—

(१) पाराजिका, (२) पाचित्तिय, (३) महावग्ग, (४) चुल्लवग्ग, (५) परिवार।

३. अभिधम्म पिटक में निम्नलिखित सात ग्रन्थ हैं—

(१) धम्मसंगणी, (२) विभंग, (३) धातुकथा, (४) पुग्गलपञ्ञत्ति, (५) कथावत्थु, (६) यमक, (७) पट्ठान।

इससे स्पष्ट है कि सुत्तनिपात खुद्दक निकाय का पाँचवाँ ग्रन्थ है। धम्मपद की भाँति यह भी पालि वाङ्मय का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें ५ वग्ग और ७० सुत्त हैं। भाणवार की गणना से ८ भाणवार हैं। वत्थुगाथा और पारायण सुत्त संगीतिकारक भिक्षुओं द्वारा रचित अंश हैं, अतः इन्हें सुत्तों में नहीं गिना गया है और पारायणवग्ग में कुल सुत्तों की संख्या १६ मानी गई है। यह प्राचीन परम्परा है। अट्ठकथा में कहा गया है—"सुत्ततो उरगवग्गे द्वादससुत्तानि, चूळवग्गे चुद्दस, महावग्गे द्वादस, अट्ठकवग्गे सोळस, पारायणवग्गे सोळसाति सत्तति सुत्तानि।' अर्थात् सुत्त के अनुसार उरगवग्ग में बारह सुत्त, चूळवग्ग में चौदह, महावग्ग में बारह, अट्ठकवग्ग में सोलह, पारायणवग्ग में सोलह—इस प्रकार सत्तर सुत्त हैं।' किन्तु वत्थुगाथा और पारायणसुत्त को लेकर कुल सुत्तों की संख्या ७२ होती है।

सुत्तनिपात का नामकरण—'सुत्तनिपात' यह नाम संगीतिकारक भिक्षुओं द्वारा रखा गया है। सुत्त बौद्धधर्म का पारिभाषिक शब्द है। नवांग बुद्ध-वचनों में यह पहला ही है। त्रिपिटक में भगवान् के जो उपदेश सुत्त नाम से गद्य या पद्य में संगृहीत हैं, वे सभी सुत्त कहलाते हैं। चाहे वे बड़े हों या छोटे सभी सुत्त हैं, जिन्हें हम सूत्र कहते हैं, किन्तु सूक्त नहीं। अट्ठकथा में कहा गया है— "दोनों विभंग (=भिक्खु विभंग तथा भिक्खुनी विभंग), स्कन्धक (=महावग्ग और चुल्लवग्ग), परिवार, सुत्तनिपात में मङ्गलसुत्त, रतनसुत्त, नालकसुत्त और तुवटकसुत्त। अन्य भी जो सुत्त नाम से तथागत के वचन हैं—उन्हें सुत्त जानना चाहिए।" परमत्थजोतिका में कहा गया है—

'सुवुत्ततो सूचनतो अत्थानं सुट्ठु ताणतो।
सवणा सूदना चेव यस्मा सुत्तं पवुच्चति॥"

अर्थ—चूँकि ये भली प्रकार कहे जाने, सूचित करने, अर्थों को अच्छी तरह से प्रगट करने और श्रवण मात्र से आनन्द देने वाले हैं, इसलिए सुत्त कहलाते हैं।

यायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि, धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतन्ति।

वसलसुत्तं निट्ठितं।

८—मेत्त-सुत्तं (१, ८)

करणीयमत्थकुसलेन, यं तं सन्तं पदं अभिसमेच्च।
सक्को उजूच सूजू[1] च, सुवचो चस्स मुदु अनतिमानी ॥ १ ॥
सन्तुस्सको च सुभरो च, अप्पकिच्चो च सल्लहुकवुत्ति।
सन्तिन्द्रियो च निपको च, अप्पगब्भो कुलेसु अननुगिद्धो ॥२॥
न च खुद्दं समाचरे किञ्चि, येन विञ्ञू परे उपवदेय्युं।
सुखिनो वा खेमिनो होन्तु, सब्बे सत्ता[2] भवन्तु सुखितत्ता ॥३॥
ये केचि पाणभूतत्थि, तसा वा थावरा अनवसेसा।
दीघा वा ये महन्ता वा, मज्झिमा रस्सका'णुकथूला ॥ ४ ॥
दिट्ठा वा[3] येव अदिट्ठा, ये च दूरे वसन्ति अविदूरे।
भूता वा सम्भवेसी वा, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ॥५॥
न परो परं निकुब्बेथ, नातिमञ्ञेथ कत्थचि नं कञ्चि[4]।
ब्यारोसना पटिघसञ्ञा, नाञ्ञमञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय्य ॥६॥
माता यथा नियं पुत्तं, आयुसा एकपुत्तमनुरक्खे।
एवम्पि सब्बभूतेसु मानसं भावये अपरिमाणं ॥ ७ ॥
मेत्तं च सब्बलोकस्मिं, मानसं भावये अपरिमाणं।
उद्धं अधो च तिरियं च, असम्बाधं अवेरं असपत्तं ॥ ८ ॥
तिट्ठं चरं निसिन्नो वा, सयानो वा यावतस्स विगतमिद्धो[5]।
एतं सतिं अधिट्ठेय्य, ब्रह्ममेतं विहारं इधमाहु ॥ ९ ॥
दिट्ठिं च अनुपगम्म सीलवा, दस्सनेन सम्पन्नो।
कामेसु विनेय्य[6] गेधं, न हि जातु गब्भसेय्यं पुनरेतीति ॥१०॥

मेत्तसुत्तं निट्ठितं।

---

१. सुहुजू—म०, स्या०। २. सब्बसत्ता—म०। ३. व—म०। ४. न कञ्चि—म०; नं किञ्चि—स्या०। ५. वितमिद्धो—म०। ६. विनय—म०।

प्रकाशित किया गया। यह मैं आप गौतम को शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघ की भी। मुझे आप गौतम आज से जीवन-पर्यन्त शरणागत उपासक धारण करें।"

वसलसुत्त समाप्त।

८—मेत्तसुत्त (१, ८)

[**सभी प्राणियों के प्रति मैत्री-भावना 'ब्रह्मविहार' कहलाता है।**]

शान्ति-पद की प्राप्ति चाहने वाले, कल्याण-साधन में निपुण मनुष्य को चाहिए कि वह ऋजु और अत्यन्त ऋजु बने। उसकी बात सुन्दर, मृदु और विनीत हो ॥ १ ॥

वह सन्तोषी हो, सहज ही-पोष्य हो और सादा जीवन बिताने वाला हो। उसकी इन्द्रियाँ शान्त हों। वह चतुर हो, अप्रगल्भ हो और कुलों में अनासक्त हो ॥ २ ॥

ऐसा कोई छोटा से भी छोटा कार्य न करे जिसके लिए दूसरे विज्ञ लोग उसे दोष दें। (और इस प्रकार मैत्री करे—) सब प्राणी सुखी हों, क्षेमी हों और सुखितात्मा हों ॥ ३ ॥

जंगम या स्थावर, दीर्घ या महान्, मध्यम या ह्रस्व, अणु या स्थूल, दृष्ट या अदृष्ट, दूरस्थ या निकटस्थ, उत्पन्न या उत्पन्न होने वाले जितने भी प्राणी हैं, वे सभी सुखपूर्वक रहें ॥ ४—५ ॥

एक दूसरे की वंचना न करे। कभी किसी का अपमान न करे। वैमनस्य या विरोध से एक दूसरे के दुःख की इच्छा न करे ॥ ६ ॥

माता जिस प्रकार जान की परवाह न कर अपने इकलौते पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार प्राणिमात्र के प्रति असीम प्रेम-भाव बढ़ावे ॥ ७ ॥

बिना बाधा, वैर और शत्रुता के ऊपर, नीचे और तिरछे सारे संसार के प्रति असीम प्रेम बढ़ावे ॥ ८ ॥

खड़े रहते, चलते, बैठते या सोते, जब तक जागृत रहे, तब तक इस प्रकार की स्मृति बनाये रहे। इसी को ब्रह्मविहार कहते हैं ॥ ९ ॥

ऐसा नर किसी मिथ्यादृष्टि में न पड़, शीलवान् हो, विशुद्ध दर्शन से युक्त हो काम-तृष्णा का नाश कर पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है ॥ १० ॥

मेत्तसुत्त समाप्त।

९—हेमवत-सुत्तं (१, ९)

अज्जपण्णरसो उपोसथो (इति सातागिरो यक्खो),
दिब्या[1] रत्ति उपट्ठिता।
अनोमनामं सत्थारं, हन्द पस्साम गोतमं ॥ १ ॥
कच्चि मनो सुपणिहितो (इति हेमवतो यक्खो),
सब्बभूतेसु तादिनो।
कच्चि इट्ठे अनिट्ठे च, सङ्कप्पस्स वसीकता ॥ २ ॥
मनो चस्स सुपणिहितो (इति सातागिरो यक्खो), सब्बभूतेसु तादिनो।
अथो इट्ठे अनिट्ठे च, सङ्कप्पस्स वसीकता ॥ ३ ॥
कच्चि अदिन्नं नादियति (इति हेमवतो यक्खो),
कच्चि पाणेसु सञ्ञतो।
कच्चि आरा पमादम्हा, कच्चि झानं न रिञ्चति ॥ ४ ॥
न अदिन्नं आदियति (इति सातागिरो यक्खो),
अथो पाणेसु सञ्ञतो।
अथो आरा पमादम्हा, बुद्धो झानं न रिञ्चति ॥ ५ ॥
कच्चि मुसा न भणति (इति हेमवतो यक्खो),
कच्चि न खीणब्यप्पथो।
कच्चि वेभूतियं नाह, कच्चि सम्फं न भासति ॥ ६ ॥
मुसा च सो न भणति (इति सातागिरो यक्खो), अथो न खीणब्यप्पथो।
अथो वेभूतियं नाह, मन्ता अत्थं सो[2] भासति ॥ ७ ॥
कच्चि न रज्जति कामेसु (इति हेमवतो यक्खो),
कच्चि चित्तं अनाविलं।
कच्चि मोहं अतिक्कन्तो, कच्चि धम्मेसु चक्खुमा ॥ ८ ॥
न सो रज्जति कामेसु (इति सातागिरो यक्खो),
अथो चित्तं अनाविलं।
सब्बं मोहं[3] अतिक्कन्तो, बुद्धो धम्मेसु चक्खुमा ॥ ९ ॥

१. दिब्बा—म०। २. अत्थं च—म०। ३. सब्बमोहं—म०।

९-हेमवतसुत्त (१,९)

[बुद्ध-महिमा]

सातागिर यक्ष—आज पूर्णिमा[1] का उपोसथ है। दिव्य रात्रि उपस्थित है। श्रेष्ठ नाम वाले शास्ता का हम जरा दर्शन करें ॥ १ ॥

हेमवत यक्ष— क्या उनका मन एकाग्र है ? क्या सभी प्राणियों के प्रति वे समान हैं ? क्या प्रिय और अप्रिय विषयों में उनके संकल्प वश में हैं ? ॥ २ ॥

सातागिर यक्ष—उनका मन एकाग्र है। वे सभी प्राणियों के प्रति समान हैं। और उन्होंने प्रिय तथा अप्रिय विषयों में अपने संकल्प को वश में कर लिया है ॥ ३ ॥

हेमवत यक्ष— क्या वे चोरी नहीं करते ? क्या प्राणियों के प्रति संयमी हैं ? क्या वे प्रमाद से दूर रहते हैं ? क्या वे ध्यान से रिक्त नहीं रहते ? ॥ ४ ॥

सातागिर यक्ष—वे चोरी नहीं करते। वे प्राणियों के प्रति संयमी हैं। वे प्रमाद से दूर रहते हैं। बुद्ध ध्यान से रिक्त नहीं रहते ॥५॥

हेमवत यक्ष—क्या वे झूठ नहीं बोलते ? क्या वे कटु-वचन नहीं बोलते ? क्या वे चुगली तो नहीं खाते ? क्या वे बकवाद तो नहीं करते ? ॥६॥

सातागिर यक्ष—वे झूठ नहीं बोलते। वे कटु-वचन नहीं बोलते। वे चुगली नहीं खाते। वे कम बोलते हैं और जो बोलते हैं वह सार्थक ही ॥ ७ ॥

हेमवत यक्ष—क्या वे काम-भोगों में आसक्त नहीं होते ? क्या उनका चित्त निर्मल है ? क्या उन्होंने मोह त्याग दिया है ? क्या वे धर्मों में चक्षुष्मान् हैं ? ॥ ८ ॥

सातागिर यक्ष—वे काम-भोगों में आसक्त नहीं होते। उनका चित्त निर्मल है। सम्पूर्ण मोह को उन्होंने त्याग दिया है। बुद्ध धर्मों में चक्षुष्मान् हैं ॥ ९ ॥

---

१. आषाढ़ पूर्णिमा—अट्ठकथा।

कच्चि विज्जाय सम्पन्नो (इति हेमवतो यक्खो), कच्चि संसुद्धचारणो।
कच्चि'स्स आसवा खीणा, कच्चि नत्थि पुनब्भवो ॥ १० ॥
विज्जाय चेव सम्पन्नो (इति सातागिरो यक्खो), अथो संसुद्धचारणो।
सब्बस्स आसवा खीणा, नत्थि तस्स पुनब्भवो ॥ ११ ॥
सम्पन्नं मुनिनो चित्तं, कम्मना[1] व्यप्पथेन च।
विज्जाचरणसम्पन्नं हन्द पस्साम गोतमं ॥ १२ ॥
एणिजङ्घं किसं धीरं[2], अप्पहारं अलोलुपं।
मुनिं वनस्मिं झायन्तं, एहि पस्साम गोतमं ॥ १३ ॥
सीहं'वेकचरं नागं, कामेसु अनपेक्खिनं।
उपसङ्कम्म पुच्छाम, मच्चुपासा पमोचनं ॥ १४ ॥
अक्खातारं पवत्तारं, सब्बधम्मानपारगुं।
बुद्धं वेरभयातीतं, मयं पुच्छाम गोतमं ॥ १५ ॥
किस्मिं लोको समुप्पन्नो(इति हेमवतो यक्खो), किस्मिं कुब्बति सन्थवं[3]
किस्स लोको उपादाय, किस्मिं लोको विहञ्ञति ॥ १६ ॥
छस्सु लोको समुप्पन्नो (हेमवताति भगवा), छस्सु कुब्बति सन्थवं।
छन्नमेव उपादाय, छस्सु[4] लोको विहञ्ञति ॥ १७ ॥
कतमं तं उपादानं (इति हेमवतो), यत्थ लोको विहञ्ञति।
निय्यानं पुच्छितो ब्रूहि, कथं दुक्खा पमुच्चति ॥ १८ ॥
पंच कामगुणा लोके (इति भगवा), मनो छट्ठा पवेदिता।
एत्थ छन्दं विराजेत्वा, एवं दुक्खा पमुच्चति[5] ॥ १९ ॥
एतं लोकस्स निय्यानं, अक्खातं वो यथातथं।
एतं वो अहमक्खामि, एवं दुक्खा पमुच्चति ॥ २० ॥

---

१. कम्मुना—म०। २. वीरं—म०, सी०। ३. सन्धवं—क०। ४. छसु—म०, स्या०।
५. पमुच्चति—स्या०।

हेमवत यक्ष—क्या वे विद्या से युक्त हैं ? क्या वे शुद्ध आचरण वाले हैं ? क्या उनके आश्रव (=चित्त मल) क्षीण हो गए हैं ? क्या उनका पुनर्जन्म नहीं होगा ? ॥ १० ॥

सातागिर यक्ष—वे विद्या से युक्त हैं। वे शुद्ध आचरण वाले हैं। उनके सारे आश्रव क्षीण हो गए हैं। उनका पुनर्जन्म नहीं होगा ॥११॥

हेमवत यक्ष—मुनि का चित्त कर्म और वचन से सुसम्पन्न है। विद्या और आचरण से युक्त चलें हम गौतम का दर्शन करें ॥ १२ ॥

मृग के समान जंघे वाले, कृश, धीर, अल्पाहारी, चंचलता से रहित, वन में ध्यान करते हुए मुनि गौतम का आओ हम दर्शन करें ॥ १३ ॥

जंगल में अकेले विचरण करने वाले सिंह और हस्तिराज की भाँति काम-भोगों की कामना न करने वाले, गौतम के पास जाकर मृत्यु-पाश से मुक्ति के उपाय को पूछें ॥ १४ ॥

धर्म को बतलाने वाले, उसका प्रवर्तन करने वाले, सब धर्मों में पारंगत, वैर और भय से रहित हम गौतम से पूछते हैं ॥१५॥

हेमवत यक्ष—लोक किससे उत्पन्न हुआ है ? वह किससे मेलजोल करता है ? लोक का उपादान क्या है ? लोक किससे पीड़ित होता है ?॥१६

भगवान्—छः कारणों से लोक उत्पन्न हुआ है। छः से यह मेलजोल करता है। छः ही इसके उपादान हैं। छः से ही लोक पीड़ित होता है॥ १७ ॥

हेमवत यक्ष—वह कौन-सा उपादान है जहाँ लोक पीड़ित होता है ? हमारे प्रश्न का उत्तर दें कि उससे छुटकारा क्या है ? और दुःख से मुक्ति कैसे हो सकती है ? ॥ १८ ॥

भगवान्—लोक के पाँच काम-भोगों और छठाँ मन जो कहलाता है—इनमें आसक्ति (=राग) को छोड़कर दुःख से मुक्ति हो सकती है ॥१९॥

यही लोक का निस्तार है। मैंने तुम्हें इसे यथार्थ रूप में बतला दिया। मैं तुम्हें यही बतलाता हूँ, ऐसे ही दुःख से मुक्ति मिलती है ॥ २० ॥

को सूध तरति ओघं (इति हेमवतो), को'ध तरति अण्णवं ।
अप्पतिट्ठे अनालम्बे, को गम्भीरे न सीदति ॥ २१ ॥

सब्बदा सीलसम्पन्नो (इति भगवा), पञ्ञवा सुसमाहितो ।
अज्झत्तचिन्ती[1] सतिमा, ओघं तरति दुत्तरं ॥ २२ ॥

विरतो कामसञ्ञाय, सब्बसंयोजनातिगो ।
नन्दीभवपरिक्खीणो, सो गम्भीरे न सीदति ॥ २३ ॥

गम्भीरपञ्ञं निपुणत्थदस्सिं (इति हेमवतो), अकिञ्चनं कामभवे असत्तं ।
तं पस्सथ सब्बधि-विप्पमुत्तं, दिब्बे पथे कममानं महेसिं ॥ २४ ॥

अनोमनामं निपुणत्थदस्सिं, पञ्ञाददं कामालये असत्तं ।
तं पस्सथ सब्बविदुं सुमेधं, अरिये पथे कममानं महेसिं ॥२५॥

सुदिट्ठं वत नो अज्ज, सुप्पभातं सुहुट्ठितं ।
यं अद्दसाम सम्बुद्धं, ओघतिण्णमनासवं ॥ २६ ॥

इमे दससता यक्खा, इद्धिमन्तो यसस्सिनो ।
सब्बे तं सरणं यन्ति, त्वं नो सत्था अनुत्तरो ॥ २७ ॥

ते मयं विचरिस्साम, गामा गामं नगा नगं ।
नमस्समाना सम्बुद्धं, धम्मस्स च सुधम्मत'न्ति ॥ २८ ॥

हेमवतसुत्तं निट्ठितं ।

१०—आळवक-सुत्तं (१, १०)

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा आळवियं विहरति आळवकस्स यक्खस्स भवने । अथ खो आळवको यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—"निक्खम समणा" ति । "साधा—

१. अज्झत्तसञ्ञी—स्या०, क० ।

हेमवत यक्ष—यहाँ लोक रूपी वाढ़ को कौन पार करता है ? कौन भव-सागर को पार करता है ? बिना सहारा और अवलम्बन के गहरे समुद्र में कौन नहीं डूबता ? ॥ २१ ॥

भगवान्—सदा शील से युक्त, प्रज्ञावान्, एकाग्रचित्त, आध्यात्म-चिन्तन में लीन, स्मृतिमान् दुस्तर बाढ़ को पार कर जाता है ॥ २२ ॥

जो काम-भोगों के विचार से विरत है, सारे सांसारिक वन्धनों को पार कर लिया है. जिससे भव-तृष्णा क्षीण हो गई, वह गहरे समुद्र में भी नहीं डूबता ॥ २३ ॥

हेमवत यक्ष—गम्भीर प्रज्ञा से युक्त, निर्वाण-दर्शी, अकिंचन, काम-भव में अनासक्त, सभी प्रकार की वासनाओं से मुक्त, दिव्य-पथ पर चलने वाले इस महर्षि को देखो ॥ २४ ॥

श्रेष्ठ नाम वाले, निर्वाणदर्शी, प्रज्ञा देने वाले, काम-भोगों में अनासक्त, सर्वज्ञ, प्रज्ञावान्, आर्यपथ पर चलने वाले इस महर्षि को देखो ॥ २५ ॥

आज हमने बड़ा अच्छा देखा, आज सुप्रभात का उदय हुआ है । जो कि हम संसार-सागर को पार किए आश्रव-रहित सम्यक् सम्बुद्ध का दर्शन कर रहे हैं ॥ २६ ॥

ये एक हजार ऋद्धिमान् यशस्वी यक्ष आपकी शरण जाते हैं, आप हमारे श्रेष्ठ शास्ता (=गुरु) हैं ॥ २७ ॥

हम लोग गाँव से गाँव और पहाड़ से पहाड़ पर सम्बुद्ध और उनके सुदेशित धर्म को नमस्कार करते हुए विचरण करेंगे ॥ २८ ॥

हेमवतसुत्त समाप्त ।

१०—आळवकसुत्त (१, १०)

[बुद्ध-महिमा]

ऐसा मैंने सुना । एक समय भगवान् आलवी में आलवक यक्ष के भवन में विहार करते थे । तब आलवक यक्ष जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान् से यह कहा—"श्रमण ! निकल जाओ ।"

वुसो"ति भगवा निक्खमि। "पविस समणा"ति। "साधावुसो"ति भगवा पाविसि। दुतियम्पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच-"निक्खम समणा"ति। "साधावुसो"ति भगवा निक्खमि। "पविस समणा"ति। "साधावुसो"ति भगवा पाविसि। ततियम्पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच-"निक्खम समणा"ति। "साधावुसो"ति भगवा निक्खमि। "पविस समणा"ति "साधावुसो"ति भगवा पाविसि। चतुत्थम्पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच-"निक्खम समणा"ति। "न ख्वाहं तं, आवुसो, निक्खमिस्सामि, यं ते करणीयं तं करोही"ति। "पञ्हं तं, समण, पुच्छिस्सामि, सचे मे न ब्याकरिस्ससि चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हदयं वा ते फालेस्सामि, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपिस्सामी"ति। "न ख्वाहं तं, आवुसो, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय्य, हदयं वा फालेय्य, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपेय्य; अपि च त्वं, आवुसो, पुच्छ यदाकङ्खसी"ति। अथ खो आळवको यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि--

"किं सूध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं,
किं सु सुचिण्णो सुखमावहाति।
किं सु हवे सादुतरं रसानं,
कथं जीविं जीवितमाहु सेट्ठं" ॥१॥

सद्धीध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं,
धम्मो सुचिण्णो सुखमावहाति।
सच्चं हवे सादुतरं रसानं,
पञ्ञाजीविं जीवितमाहु सेट्ठं ॥२॥

ऐसे सुत्तों को एकत्र करके एक ग्रन्थ में संकलित करने से ही यह ग्रन्थ सुत्तनिपात कहलाता है :—

तथारूपानि सुत्तानि निपातेत्वा ततो ततो ।
सङ्गीतो च अयं तस्मा सङ्गमेवमुपागतो ॥

अर्थ—उस प्रकार के सुत्तों को स्थान-स्थान से लेकर यह संगीतिवद्ध किया गया है, इसीलिए इसका यह नाम (=सुत्तनिपात) पड़ा है।

संक्षेप में कहा जाय तो सुत्तनिपात का अर्थ सुत्तों का संग्रह है।

सुत्तनिपात की विशेषता—सुत्तनिपात में गद्यात्मक और पद्यात्मक—दोनों प्रकार के सुत्त हैं, किन्तु पद्यात्मक सुत्तों का बाहुल्य है। इन सुत्तों में बौद्धधर्म के सिद्धान्तों की बड़ी मार्मिकता के साथ वर्णन किया गया है। स्वर्गीय पूज्य भदन्त जगदीश काश्यप जी के शब्दों में—"बुद्धधर्म को अपने मौलिक रूप में समझने के लिए सुत्तनिपात एक आदर्श ग्रन्थ है। हृदय को स्पर्श करने, संवेग उत्पन्न करने और संसार से खींचकर परमार्थ को प्राप्ति में लगा देने की अद्भुत क्षमता इसके अंश-अंश में विद्यमान है। सारे त्रिपिटक से चुनकर महाराज अशोक ने सात ऐसे मुख्य सुत्तों के नाम अपने भाब्रू शिलालेख में खोदवाये हैं[1] जिन्हें सभी को पढ़ने तथा आचरण करने की प्रेरणा दी है। इन सात मुख्य सुत्तों में

---

१. भाब्रू-शिलालेख इस प्रकार है—

"पियदसि लाजा मागधं संघं अभिवादेतूनं आहा अपावाधतं च फासु-विहालतं चा। विदिते वे भंते आवतके हमा बुधसि धंमसि संघसी ति गालवे च प्रसादे च। ए केचि भंते भगवता बुधेन भासिते सर्वे से सुभासिते वा। ए चु खो भंते हमियाये दिसेया हेवं सधंमे चिलठिकीते होसती ति अलहामि हकं तं वातवे। इमानि भंते धंम पलियायानि विनयसमुकसे अलिय वसाणि अनागत-भयानि मुनिगाथा मोनेयसूते उपतिसपसिने ए चा लाघुलोवादे मुसावादं अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते एतानि भंते धंमपलियायानि इछामि किति बहुके भिखुपाये चा भिखुनिये चा अभिखिनं सुनेयु चा उपधालयेयू च। हेवंमेवा उपासका चा उपासिका चा। एतेनि भंते इमं लिखापयामि अभिप्रेतं मे जानंतु ति।"—अशोक के अभिलेख, पृष्ठ ११५।

"वहुत अच्छा आवुस !" कहकर भगवान् निकल गए।
"श्रमण ! भीतर आओ।"
"बहुत अच्छा आवुस !" कहकर भगवान् भीतर गए।
दूसरी बार भी आलवक यक्ष ने भगवान् से यह कहा—
"श्रमण ! निकल जाओ।"
"वहुत अच्छा आवुस !" कह कर भगवान् निकल गए।
"श्रमण ! भीतर आओ।"
"वहुत अच्छा आवुस !" कहकर भगवान् भीतर गए।
तीसरी बार भी आलवक यक्ष ने भगवान् से यह कहा—
"श्रमण ! निकल जाओ।"
बहुत अच्छा आवुस !" कहकर भगवान् निकल गए।
"श्रमण ! भीतर आओ।"
"वहुत अच्छा आवुस !" कहकर भगवान् भीतर गए।
चौथी बार भी आलवक यक्ष ने भगवान् से यह कहा—
"श्रमण ! निकल जाओ।"
"आवुस ! मैं नहीं निकलूँगा। जो तुझे करना हो करो।"

"श्रमण ! मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा, यदि तुम मेरे प्रश्न का उत्तर न दे सकोगे तो तेरे चित्त को विक्षिप्त कर दूँगा या तेरे हृदय को फाड़ डालूँगा अथवा पैरों से पकड़कर गंगा के उस पार फेंक दूँगा।"

"आवुस ! मैं देवता, मार और ब्रह्मा सहित श्रमण और ब्राह्मणों वाली प्रजा तथा देव-मनुष्यों वाले लोक में ऐसे किसी को नहीं देखता जो मेरे चित्त को विक्षिप्त कर दे या हृदय को फाड़ डाले अथवा पैरों से पकड़ कर गंगा के उस पार फेंक दे। फिर भी तुम आवुस ! जो कुछ चाहते हो पूछो।"

तब आलवक यक्ष ने भगवान् से गाथा में कहा—

"इस संसार में पुरुष का कौन-सा धन श्रेष्ठ है ? किसका अभ्यास सुखदायक होता है ? रसों में कौन स्वादिष्टतर होता है ? कैसा जीवन श्रेष्ठ जीवन कहलाता है ?" ॥ १ ॥

भगवान्—इस संसार में पुरुष का श्रद्धा-धन ही श्रेष्ठ है। भली प्रकार अभ्यास किया गया धर्म सुखदायक होता है। सत्य सभी रसों में स्वादिष्टतर है। प्रज्ञाजीवी का जीवन श्रेष्ठ कहलाता है ॥ २ ॥

"कथं सु तरति ओघं, कथं सु तरति अण्णवं।
कथं सु दुक्खं अच्चेति, कथं सु परिसुज्झति" ॥ ३ ॥
"सद्धाय तरति ओघं, अप्पमादेन अण्णवं।
विरियेन[1] दुक्खं अच्चेति, पञ्ञाय परिसुज्झति" ॥ ४ ॥
"कथं सु लभते पञ्ञं, कथं सु विन्दते धनं।
कथं सु कित्तिं पप्पोति, कथं मित्तानि गन्थति।
अस्मा लोका परं लोकं, कथं पेच्च न सोचति" ॥ ५ ॥
"सद्दहानो अरहतं, धम्मं निब्बाणपत्तिया।
सुस्सूसा[2] लभते पञ्ञं, अप्पमत्तो विचक्खणो ॥ ६ ॥
"पतिरूपकारी धुरवा, उट्ठाता विन्दते धनं।
सच्चेन कित्तिं पप्पोति, ददं मित्तानि गन्थति ॥ ७ ॥
"यस्सेते चतुरो धम्मा, सद्धस्स घरमेसिनो।
सच्चं धम्मो धिती चागो, स वे पेच्च न सोचति।
अस्मा[3] लोका परं लोकं, स वे पेच्च न सोचति[4] ॥ ८ ॥
"इङ्घ अञ्ञे'पि पुच्छस्सु, पुथु समणब्राह्मणे।
यदि सच्चा दमा चागा, खन्त्या भिय्यो'ध[5] विज्जति" ॥ ९ ॥
"कथं नु दानि पुच्छेय्यं, पुथु समणब्राह्मणे।
सो'हं अज्ज[6] पजानामि, यो चत्थो सम्परायिको" ॥ १० ॥
"अत्थाय वत मे बुद्धो, वासायाळविमागमा[7]।
सो'हं अज्ज पजानामि, यत्थ दिन्नं महप्फलं ॥ ११ ॥
"सो अहं[8] विचरिस्सामि, गामा गामं पुरा पुरं।
नमस्समानो सम्बुद्धं, धम्मस्स च सुधम्मतन्ति" ॥ १२ ॥

---

१. वीरियेन—म०। २. सुस्सूसं—म०। ३. ४. अयं पाठो बहूसु पोत्थकेसु न दिस्सति।
५. भीयो'ध—सी०। ६. यो'हं—म०। ७. आलविमागमि—म०। ८. यो'हं म०।

आलवक यक्ष—मनुष्य कैसे सांसारिक बाढ़ को पार कर जाता है ? और कैसे भव-सागर को लाँघ जाता है ? कैसे दुःख को समाप्त कर देता है ? और कैसे परिशुद्ध होता है ? ॥ ३ ॥

भगवान्—मनुष्य श्रद्धा से सांसारिक बाढ़ को पार कर जाता है। भव-सागर को अप्रमाद से लाँघ जाता है। पराक्रम से दुःख को समाप्त कर देता है और प्रज्ञा से परिशुद्ध हो जाता है।॥ ४ ॥

आवलक यक्ष—मनुष्य कैसे प्रज्ञा प्राप्त करता है ? कैसे धन पाता है ? कैसे यश प्राप्त करता है ? कैसे मित्रों को मिला कर रखता है ? कैसे इस लोक से परलोक में जाने पर, मर कर शोक नहीं करता है ? ॥ ५ ॥

भगवान्—निर्वाण की प्राप्ति के लिए अर्हतों के धर्म में श्रद्धा रखने वाला अप्रमादी और चतुर व्यक्ति श्रद्धापूर्वक धर्म सुनने से प्रज्ञा प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

उचित कार्य को करने वाला, धैर्यवान् और परिश्रमी व्यक्ति धन पाता है। सत्य से यश प्राप्त करता है और देने वाला मित्रों को मिला कर रखता है ॥७॥

जिस श्रद्धालु गृहस्थ में सत्य, धर्म, धृति (=धैर्य) और त्याग—ये चार बातें होती हैं, वह इस लोक से परलोक में जाकर, मर कर शोक नहीं करता है ॥८॥

जरा तुम अन्य श्रमण-ब्राह्मणों के पास जाकर पूछो कि सत्य, इन्द्रिय-दमन, त्याग और क्षान्ति (=क्षमा) से बढ़कर कुछ और भी है ? ॥ ९ ॥

आवलक यक्ष—अब मैं कैसे दूसरे श्रमण-ब्राह्मणों से पूछूँ ? आज मैं स्वयं पारलौकिक अर्थ की बात को जानता हूँ ॥ १० ॥

अहो ! मेरी भलाई के लिए बुद्ध आलवी में मेरे निवास-स्थान पर आए। आज मैं यह जानता हूँ कि जहाँ देने से महाफल होता है ॥ ११ ॥

अब मैं गाँव से गाँव और नगर से नगर में सम्यक् सम्बुद्ध और उनके धर्म की सुधर्मता को नमस्कार करते हुए विचरण करूँगा ॥ १२ ॥

ऐसा कहने पर आलवक यक्ष ने भगवान् से यह कहा—"आश्चर्य है हे गौतम ! आश्चर्य है हे गौतम ! जैसे कि हे गौतम ! उल्टे हुए (वर्तन) को सीधा कर दे, ढँके हुए को उघाड़ दे, रास्ता भूले हुए को रास्ता बतला दे, अथवा

एवं वुत्ते आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच-अभिक्कन्तं भो गोतम, अभिक्कन्तं भो गोतम, सेय्यथापि भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य चक्खुमन्तो रूपानि दक्खिन्तीति एवमेव भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि, धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गत'न्ति।

आलवकसुत्त निट्ठितं।

११—विजय-सुत्त (१, ११)

चरं वा यदि वा तिट्ठं, निसिन्नो उद वा सयं।
सम्मिञ्जेति[1] पसारेति, एसा कायस्स इञ्जना॥ १॥
अट्ठिनहारुसंयुत्तो[2], तचमंसावलेपनो।
छविया कायो पटिच्छन्नो, यथाभूतं न दिस्सति॥ २॥
अन्तपूरो उदरपूरो, यकपेळस्स वत्थिनो।
हदयस्स पप्फासस्स, वक्कस्स पिहकस्स च॥ ३॥
सिंघाणिकाय खेळस्स, सेदस्स च मेदस्स च।
लोहितस्स लसिकाय, पित्तस्स च वसाय च॥ ४॥
अथ'स्स नवहि सोतेहि, असुचि सवति सब्बदा।
अक्खिम्हा अक्खिगूथको, कण्णम्हा कण्णगूथको॥ ५॥
सिंघाणिका च नासतो[3], मुखेन वमतेकदा।
पित्तं सेम्हं च वमति, कायम्हा सेदजल्लिका॥ ६॥
अथस्स सुसिरं सीसं, मत्थलुङ्गस्स पूरितं।
सुभतो नं मञ्ञति बालो, अविज्जाय पुरक्खतो॥ ७॥
यदा च सो मतो सेति, उद्धुमातो विनीलको।
अपविद्धो सुसानस्मिं, अनपेक्खा होन्ति ञातयो॥ ८॥

---

१. समिञ्जेति—म०। २. अट्ठिन्हारूहि संयुत्तो—स्या० क०। ३. नासतो—म०।

अन्धकार में तेल के प्रदीप को धारण करे, जिससे कि आँख वाले लोग चीजों को देख सकें, ऐसे ही आप गौतम द्वारा अनेक प्रकार से धर्म प्रकाशित किया गया। यह मैं आप गौतम की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षुसंघ की भी। मुझे आप गौतम आज से जीवन-पर्यन्त शरणागत उपासक धारण करें।"

आलवकसुत्त समाप्त।

११. विजयसुत्त (१, ११)

[काया की अनित्यता का मनन]

चलते या खड़े होते, बैठे या सोते जो मोड़ता या फैलाता है, यह काया (=शरीर) की गति है॥ १॥

हड्डी और नस से युक्त, चमड़े तथा मांस से लिम्पित, पतली चमड़ी (=झिल्ली) से ढँके इस शरीर का यथार्थ स्वरूप नहीं दिखाई देता है॥ २॥

यह शरीर भीतर भरा हुआ है, पेट भरा हुआ है, यकृत, वस्ति, हृदय, फुफ्फुस, वृक्क, प्लीहा (=तिल्ली), पोंटा, थूक, पसीना, मेद, लोहू, लसिका, पित्त और चर्बी (=वसा) इसमें भरे हैं॥ ३-४॥

और फिर नव छेदों से सदा गन्दगी चूती रहती है, आँख से कींचड़, कान से कान की मैल॥ ५॥

नाक से पोंटा, कभी-कभी मुख से वमन होता है, पित्त और कफ का वमन करता है, शरीर से पसीना और मल निकलते हैं॥ ६॥

इसका खाली सिर गुदा से भरा हुआ है, अविद्या के कारण मूर्ख उसमें सौंदर्य देखता है॥ ७॥

जब वह मर कर सो जाता है, तब फूल जाता है, नीला पड़ जाता है, श्मशान में फेंक दिया जाता है और भाई-बन्धु उससे अपेक्षा-रहित हो जाते हैं॥ ८॥

खादन्ति नं सुवाना[1] च, सिगाला च[2] बका किमी ।
काका गिज्झा च खादन्ति, ये च'ञ्ञे सन्ति पाणिनो[3] ॥९॥
सुत्वान बुद्धवचनं, भिक्खु पञ्ञाणवा इध ।
सो खो नं परिजानाति, तथाभूतं हि पस्सति ॥ १० ॥
यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं ।
अज्झत्तं च बहिद्धा च, काये छन्दं विराजये ॥ ११ ॥
छन्दरागविरत्तो सो, भिक्खु पञ्ञाणवा इध ।
अज्झगा अमतं सन्तिं, निब्बाणपदमच्चुतं ॥ १२ ॥
द्विपादको'यं[4] असुचि, दुग्गन्धो परिहीरति[5] ।
नानाकुणपपरिपूरो, विस्सवन्तो ततो ततो ॥ १३ ॥
एतादिसेन कायेन, यो मञ्ञे उण्णमेतवे ।
परं वा अवजानेय्य, किमञ्ञत्र अदस्सना'ति ॥ १४ ॥

विजयसुत्तं निट्ठितं ।

१२. मुनि-सुत्तं (१,१२)

सन्थवातो[6] भयं जातं, निकेता जायते रजो ।
अनिकेतमसन्थवं, एतं वे मुनिदस्सनं ॥ १ ॥
यो जातमुच्छिज्ज न रोपयेय्य, जायन्तमस्स नानुप्पवेच्छे ।
तमाहु एकं मुनिनं चरन्तं, अद्दक्खि सो सन्तिपदं महेसि ॥ २ ॥
सङ्खाय वत्थूनि पहाय[7] वीजं, सिनेहमस्स नानुप्पवेच्छे ।
स वे मुनी जातिखयन्तदस्सी, तक्कं पहाय न उपेति सङ्खं ॥ ३ ॥
अञ्ञाय सब्बानि निवेसनानि, अनिकामयं अञ्ञतरम्पि तेसं ।
स वे मुनी वीतगेधो अगिद्धो, नायूहति पारगतो हि होति ॥ ४ ॥
सब्बाभिभुं सब्बविदुं सुमेधं, सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तं ।
सब्बञ्जहं तण्हक्खये विमुत्तं, तं वा'पि धीरा मुनिं[8] वेदयन्ति ॥५॥

---

१. सुवाणा—रो० । २. सिङ्गाला—म० । ३. पाणयो—रो० । ४. दिपादकोयं—सी०, स्या०, रो०, क० । ५. परिहारति—म० । ६. सन्धवतो—क० । ७. पमाय—म० । ८. मुनि—म० ।

उसे कुत्ते, गीदड़, बकुले, कीड़े, कौवे, गृध्र और अन्य पशु भी खाते हैं ॥९॥

यहां प्रज्ञावान् भिक्षु बुद्ध-वचन को सुनकर, वह शरीर के स्वभाव को अच्छी तरह समझ लेता है और उसके यथार्थ स्वरूप को देखता है ॥ १० ॥

यह शरीर जैसा है वह भी वैसा है। जैसा यह है वैसा ही वह भी है। इसलिए अपने या दूसरे के शरीर के प्रति राग को त्याग दे ॥ ११ ॥

यहां जो प्रज्ञावान् भिक्षु छन्द और राग से रहित है, वह अमृत, शान्ति, अच्चुत-पद निर्वाण को प्राप्त कर लेता है ॥ १२ ॥

अपवित्र, नाना गन्दगियों से परिपूर्ण यह दो पैरों वाला दुर्गन्ध को ढोता है और जगह-जगह उन गन्दगियों को चुवाता फिरता है ॥ १३ ॥

इस प्रकार के शरीर से जो घमण्ड करता है। अथवा दूसरे का अनादर करता है तो यह अविद्या के सिवाय और किस कारण हो सकता है ? ॥ १४ ॥

विजयसुत्त समाप्त।

१२. मुनिसुत्त (१, ११)

[मुनि कौन है ?]

मेल-जोल से भय उत्पन्न होता है और घर-गृहस्थी से रज (=राग, द्वेष और मोह) उत्पन्न होता है, इसलिए मेलजोल न करना और घर-गृहस्थी में न रहना उत्तम है—ऐसा=बुद्ध-मुनि ने देखा है ॥ १ ॥

जो उत्पन्न हुए पाप को काटकर फिर न लगाये और उसके उत्पन्न होने पर बढ़ने न दे, उसे एकान्तचारी मुनि कहते हैं, उस महर्षि ने शान्ति-पद (=निर्वाण) को देख लिया है ॥ २ ॥

वस्तुस्थिति को भली प्रकार जानकर, संसार में उत्पन्न करने वाले बीज (=तृष्णा) को नष्ट कर, उसे स्नेह नहीं प्रदान करता है, और जो तर्क को त्याग कर अलौकिक हो गया है, जन्म के क्षय (=निर्वाण) का दर्शी वही मुनि कहलाता है ॥ ३ ॥

सभी काम-लोक आदि को जानकर, उनमें से किसी में भी रहने की कामना न करता हुआ राग-रहित, आसक्ति-रहित वही मुनि है, वह पुण्य-पाप का संचय नहीं करता है, वह तो पारंगत हो जाता है ॥ ४ ॥

जिसने सबको जीत लिया है, सब कुछ जान लिया है, जो प्रज्ञावान् है, जो सभी धर्मों (=अवस्थाओं) में लिप्त होने वाला नहीं है, जो सर्वत्यागी है, तृष्णा के क्षय से विमुक्त हो गया है उसे भी ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ५ ॥

पञ्ञाबलं सीलवतूपपन्नं, समाहितं झानरतं सतीमं ।
सङ्गा पमुत्तं अखिलं अनासवं, तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥६॥
एकं चरन्तं मुनिं अप्पमत्तं, निन्दापसंसासु अवेधमानं ।
सीहं'व सद्देसु असन्तसन्तं, वातं'व जालम्हि असज्जमानं ।
पदुमं'व तोयेन अलिप्पमानं[1], नेतारमञ्ञेसमनञ्ञनेय्यं ।
तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥ ७ ॥
यो ओगहने थम्भोरिवाभिजायति, यस्मिं परे वाचा परियन्तं वदन्ति ।
तं वीतरागं सुसमाहितिन्द्रियं, तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥८॥
यो वे ठितत्तो तसरं'व उज्जुं, जिगुच्छति कम्मेहि पापकेहि ।
वीमंसमानो विसमं समं च, तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥९॥

यो सञ्ञतत्तो न करोति पापं,
दहरो[2] च मज्झो च मुनिं[3] यतत्तो ।
अरोसनेय्यो सो[4] न रोसेति[5] कञ्चि,
तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥१०॥

यदग्गतो मज्झतो सेसतो वा,
पिण्डं लभेथ परदत्तूपजीवी ।
नालं थुतु नो'पि निपच्चवादी,
तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥११॥

मुनिं चरन्तं विरतं मेथुनस्मा,
यो योब्बने नोपनिबज्झते क्वचि ।
मदप्पमादा विरतं विप्पमुत्तं,
तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥१२॥

अञ्ञाय लोकं परमत्थदस्सिं,
ओघं समुद्दं अतितरिय तादिं ।
तं छिन्नगन्थं असितं अनासवं,
तं वा'पि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥१३॥

---

१. अलिम्पमानं—म० ।   २—३. दहरो मज्झिमो च मुनि—म० ।   ४—५. न सो रोसेति—म० ।

प्रज्ञा और शील-व्रत से युक्त, एकाग्रचित्त, ध्यान में लीन, स्मृतिमान्, बन्धन से मुक्त और सम्पूर्ण रूप से जो आश्रव रहित है, उसे भी ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ६ ॥

अकेले विचरण करने वाले अप्रमादी, निन्दा और प्रशंसा से विचलित न होने वाले, सिंह की भाँति किसी भी प्रकार के शब्दों से न डरने वाले, जाल में हवा के न फँसने के समान, कमल के जल से न लिप्त होने की भाँति, दूसरों को मार्ग दिखाने वाले और दूसरों का अनुयायी न बनने वाले को भी ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ७ ॥

जो स्नान करने के घाट पर खम्भे की भाँति स्थिर रहता है, उसके ऊपर दूसरों की बातों का असर नहीं पड़ता, उस वीतराग और संयत इन्द्रिय वाले को भी ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ८ ॥

जो ढरकी (=तसर) की भाँति ऋजु और स्थिर चित्त वाला है, जो पाप-कर्मों से घृणा करता है और जो अच्छे-बुरे कर्मों का ध्यान रखता है, उसे भी ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ९ ॥

जो संयमी है, पाप नहीं करता है, जो मुनि बचपन और मध्य आयु में संयमी रहता है, जो दूसरे किसी द्वारा क्रोधित नहीं किया जा सकता और जो दूसरों को क्रोधित भी नहीं करता है, उसे भी ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ १० ॥

जो अग्रभाग, मध्यभाग या अवशेष भाग से भिक्षा लेता है, जिसकी जीविका दूसरों के दिये पर निर्भर है, जो दायक की प्रशंसा और निन्दा नहीं करता, उसे भी ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ११ ॥

जो मुनि मैथुन से विरत होकर अकेले विचरण करता है, जो यौवन में भी कहीं आसक्त नहीं होता, जो मद के प्रमाद से विरत तथा मुक्त है, उसे भी ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ १२ ॥

जिसने अपने ज्ञान से लोक को जान लिया है, जो परमार्थदर्शी है, जो सांसारिक बाढ़ और भव-सागर को पार कर स्थिर हो गया है, उस बन्धनहीन, अनासक्त और अनाश्रव को भी ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ १३ ॥

---

१. बुद्ध-मुनि ने देखा है—अर्थ है—अट्ठकथा।

असमा उभो दूरविहारवुत्तिनो,
गिही दारपोसी अममो च सुब्बतो।
परपाणरोधाय गिही असञ्ञतो,
निच्चं मुनी रक्खति पाणिनो[1] यतो ॥ १४ ॥

सिखी यथा नीलगीवो[2] विहंगमो,
हंसस्स नोपेति जवं कुदाचनं।
एवं गिही नानुकरोति भिक्खुनो,
मुनिनो विवित्तस्स वनम्हि झायतो'ति ॥ १५ ॥

मुनिसुत्तं निट्ठितं।

---

१. पाणिने—म० । २. नीलगिवो—स्या० ।

दो 'मुनि गाथा' और 'उपतिसपसिने' हैं, जो इसी सुत्तनिपात के मुनिसुत्त (१, १२) और सारिपुत्तसुत्त (४, १६) हैं।"

इससे प्रगट है कि सुत्तनिपात कितना लोकप्रिय था और इसका कितना बड़ा महत्व था ? सुत्तनिपात्त में आए चार सुत्तों का भाब्रू शिलालेख के धर्म-पर्यायों (=धम्मपलियायानि) से समीकरण हो चुका है। वे इस प्रका हैं—

शिलालेख में आगत सुत्त	सुत्तनिपात के सुत्त
१. विनय समुकसे	= तुवटकसुत्त (४, १४)
२. मुनिगाथा	= मुनिसुत्त (१, १२)
३. मोनेय सूते	= नालकसुत्त (३, ११)
४. उपतिसपसिने	= सारिपुत्तसुत्त (४, १६)

उक्त शिलालेख में आए ७ सुत्तों में से केवल तीन ही = (१) अलियवसानि (=अरियवंससुत्त, अंगुत्तर निकाय ४, ३, ८), (२) अनागतभयानि (=अंगुतर निकाय ५, ३, ७) और (३) लाघुलोवाद (=राहुलोवाद-सुत्त, मज्झिम निकाय २, २, १ और २, २, २) अन्य ग्रन्थों के हैं। इस प्रकार सुत्त-निपात की प्राचीनता और इसके महत्व को समझा जा सकता है।

अनुवाद—प्रियदर्शी राजा मागध संघ को अभिवादन करके उनकी निर्विघ्नता और सुख-विहार के बारे में पूछता है। भन्ते ! यह आप लोगों को विदित है कि बुद्ध, धर्म और संघ में मेरी कितनी प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास है। भन्ते ! जो कुछ भी भगवान् बुद्ध द्वारा भाषित है वह सब अच्छी तरह सुभाषित है। किन्तु भन्ते ! जो कुछ मुझे निश्चित रूप से लगता है कि इस प्रकार धर्म चिरस्थायी होगा, उसकी घोषणा करना मेरा कर्तव्य है। भन्ते ! ये धर्म-पर्याय हैं—विनय-समुकसे, अलियवसानि, अनागतभयानि, मुनिगाथा, मोनेयसूते, उपतिसपसिने, ऐसे ही राहुलोवाद में मृषावाद का विवेचन करते हुए भगवान् बुद्ध द्वारा जो कहा गया है। भन्ते ! मैं चाहता हूँ कि इन धर्म-पर्यायों को बहुसंख्यक भिक्षुपाद और भिक्षुणियां प्रतिक्षण सुनें और उनका मनन करें। इसी प्रकार उपासक और उपासिकायें भी। भन्ते ! इसी प्रयोजन के लिए इसे लिखवा रहा हूँ कि मेरे अभिप्राय को लोग समझें।

स्त्री के पालन-पोषण में लीन गृहस्थ और व्रतधारी भिक्षु में कोई समता नहीं, दोनों समानतारहित और एक दूसरे से बहुत दूर रहने के स्वभाव वाले हैं, क्योंकि गृहस्थ असंयमी और दूसरों की हिंसा में रत होता है, जब कि मुनि नित्य संयम की रक्षा करता है ॥ १४ ॥

जैसे आकाशचारी नीले गर्दन वाला मोर कभी भी उड़ान में हंस की बराबरी नहीं कर सकता, वैसे ही गृहस्थ भिक्षु की बराबरी नहीं कर सकता, जो कि मुनि एकान्त वन में रहकर ध्यानलीन रहता है ॥ १५ ॥

मुनिसुत्त समाप्त ।

उरगवग्ग समाप्त ।

२—चूळवग्गो

१. रतन-सुत्तं (२, १)

यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि व अन्तलिक्खे।
सब्बे'व भूता सुमना भवन्तु, अथो'पि सक्कच्च सुणन्तु भासितं ।१।

तस्मा हि भूता निसामेथ सब्बे, मेत्तं करोथ मानुसिया पजाय।
दिवा च रत्तो च हरन्ति ये बलिं, तस्मा हि ने रक्खथ अप्पमत्ता ॥२॥

यं किञ्चि वित्तं इध वा हुरं वा, सग्गेसु वा यं रतनं पणीतं।
न नो समं अत्थि तथागतेन, इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं।
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥३॥

खयं विरागं अमतं पणीतं, यदज्झगा सक्यमुनी समाहितो।
न तेन धम्मेन समत्थि किञ्चि, इदम्पि धम्मे रतनं पणीतं
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥४॥

यं बुद्धसेट्ठो परिवण्णयी सुचिं, समाधिमानन्तरिकञ्ञमाहु।
समाधिना तेन समो न विज्जति, इदम्पि धम्मे रतनं पणीतं।
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ५ ॥

ये पुग्गला अट्ठसतं पसत्था, चत्तारि एतानि युगानि होन्ति।
ते दक्खिणेय्या सुगतस्स सावका, एतेसु दिन्नानि महप्फलानि।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ६ ॥

ये सुप्पयुत्ता मनसा दळ्हेन, निक्कामिनो गोतमसासनम्हि।
ते पत्तिपत्ता अमतं विगय्ह, लद्धा मुधा निब्बुतिं[1] भुञ्जमाना।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ७ ॥

---

१. निब्बुति—क०।

२—चूळवग्ग

१. रतनसुत्त (२, १)

[इस सुत्त की देशना भगवान् ने वैशाली में की थी जब कि वैशाली की जनता दुर्भिक्ष, रोग और अमनुष्यों से पीड़ित थी। इसमें बुद्ध, धर्म और संघ के गुण वर्णित हैं।]

इस प्रकार पृथ्वी पर या आकाश में जितने भी प्राणी उपस्थित हैं, वे सभी प्रसन्न हों और हमारे इस कथन को आदरपूर्वक सुनें ॥ १ ॥

इसलिए सभी प्राणी सुनें। मनुष्य मात्र के प्रति मैत्री करें, जिनके कि वे दिन-रात बलि लेते हैं, और इसलिए अप्रमत्त होकर उनकी रक्षा करें ॥ २ ॥

इस लोक या परलोक में जो भी धन है अथवा स्वर्गों में जो उत्तम रत्न हैं, उनमें से कोई भी बुद्ध के समान (श्रेष्ठ) नहीं है; यह भी बुद्ध में उत्तम रत्न है—इस सत्य वचन से कल्याण हो ॥ ३ ॥

जिस उत्तम अमृत, विराग (-पद) और सभी दोषों के नाशक निर्वाण को एकाग्र होकर शाक्यमुनि ने प्राप्त किया, उस धर्म के समान दूसरा कुछ श्रेष्ठ नहीं है। यह भी धर्म में उत्तम रत्न है—इस सत्यवचन से कल्याण हो ॥४॥

परम श्रेष्ठ भगवान् बुद्ध ने जिस पवित्र समाधि को तत्काल फलदायी बतलाया, उस समाधि के समान दूसरा कुछ श्रेष्ठ नहीं है। यह भी धर्म में उत्तम रत्न है—इस सत्य वचन से कल्याण हो ॥ ५ ॥

जो बुद्धों द्वारा प्रशंसित आठ प्रकार के व्यक्ति हैं, इनके चार जोड़े होते हैं, वे बुद्ध के शिष्य दक्षिणा देने के योग्य हैं, इन्हें दान देने में महाफल होता है। यह भी संघ में उत्तम रत्न है—इस सत्यवचन से कल्याण हो ॥ ६ ॥

जो गौतम बुद्ध के शासन में तृष्णा-रहित हो दृढ़ मन से संलग्न हैं, वे प्राप्तव्य को प्राप्तकर अमृत में पैठ श्रेष्ठत्व को पा विमुक्ति-रस का आस्वादन करते हैं। यह भी संघ में उत्तम रत्न है—इस सत्य वचन से कल्याण हो ॥७॥

यथिन्दखीलो पठविं[1]सितो[2] सिया, चतुब्भि वातेहि असम्पकम्पियो ।
तथूपमं सप्पुरिसं वदामि, यो अरियसच्चानि अवेच्च पस्सति ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ८ ॥

ये अरियसच्चानि विभावयन्ति, गम्भीरपञ्ञेन सुदेसितानि ।
किञ्चापि ते होन्ति भुसप्पमत्ता, न ते भवं अट्ठमं आदियन्ति ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥ ९ ॥

सहावस्स दस्सनसम्पदाय, तयस्सु धम्मा जहिता भवन्ति ।
सक्कायदिट्ठि विचिकिच्छितं च, सीलब्बतं वा'पि यदत्थि किञ्चि ।१०॥
चतूहपायेहि च विप्पमुत्तो, छ चाभिठानानि[3] अभब्बो[4] कातुं ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥११॥

किञ्चापि सो कम्मं[5] करोति पापकं, कायेन वाचा उद चेतसा वा ।
अभब्बो सो तस्स पटिच्छादाय[6], अभब्बता[7] दिट्ठपदस्स वुत्ता ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥१२॥

वनप्पगुम्बे यथा[8] फुस्सितग्गे, गिम्हानमासे पठमस्मिं गिम्हे ।
तथूपमं धम्मवरं अदेसयि, निब्बाणगामिं परमं हिताय ।
इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥१३॥
वरो वरञ्ञू वरदो वराहरो, अनुत्तरो धम्मवरं अदेसयि ।
इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥१४॥

१–२. पथविस्सितो—म० ।
३. छच्चाभिठानानि—म० ।
४. अभव्व—म० ।
५. कम्म—म० ।
६. पटिच्छदाय—म० ।
७. अभव्व—म० ।
८. यथ—म० ।

जैसे भूमि में गड़ी इन्द्रकील चारों ओर को हवा से भी कँपती नहीं है, वैसे ही मैं सत्पुरुष को कहता हूँ, जो कि आर्यसत्यों को भली प्रकार ज्ञानपूर्वक दर्शन करता है। यह भी संघ में उत्तम रत्न है—इस सत्य वचन से कल्याण हो ॥८॥

जो गम्भीर प्रज्ञा वाले बुद्ध द्वारा उपदिष्ट आर्यसत्यों का मनन करते हैं वे चाहे भले ही एकदम प्रमाद में पड़े हुए हों, किन्तु आठवाँ जन्म ग्रहण नहीं करते। यह भी संघ में उत्तम रत्न है—इस सत्य वचन से कल्याण हो ॥ ९ ॥

दर्शन-प्राप्ति के साथ ही साथ उसके तीन बन्धन छूट जाते हैं—सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रत परामर्श अथवा अन्य जो कुछ भी बन्धन हों। वह चार अपायों से मुक्त हो जाता है। छः घोर पाप-कर्मों का कभी आचरण नहीं करता। यह भी संघ में उत्तम रत्न हैं—इस सत्यवचन से कल्याण हो ॥१०॥

भले ही वह शरीर, वचन अथवा मन से पाप-कर्म करता है, किन्तु वह उसे कभी छिपा नहीं सकता, क्योंकि निर्वाणदर्शी को छिपाने में असमर्थ कहा गया है। यह भी संघ में उत्तम रत्न है—इस सत्य वचन से कल्याण हो ॥११॥

जैसे वसन्त ऋतु के प्रारम्भ में वन और झाड़ियाँ पुष्पित हो उठती हैं, वैसे ही श्रेष्ठ धर्म का उपदेश भगवान् बुद्ध ने दिया, जो निर्वाण की ओर ले जाने वाला तथा परम हितकारी है। यह भी बुद्ध में उत्तम रत्न हैं—इस सत्य वचन से कल्याण हो ॥ १२ ॥

श्रेष्ठ निर्वाण के दाता, श्रेष्ठ धर्म के ज्ञाता, श्रेष्ठ मार्ग के निर्देशक, श्रेष्ठ लोकोत्तर बुद्ध ने उत्तम धर्म का उपदेश दिया है। यह भी बुद्ध में उत्तम रत्न है—इस सत्य वचन से कल्याण हो ॥ १३ ॥

सारा पुराना कर्म क्षीण हो गया, नया उत्पन्न नहीं होता, उनका चित्त पुनर्जन्म से विरक्त हो गया है, वे क्षीण-बीज हो गए हैं, उनकी तृष्णा समाप्त हो गई है, वे इस प्रदीप के समान निर्वाण को प्राप्त हो जाते हैं। यह भी संघ में उत्तम रत्न है—इस सत्य वचन से कल्याण हो ॥ १४ ॥

खीणं पुराणं नवं नत्थि सम्भवं, विरत्तचित्ता आयतिके भवस्मिं ।
ते खीणबीजा अविरूल्हिछन्दा[1], निब्बन्ति धीरा यथायम्पदीपो[2] ।
इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥१५॥
यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि व अन्तलिक्खे ।
तथागतं देवमनुस्सपूजितं, बुद्धं, नमस्साम सुवत्थि होतु ॥१६॥
यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि व अन्तलिक्खे ।
तथागतं देवमनुस्सपूजितं, धम्मं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥१७॥
यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि व अन्तलिक्खे ।
तथागतं देवमनुस्सपूजितं, संघं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥१८॥

रतनसुत्तं निट्ठितं ।

२. आमगन्ध-सुत्तं (२,२)

सामाकचिंगूलचीनकानि च, पत्तप्फलं मूलप्फलं[3] गविप्फलं ।
धम्मेन लद्धं सतमस्नमाना[4], न कामकामा अलिकं भणन्ति ॥१॥
यदस्नमानो सुकतं सुनिट्ठितं, परेहि दिन्नं पयतं पणीतं ।
सालीनमन्नं परिभुञ्जमानो, सो भुञ्जति कस्सप आमगन्धं ॥ २ ॥
न आमगन्धो मम कप्पतीति, इच्चेव त्वं भाससि ब्रह्मबन्धु ।
सालीनमन्नं परिभुञ्जमानो, सकुन्तमंसेहि सुसंखतेहि ।
पुच्छामि तं कस्सप एतमत्थं, कथप्पकारो[5] तव आमगन्धो ॥ ३ ॥
पाणातिपातोवधछेदबन्धनं, थेय्यंमुसावादो निकतिवञ्चनानि च ।
अज्झेनकुत्तं[6] परदारसेवना, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥ ४ ॥
ये इध कामेसु असञ्ञता जना, रसेसु गिद्धा असुचीकमिस्सिता[7] ।
नत्थीकदिट्ठि[8] विसमा दुरन्नया, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥५॥

---

१. अविरूल्हिच्छन्दा—सी० । २. यथयं पदीपो—क० ।
३. मूलफलं—म० । ४. सतमसमाना—सी०, रो०; सतमस्समाना—स्या०, कं० ।
५. कथं पकारो—म० । ६. अज्झेन कुज्झं—सी० । ७. असुचिभावमिस्सिता—म० ।
८. नत्थिकदिट्ठी—म० ।

इस समय इस पृथ्वी पर या आकाश में जितने भी प्राणी उपस्थित हैं, तथागत उन सभी देव और मनुष्यों से पूजित हैं, हम बुद्ध को नमस्कार करते हैं, कल्याण हो ॥ १५ ॥

इस समय इस पृथ्वी पर या आकाश में जितने भी प्राणी उपस्थित हैं, तथागत उन सभी देव और मनुष्यों से पूजित हैं, हम धर्म को नमस्कार करते हैं, कल्याण हो ॥ १६ ॥

इस समय इस पृथ्वी पर या आकाश में जितने भी प्राणी उपस्थित हैं, तथागत उन सभी देव और मनुष्यों से पूजित हैं, हम संघ को नमस्कार करते हैं, कल्याण हो ॥ १७ ॥

रतनसुत्त समाप्त ।

२. आमगन्धसुत्त (२,२)

[इस सुत्त में बतलाया गया है कि मछली-मांस का खाना आमगन्ध नहीं कहलाता, प्रत्युत सारे क्लेश और अकुशल पाप-कर्म ही आमगन्ध हैं । तिष्य-ब्राह्मण और भगवान् काश्यप बुद्ध की वार्ता के रूप में आमगन्ध की व्याख्या पढ़ें]

तिष्य ब्राह्मण——धर्म-पूर्वक प्राप्त साँवा, टाँगुन (=चिंगुलक), चीना (=चीनक=चेना), साग-सब्जी, कन्द-मूल तथा लता-फल को खाने वाले सत्पुरुष अपनी इच्छाओं के लिए असत्य नहीं बोलते ॥ १ ॥

हे काश्यप ! जो दूसरों द्वारा अच्छी तरह से पकाये उत्तम धान के भात को खाता है, वह आमगन्ध का सेवन करता है ॥ २ ॥

हे ब्रह्मबन्धु ! आप कह रहे हैं कि मुझे आमगन्ध विहित नहीं, जब कि आप पक्षियों के मांस के साथ अच्छी तरह बनाये धान के भात को खा रहे हैं । हे काश्यप ! मैं आपसे पूछता हूँ कि आपका आमगन्ध कैसा है ? ॥ ३ ॥

काश्यप बुद्ध——जीवहिंसा, वध, बन्धन, चोरी, असत्य भाषण, धोखेबाजी, ठगी, निरर्थक ग्रन्थों का अध्ययन तथा पराई स्त्री का सेवन——यह आमगन्ध है न कि मांस का भोजन करना ॥ ४ ॥

जो लोग यहाँ कामभोगों में संयम नहीं करते, स्वादिष्ट रसों में लिप्त रहते हैं, नाना प्रकार के पाप-कर्मों लगे रहते हैं, विषम और टेढ़ी नास्तिक-दृष्टि वाले हैं——यह आमगन्ध है न कि मांस का भोजन करना ॥ ५ ॥

ये[५]लूखसा दारुणा पिट्ठिमंसिका[१], मित्तद्दुनो निक्करुणातिमानिनो।
अदानसीला न च देति कस्सचि, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥६॥
कोधो मदो थम्भो पच्चुट्ठापना[२]च, माया उसूया भस्ससमुस्सयो च।
मानातिमानो च असब्भिसन्थवो, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥७॥
ये पापसीला इणघातसूचका, वोहारकूटा इध पाटिरूपिका।
नराधमा ये'ध करोन्ति किब्बिसं, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥८॥
ये इध पाणेसु असञ्ञता जना, परेसमादाय विहेसमुय्युता।
दुस्सीललुद्धा फरुसा अनादरा, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥९॥
एतेसु गिद्धा विरुद्धातिपातिनो, निच्चुय्युता पेच्च तमं वजन्ति ये।
पतन्ति सत्ता निरयं अवंसिरा, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥१०॥
न मच्छमंसानमनासकत्तं[३], न नग्गियं
(मुण्डियजटा) जल्लं खराजिनानि वा
नाग्गिहुत्तस्सुपसेवना वा, ये वा'पि लोके अमरा बहू तपा।
मन्ताहुती यञ्ञमुतूपसेवना, सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकङ्खं ॥११॥
सोतेसु[४] गुत्तो विदितिन्द्रियो चरे, धम्मे ठितो अज्जवमद्दवे रतो।
सङ्गातिगो सब्बदुक्खप्पहीनो, न लिप्पति[५]दिट्ठसुतेसु धीरो ॥१२॥
इच्चेतमत्थं भगवा पुनप्पुनं, अक्खासि तं[६] वेदयि मन्तपारगू।
चित्राहि गाथाहि मुनिप्पकासयि, निरामगन्धो असितो दुरन्नयो ॥१३॥
सुत्वान बुद्धस्स सुभासितं पदं, निरामगन्धं सब्बदुक्खप्पनूदनं।
नीचमनो वन्दि तथागतस्स, तत्थेव पब्बज्जमरोचयित्था'ति ॥१४॥

आमगन्धसुत्तं निट्ठितं।

१—२. ये लूखरसा दारुणा परपिट्ठिमंसिका—क०। पच्चुपट्ठापना—म०। ३. न मच्छमंसं अनासकत्तं—सी०; न मच्छमंसानानासकत्तं—स्या०, क०। ४. यो तेसु—म०, स्या०। ५. लिम्पति स्या०, म० क०। ६. नं—म०, स्या०।

जो कठोर, दारुण, चुगलखोर, मित्रद्रोही, निर्दयी, अतिमानी और दान न देने के स्वभाव वाला है, किसी को कुछ नहीं देता है--यह आमगन्ध है न कि मांस का भोजन करना ॥ ६ ॥

क्रोध, मद, जड़ता, विरोध, माया, ईर्ष्या, आत्म-प्रशंसा, बहुत अभिमानी होना और बुरों का साथ करना--यह आमगन्ध है न कि मांस का भोजन करना ॥७॥

जो पापी, ऋण न चुकाने वाले, ठगबनीजी करने वाले, ढोंगी, नराधम यहाँ पाप कर्म करते हैं--यह आमगन्ध है न कि मांस का भोजन करना ॥८॥

जो लोग यहाँ जीवों के प्रति असंयमी हैं, दूसरों की वस्तु लेकर उन्हें परेशान करने पर तुले हुए हैं और दुराचारी, लोभी, कठोर तथा आदर हीन हैं--यह आमगन्ध है न कि मांस का भोजन करना ॥ ९ ॥

जो लोग इनमें लोभ-करके विरोध-भाव और जीव हिंसा में लगे हुए हैं, वे मर कर अन्धकार में जाते हैं वे प्राणी ऊपर पैर तथा नीचे सिर करके नरक में पड़ते हैं--यह आमगन्ध है न कि मांस का भोजन करना ॥ १० ॥

न तो मछली मांस खाना, न नंगा रहना, न उपवास करना, न सिर मुड़ाना, न जटा धारण करना, न राख पोतना, न कड़े मृग-चर्म को पहनना, न अग्नि-हवन करना, न अमरत्व की आकांक्षा से अनेक प्रकार के तपों को करना, न मंत्रपाठ करना, न हवन करना, न यज्ञ करना अथवा और न ऋतुओं का उपसेवन करना ही संशययुक्त मनुष्य को शुद्ध कर सकते हैं ॥ ११ ॥

जो सभी स्रोतों अर्थात् इन्द्रियों में संयम करता है, इन्द्रियों को भली प्रकार जानकर विचरण करता है, धर्म में स्थित है, ऋजुता और मृदुता में रत है, सांसारिक आसक्तियों को पार कर लिया है, जिसके सारे दुःखों का प्रहाण हो गया है, वह धीर व्यक्ति देखी-सुनी बातों में लिप्त नहीं होता ॥ १२ ॥

इस बात को भगवान् ने बार-बार कहा और वेद-पारंगत ब्राह्मण ने इसे समझ लिया। तृष्णा रहित, अनासक्त और अनुसरण करने में दुष्कर मुनि ने सुन्दर गाथाओं में निरामगंन्ध को प्रगट की ॥ १३ ॥

सारे दुःखों को दूर करने वाले भगवान् बुद्ध के निरामगन्ध के सुभाषित पदों को सुनकर विनम्र-भाव से उसने तथागत की वन्दना की और वहीं प्रव्रजित होने की याचना की ॥ १४ ॥

आमगन्धसुत्त समाप्त ।

३—हिरि-सुत्तं (२, ३)

हिरिं तरन्तं विजिगुच्छमानं, सखाहमस्मि[1] इति भासमानं।
सय्हानि कम्मानि अनादियन्तं, नेसो ममन्ति इति नं[2] विजञ्ञा॥१॥

अनन्वयं[3] पियं वाचं, यो मित्तेसु पकुब्बति।
अकरोन्तं भासमानं, परिजानन्ति पण्डिता॥२॥

न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो, भेदासंकी रंधमेवानुपस्सी।
यस्मिं च सेति उरसीव पुत्तो, स वे मित्तो यो परेहि अभेज्जो॥३॥

पामुज्जकरणं ठानं, पसंसावहनं सुखं।
फलानिसंसो भावेति, वहन्तो पोरिसं धुरं॥४॥

पविवेकरसं पीत्वा, रसं उपसमस्स च।
निद्दरो होति निप्पापो, धम्मपीतिरसं पिवन्ति॥५॥

हिरिसुत्तं निट्ठितं।

४—महामङ्गल-सुत्तं (२. ४)

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"बहू देवा मनुस्सा च, मङ्गलानि अचिन्तयुं।
आकङ्खमाना सोत्थानं, ब्रूहि मङ्गलमुत्तमं"॥१॥

"असेवना च बालानं, पण्डितानं च सेवना।
पूजा च पूजनीयानं[4], एतं मङ्गलमुत्तमं"॥२॥

पतिरूपदेसवासो च, पुब्बे च कतपुञ्ञता।
अत्तसम्मापणिधि च, एतं मङ्गलमुत्तमं॥३॥

---

१. तवाहमस्मि—म०। २. तं—सी०। ३. अत्थन्वयं—क०। पूजनेय्यानं—म०।

सुत्तनिपात में तत्कालीन उत्तर भारत की सामाजिक, धार्मिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक आदि अवस्थाओं के सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री है। वर्णव्यवस्था का खंडन, शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन, बुद्ध के गृहत्याग का कारण, नाना मतवादों का विस्तार, तापस जीवन की महत्ता, प्राचीन ब्राह्मणों के कर्तव्य, यज्ञ-हवन आदि की निस्सारता, समाज में व्याप्त मिथ्याविश्वासों का वर्जन, विभिन्न दार्शनिक गुरुओं का निराकरण, आत्मा, परमात्मा के ऊहापोह की निस्सारता आदि विषयों पर इस ग्रन्थ में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। भिक्षुचर्या का सुन्दर निरूपण यहाँ मिलता है। बौद्ध गृहस्थ और भिक्षु के क्या कर्तव्य हैं? एक सद्-गृहस्थ को कैसे जीवन यापन करना चाहिए? दुराचारी और दुःशील भिक्षु को संघ से वहिष्कृत करके शुद्ध भिक्षुओं के साथ ध्यान-भावना में जुटना चाहिए, किसी को हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिए, सबको समान समझना चाहिए, दृष्टियों के फेर में पड़कर वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए, सांसारिक आस-क्तियों को त्याग अकिंचन हो परमसुख निर्वाण की प्राप्ति के लिए जुट जाना चाहिए आदि सुत्तनिपात में वर्णित विषय हैं। रतन, मंगल, मेत्त आदि प्रसिद्ध सुत्त भी इसमें आए हुए हैं, जिनका कि पाठ प्रतिदिन भिक्षु करते हैं।

सुत्तनिपात की प्राचीनता—श्री फॉसवल ने सुत्तनिपात की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए वतलाया है कि इसकी भाषा वैदिक (=छन्दस्) भाषा से मिलती जुलती है। उन्होंने उदाहरण में समूहतासे (१, १४) पच्चयासे (१, १५) चरामसे, भवामसे (१, २, १५), आतुमानं (४, ३, ३), मन्ता (४, १४, २), सुवाना (१, ११, ९), अवीवदाता (४, ३, ५), जनेत्व (३, ११, १७), कुप्पटिच्चस्सन्ति (४, ३, ५), पावा (४, ३, ३) आदि शब्दों को लिखा है, किन्तु हम यह जानते हैं कि पालि की उत्पत्ति कब और कैसे हुई तथा वैदिक भाषा से पालि का कितना निकट का सम्बन्ध है। न केवल सुत्तनिपात ही, प्रत्युत प्रथम संगीति में संगायन किए हुए सभी ग्रन्थ प्राचीन हैं। मेरा तो मत है कि सुत्तनिपात के विचार पीछे लिखे गए उपनिषद् ग्रन्थों में भी लिए गए हैं। इस ग्रन्थ के अट्ठकवग्ग और पारायणवग्ग भगवान् के समय में ही प्रसिद्ध हो चुके थे। आयुष्मान् सोणकुटिकण्ण ने सम्पूर्ण अट्ठकवग्ग का पाठ भगवान् बुद्ध के समक्ष किया था। ऐसा जान पड़ता है कि पहले

३—हिरिसुत्त (२, ३)

[मित्र की पहचान]

निर्लज्ज व्यवहार करने वाला, (भीतर ही भीतर) घृणा का भाव रखने ाला, सामर्थ्य की बात भी न करने वाला जो अपने को मित्र बतलाता है, सके विषय में समझना चाहिए कि 'यह मेरा मित्र नहीं है'॥ १ ॥

जो बेकार मीठी-मीठी बातें मित्रों से करता है, विना किए ही कहता है, ुद्धिमान् लोग उसकी निन्दा करते हैं ॥ २ ॥

जो सदा मित्रता दिखाने की चेष्टा करते हुए फूट डालने के चक्कर में रहता ; तथा छिद्रान्वेषण किया करता है, वह मित्र नहीं है। जो माता की गोद में ोये पुत्र की भाँति विश्वास और प्रेम प्रदान करता है, जो दूसरों के द्वारा फोड़ा ाहीं जा सकता, वही मित्र है ॥ ३ ॥

जो मनुष्य के कर्तव्य को निबाहता हुआ, प्रसन्नता और प्रशंसा के सुख की कामना करता है तथा फल की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है ॥ ४ ॥

एकान्त चिन्तन के रस तथा उपशम (=शान्ति) के रस को पीकर (पुरुष) निडर होता है और धर्म का प्रेमरस पान कर निष्पाप होता है[1] ॥५॥

हिरिसुत्त समाप्त।

४. महामङ्गलसुत्त (२, ४)

[अड़तीस प्रकार के शुभ-कर्म]

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। तब एक देवता रात्रि के बीतने पर अपनी दीप्ति से समस्त जेतवन को आलोकित कर जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। आकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हो उस देवता ने गाथा में भगवान् से कहा—

कल्याण की आकांक्षा रखते हुए बहुत से देवताओं और मनुष्यों ने मंगल के विषय में विचार किया है। आप बतावें कि उत्तम मंगल क्या है ? ॥ १ ॥

भगवान् बुद्ध—मूर्खों की संगति न करना, बुद्धिमानों की संगति करना और पूज्यों की पूजा करना—यह उत्तम मंगल है ॥ २ ॥

अनुकूल स्थानों में निवास करना, पूर्व जन्म के संचित पुण्य का होना और अपने को सन्मार्ग पर लगाना—यह उत्तम मंगल है ॥ ३ ॥

१, देखिये धम्मपद १५, ९।

बाहुसच्चं च स सिप्पं च, विनयो च सुसिक्खितो ।
सुभासिता च या वाचा, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ४ ॥
मातापितु उपट्ठानं, पुत्तदारस्स सङ्गहो ।
अनाकुला च कम्मन्ता, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ५ ॥
दानं च धम्मचरिया च, ञातकानं च सङ्गहो ।
अनवज्जानि कम्मानि, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ६ ॥
आरति विरति पापा, मज्जपाना च संयमो[1] ।
अप्पमादो च धम्मेसु, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ७ ॥
गारवो च निवातो च, सन्तुट्ठी[2] च कतञ्ञुता ।
कालेन धम्मसवणं[3], एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ८ ॥
खन्ती च सोवचस्सता, समणानं च दस्सनं ।
कालेन धम्मसाकच्छा, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ९ ॥
तपो च ब्रह्मचरियं च, अरियसच्चान दस्सनं ।
निब्बाणसच्छिकिरिया च, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ १० ॥
फुट्ठस्स लोकधम्मेहि, चित्तं यस्स न कम्पति ।
असोकं विरजं खेमं, एतं मङ्गसुत्तमं ॥ ११ ॥
एतादिसानि कत्वान, सब्बत्थमपराजिता ।
सब्बत्थ सोत्थिं गच्छन्ति, तं तेसं मङ्गलमुत्तम'न्ति ॥ १२ ॥

महामङ्गलसुत्तं निट्ठितं ।

५—सूचिलोम-सुत्तं (२, ५)

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा गयायं विहरति टङ्कितमञ्चे सूचिलोमस्स यक्खस्स भवने । तेन खो पन समयेन खरो च यक्खो सूचिलोमो च यक्खो भगवतो अविदूरे अतिक्कमन्ति । अथ खो खरो यक्खो सूचिलोमं यक्खं एतदवोच—"एसो समणो"ति । "नेसो समणो, समणको एसो; याव[4] जानामि यदि वा'सो समणो, यदि वा समणको" ति । अथ खो सूचिलोमो यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्क-

---

१. सञ्ञमो—सी० । २. सन्तुट्ठि—म० । ३. धम्मस्सवनं—म० । ४. यावाहं—म०, स्या० ।

बहुश्रुत होना, शिल्प सीखना, शिष्ट होना, सुशिक्षित होना और सुभाषण करना—यह उत्तम मंगल है ॥ ४ ॥

माता-पिता की सेवा करना, पुत्र-स्त्री का पालन-पोषण करना और गड़बड़ का काम न करना—यह उत्तम मंगल है ॥ ५ ॥

दान देना, धर्माचरण करना, बन्धु-बान्धवों का आदर-सत्कार करना और निर्दोष कार्य करना—यह उत्तम मंगल है ॥ ६ ॥

मन, शरीर तथा वचन से पापों को त्यागना, मद्यपान न करना और धार्मिक कार्यों में तत्पर रहना—यह उत्तम मंगल है ॥ ७ ॥

गौरव करना, नम्र होना, सन्तुष्ट रहना, कृतज्ञ होना और उचित समय पर धर्म-श्रवण करना—यह उत्तम मंगल है ॥ ८ ॥

क्षमाशील होना, आज्ञाकारी होना, श्रमणों का दर्शन करना और उचित समय पर धार्मिक चर्चा करना—यह उत्तम मंगल है ॥ ९ ॥

तप, ब्रह्मचर्य का पालन, आर्यसत्यों का दर्शन और निर्वाण का साक्षात्कार—यह उत्तम मंगल है ॥ १० ॥

जिसका चित्त लोकधर्म से विचलित नहीं होता, वह निःशोक, निर्मल तथा निर्भय रहता है—यह उत्तम मंगल है ॥ ११ ॥

इस प्रकार के कार्य करके सर्वत्र अपराजित हो लोग कल्याण को प्राप्त करते हैं—यह उनके लिए (=देवताओं तथा मनुष्यों के लिए), उत्तम मंगल है ॥१२॥

महामङ्गलसुत्त समाप्त ।

५—सूचिलोमसुत्त (२, ५)

[तृष्णा ही सभी वासनाओं का मूल है]

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् गया में टंकित मंच[1] पर शूचिलोम यक्ष के भवन में विहार करते थे। उस समय खर यक्ष और शूचिलोम यक्ष भगवान् के निकट से ही गुजर रहे थे। तब खर यक्ष ने शूचिलोम यक्ष से यह कहा—"यह श्रमण है।"

१, गया के पास पत्थर के चार खम्भों पर पत्थर फैलाकर बनायी गयी पत्थर की मचान (=मंच)—अट्ठकथा।

मित्वा भगवतो कायं उपनामेसि। अथ खो भगवा कायं अपनामेसि। अथ खो सूचिलोमो यक्खो भगवन्तं एतदवोच–"भायसि मं समणा"ति? "न ख्वाहं तं आवुसो भायामि, अपि च ते सम्फस्सो पापको"ति। "पञ्हं तं समण पुच्छिस्सामि, सचे मे न ब्याकरिस्ससि, चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हदयं वा ते फालेस्सामि, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपिस्सामी"ति। "न ख्वाहं तं आवुसो पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय्य, हदयं वा फालेय्य, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपेय्य; अपि च त्वं आवुसो पुच्छ यदाकङ्खसी"ति। अथ खो सूचिलोमो यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

"रागो च दोसो च कुतो निदाना,
अरती रती लोमहंसो कुतोजा।
कुतो समुट्ठाय मनोवितक्का,
कुमारका धंकमिवोस्सजन्ति" ॥ १ ॥
"रागो च दोसो च इतो निदाना,
अरती रती लोमहंसो इतोजा।
इतो समुट्ठाय मनोवितक्का,
कुमारका धंकमिवोस्सजन्ति ॥ २ ॥
"स्नेहजा अत्तसम्भूता,
निग्रोधस्सेव खन्धजा।
पुथू विसत्ता कामेसु,
मालुवा'व वितता वने ॥ ३ ॥
"ये नं पजानन्ति यतो निदानं,
ते नं विनोदेन्ति सुणोहि यक्ख।
ते दुत्तरं ओघमिमं तरन्ति,
अतिण्णपुब्बं अपुनब्भवाया"ति ॥ ४ ॥

सूचिलोमसुत्तं निट्ठितं।

"यह श्रमण नहीं, श्रमणक (=छोटा श्रमण) है। जरा मैं पता लगाऊँ कि यह श्रमण है या श्रमणक।"

तब शूचिलोम यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान् के पास अपने शरीर को ले गया। तब भगवान् ने अपने शरीर को हटा लिया। तब शूचिलोम यक्ष ने भगवान् से यह कहा—"श्रमण ! तुम मुझसे डर रहे हो ?"

"आवुस ! मैं तुमसे नहीं डर रहा हूँ, बल्कि तुम्हारा स्पर्श बुरा है।"

"श्रमण ! मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा, यदि तुम मेरा उत्तर न दे पाओगे तो मैं तुम्हारे चित्त को विक्षिप्त कर दूँगा या तुम्हारे हृदय को फाड़ डालूँगा अथवा पैरों को पकड़ कर गंगा के उस पार फेंक दूँगा।"

"आवुस ! मैं देव, मार, ब्रह्मा और श्रमण-ब्राह्मण सहित लोक में देव-मनुष्य सहित प्रजा में किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखता जो कि मेरे चित्त को विक्षिप्त कर दे या मेरे हृदय को फाड़ डाले अथवा पैरों को पकड़ कर गंगा के उस पार फेंक दे, फिर भी आवुस ! तुम जो चाहो पूछो।"

तब शूचिलोम यक्ष ने भगवान् से गाथा में कहा—

"राग और द्वेष कहां से उत्पन्न होते हैं ? पुण्य-कर्मों में मन का न लगना और पाप-कर्मों में मन का लगना तथा भय (=लोमहर्षण) कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? मन के बुरे वितर्क कहाँ से उत्पन्न होकर बच्चों के कौवा उड़ाने की भाँति परेशान करते हैं ?" ॥ १ ॥

"राग और द्वेष यहीं (अपने भीतर) उत्पन्न होते हैं और पुण्य-कर्मों में मन का न लगना तथा पाप-कर्मों में मन का लगना एवं भय यहीं से उत्पन्न होते हैं। मन के बुरे वितर्क भी यहीं से उत्पन्न होकर बच्चों के कौवा उड़ाने की भाँति परेशान करते हैं ॥ २ ॥

जैसे बरगद के पेड़ से बरोहें निकली हैं उसी प्रकार स्नेह (=राग) और आत्म-दृष्टि से वे उत्पन्न होते हैं। जंगल में फैली मालुवा लता की भाँति वे विभिन्न प्रकार से काम-भोगों में आसक्त रहते हैं॥ ३ ॥

हे यक्ष ! सुनो, जो लोग इसके उत्पत्ति-स्थान को जानते हैं, वे उसका अन्त कर देते हैं। वे पहले कभी न पार किए दुस्तर बाढ़ को पार कर जाते हैं। उनका पुनर्जन्म नहीं होता है ॥ ४ ॥

सूचिलोमसुत्त समाप्त।

६—धम्मचरिय-सुत्तं (२,६)

धम्मचरियं ब्रह्मचरियं, एतदाहु वसुत्तमं।
पब्बजितो'पि चे होति, अगारा[1] अनगारियं ॥ १ ॥

सो चे मुखरजातिको, विहेसाभिरतो मगो।
जीवितं तस्स पापियो, रजं वड्ढेति अत्तनो ॥ २ ॥

कलहाभिरतो भिक्खु, मोहधम्मेन आवटो[2]।
अक्खातम्पि न जानाति, धम्मं बुद्धेन देसितं ॥ ३ ॥

विहेसं भावितत्तानं, अविज्जाय पुरक्खतो।
सङ्किलेसं न जानाति, मग्गं निरयगामिनं ॥ ४ ॥

विनिपातं समापन्नो, गब्भा गब्भं तमा तमं।
स वे तादिसको भिक्खु, पेच्च दुखं निगच्छति ॥ ५ ॥

गूथकूपो यथा अस्स, सम्पुण्णो गणवस्सिको।
यो[3] एवरूपो[4] अस्स, दुब्बिसोधो हि साङ्गणो ॥ ६ ॥

यं एवरूपं जानाथ, भिक्खवो गेहनिस्सितं।
पापिच्छं पापसङ्कप्पं, पापाचारगोचरं ॥ ७ ॥

सब्बे समग्गा हुत्वान, अभिनिब्बिज्जयाथ[5] नं।
कारण्डवं[6] निद्धमथ, कसम्बुं अपकस्सथ[7] ॥ ८ ॥

ततो पलापे[8] वाहेथ, अस्समणे समणमानिने।
निद्धमित्वा पापिच्छे, पापाचारगोचरे ॥ ९ ॥

सुद्धा सुद्धेहि संवासं, कप्पयव्हो पतिस्सता।
ततो समग्गा निपका, दुक्खस्सन्तं करिस्सथा'ति ॥ १० ॥

धम्मचरियसुत्तं निट्ठितं।

---

१. अगारस्मा—सी०। २. आवुतो—म०।

३-४. यो च एवरूपो—म०; यो चेवरूपो—सी०। ५. अभिनिब्बज्जियाथ—म०। ६. कारण्डव—स्या०, क०। ७. अवकस्सथ—सी०, स्या०, क०। ८. पलासे—क०।

६—धम्मचरियसुत्त[1] (२,६)

[बुरे भिक्षु की संगति त्याग शुद्ध भिक्षु की संगति करे ।]

धर्म का आचरण और ब्रह्मचर्य का पालन—इन्हें उत्तम धन कहा गया है। यदि कोई घरबार छोड़कर विना घर का हो प्रव्रजित भी होता है, किन्तु वह कटुभाषी और जानवर की तरह दूसरों को सताने वाला होता है तो उसका जीवन बुरा है और वह अपने मल को बढ़ाता है ॥ १—२ ॥

जो भिक्षु झगड़ालू है और मोह से अच्छादित है, वह बुद्ध के उपदिष्ट धर्म को नहीं जानता है ॥ ३ ॥

जो अविद्या के वशीभूत हो संयमी लोगों को सताता है, वह यह नहीं जानता कि यह पाप नरक को ले जाने वाला मार्ग है ॥ ४ ॥

ऐसा भिक्षु मरने के बाद नरक में पड़ता है और वह एक जन्म से दूसरे जन्म को और अन्धकार से अन्धकार को प्राप्त हो परलोक में दुःख भोगता है ॥ ५ ॥

जो पापी ऐसा होता है वह उसी प्रकार शुद्ध नहीं किया जा सकता जैसे कि अनेक वर्षों का भरा गूथ-कूप (=संडास) हो ॥ ६ ॥

भिक्षुओ ! जिसे ऐसा जान लो कि यह काम-भोगों में आसक्त है, बुरे विचारों वाला है, बुरे संकल्प वाला है, बुरे आचरण और बुरे की संगति करने वाला है ॥ ७ ॥

सब एकत्र हो उसे (संघ से) निष्कासित कर दो, कचरे की तरह दूर कर दो और कूड़े की तरह हटा दो ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् तुच्छ (भिक्षुओं) को निकाल दो जो कि श्रमण न होते हुए भी श्रमण होने का दम्भ भरते हैं, बुरों का निष्कासन करके जो कि बुरे आचरण और संगति वाले हैं ॥ ९ ॥

सतर्क होकर शुद्ध शुद्धों की संगति करे। तब, मिलजुल कर बुद्धिमान् (भिक्षु) दुःख का अन्त कर सकेंगे ॥ १० ॥

धम्मचरियसुत्त समाप्त ।

—:०:—

१. कपिलसुत्त—अट्ठथा।

७—ब्राह्मणधम्मिक-सुत्तं (२,७)

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो संबहुला कोसलका ब्राह्मणमहासाला जिण्णा वुद्धा महल्लका अद्धगता वयोअनुप्पत्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु; सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते ब्राह्मणमहासाला भगवन्तं एतदवोचुं—"सन्दिस्सन्ति नु खो, भो गोतम, एतरहि ब्राह्मणा पोराणानं ब्राह्मणधम्मे"ति ? "न खो, ब्राह्मणा, सन्दिस्सन्ति एतरहि ब्राह्मणा पोराणानं ब्राह्मणधम्मे"ति। "साधु नो भवं गोतमो पोराणानं ब्राह्मणानं ब्राह्मणधम्मं भासतु, सचे भो गोतमस्स अगरू"ति। "तेन हि ब्राह्मणा सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामी" ति। "एवं भो" ति खो ते ब्राह्मणमहासाला भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

इसयो पुब्बका आसुं, सञ्ञतत्ता तपस्सिनो।
पञ्चकामगुणे हित्वा, अत्तदत्थमचारिसुं ॥ १ ॥

न पसू ब्राह्मणानासुं, न हिरञ्ञं न धानियं।
सज्झायधनधञ्ञासुं, ब्रह्मं निधिमपालयुं ॥ २ ॥

यं नेसं पकतं आसि, द्वारभत्तं उपट्ठितं।
सद्धापकतमेसानं, दातवे तदमञ्ञिसुं ॥ ३ ॥

नानारत्तेहि वत्थेहि, सयनेहावसथेहि च।
फीता जनपदा रट्ठा, ते नमस्सिंसु ब्राह्मणे ॥ ४ ॥

७. ब्राह्मणम्मिकसुत्त (२,७)

[ब्राह्मणों का पुराना धर्म। ब्राह्मणों के लोभ से यज्ञों में हिंसा प्रारम्भ हुई और जव माता तुल्य गौ पर हथियार उठा, तव से नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो गए अन्यथा पहले केवल इच्छा, भूख और बुढ़ापा—ये तीन ही रोग थे।]

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में विहार करते थे। तव कोसल-जनपद निवासी वहुत से जीर्ण, वृद्ध, वूढ़े, पुरनिया, अवस्था प्राप्त महाधनी ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए। जाकर भगवान् के साथ कुशल-मंगल की वार्ता कीं। कुशल-मंगल की बात समाप्त कर एक ओर वैठ गए। एक ओर वैठे हुए उन धनी ब्राह्मणों ने भगवान् से यह कहा—"हे गौतम! क्या इस समय ब्राह्मण पुराने ब्राह्मणों के ब्राह्मण-धर्म में दिखाई देते हैं?"

"ब्राह्मणो! इस समय ब्राह्मण पुराने ब्राह्मणों के ब्राह्मण-धर्म में नहीं दिखाई देते हैं।"

"अच्छा हो कि आप गौतम हमें पुराने ब्राह्मणों ने ब्राह्मण-धर्म को कहें, यदि आप गौतम को भारी न हो।"

"तो ब्राह्मणो! सुनो। भली प्रकार मन में करो, कहूँगा।"

"वहुत अच्छा" कह कर उन धनी ब्राह्मणों ने भगवान को उत्तर दिया। भगवान् ने यह कहा—

"पहले के ऋषि संयमी और तपस्वी थे। पाँच प्रकार के काम-भोगों को त्यागकर आत्म-हित के कार्यों में ही लगे रहे॥ १॥

"ब्राह्मणों के पास न पशु होते थे, न हिरण्य तथा धान्य। स्वाध्याय (=वेदों का पाठ) करना ही उनका धन-धान्य था। उन्होंने श्रेष्ठ निधि ब्रह्म (=विहार) की रक्षा की॥ २॥

उनके लिए जो भोजन श्रद्धा से तैयार कर द्वार पर रखा जाता था, खोजने पर उसे (उनको) देने योग्य समझते थे॥ ३॥

समृद्ध जनपदों तथा राष्ट्रों के लोग नाना रंगों के वस्त्रों, शयनों और निवास स्थानों से उन ब्राह्मणों को नमस्कार करते थे॥ ४॥

अवज्झा ब्राह्मणा आसु, अजेय्या धम्मरक्खिता।
न ते कोचि निवारेसि, कुलद्वारेसु सब्बसो ॥ ५ ॥
अट्ठचत्तारीसं[1] वस्सानि (कोमार) ब्रह्मचरियं चरिंसु ते।
विज्जाचरणपरियेट्ठिं, अचरुं ब्राह्मणा पुरे ॥ ६ ॥
न ब्राह्मणा अञ्ञमगमुं, न'पि भरियं किणिंसु ते।
सम्पियेनेव संवासं, संगन्त्वा समरोचयुं ॥ ७ ॥
अञ्ञत्र तम्हा समया, उतुवेरमणिं पति।
अन्तरा मेथुनं धम्मं, नास्सु गच्छन्ति ब्राह्मणा ॥ ८ ॥
ब्रह्मचरियं च सीलं च, अज्जवं मद्दवं तपं।
सोरच्चं अविहिंसं च, खन्तिं चापि अवण्णयुं ॥ ९ ॥
यो नेसं परमो आसि, ब्रह्मा दळ्हपरक्कमो।
स वापि मेथुनं धम्मं, सुपिनन्तेन नागमा ॥ १० ॥
तस्स वत्तमनुसिक्खन्ता, इधेके विञ्ञुजातिका।
ब्रह्मचरियं च सीलं च, खन्तिं चापि अवण्णयुं ॥ ११ ॥
तण्डुलं सयनं वत्थं, सप्पितेलं च याचिय।
धम्मेन समुदानेत्वा,[2] ततो यञ्ञमकप्पयुं।
उपट्ठितस्मिं यञ्ञस्मिं, नास्सु गावो हनिंसु ते ॥ १२ ॥
यथा माता पिता भाता, अञ्ञे वापि च ञातका।
गावो नो परमा मित्ता, यासु जायन्ति ओसधा ॥ १३ ॥
अन्नदा बलदा चेता, वण्णदा सुखदा तथा।
एतमत्थवसं ञत्वा, नास्सु गावो हनिंसु ते ॥ १४ ॥
सुखुमाला महाकाया, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
ब्राह्मणा सेहि धम्मेहि, किच्चाकिच्चेसु उस्सुका।
याव लोके अवत्तिंसु, सुखमेधित्थ'यं पजा ॥ १५ ॥
तेसं आसि विपल्लासो, दिस्वान अणुतो अणुं।
राजिनो च वियाकारं, नारियो समलंकता ॥ १६ ॥
रथे चाजञ्ञसंयुत्ते, सुकते चित्तसिब्बने।
निवेसने निवेसे च, विभत्ते भागसो मिते ॥ १७ ॥

---

१. अट्ठचत्तालीसं—म०। २. समोधानेत्वा—सी०, म०।

ब्राह्मण अवध्य, अजेय और धर्म से रक्षित थे। घर के द्वारों पर जाने पर कोई भी कभी उन्हें नहीं रोकता था ॥ ५ ॥

पहले के ब्राह्मण अड़तालीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और विद्या तथा आचरण की खोज में विचरण किया करते थे ॥ ६ ॥

ब्राह्मण पर-स्त्रियों के पास नहीं जाते थे और न वे स्त्रियों को खरीदते थे। वे परस्पर प्रेमवाली से सहवास करना पसन्द करते थे ॥ ७ ॥

ब्राह्मण ऋतु समय (=मासिक धर्म) को छोड़ बीच के निषिद्ध समय में मैथुन धर्म नहीं करते थे ॥ ८ ॥

वे ब्रह्मचर्य, शील, ऋजुता, मृदुता, तप, सज्जनता, अहिंसा और क्षमा के प्रशंसक थे ॥ ९ ॥

उनमें जो श्रेष्ठ और दृढ़ पराक्रमी ब्राह्मण[1] था, उसने स्वप्न में भी कभी मैथुन धर्म नहीं किया ॥ १० ॥

उसके आचरण का अनुकरण करते हुए यहाँ कुछ विज्ञ लोगों ने ब्रह्मचर्य, शील और क्षमा की प्रशंसा की ॥ ११ ॥

तब उन्होंने धार्मिक रीति से चावल, शयन, वस्त्र, घी और तेल की याचना कर, उन्हें एकत्र कर यज्ञ का संविधान किया। उन्होंने उस उपस्थित यज्ञ में गौवों की हत्या नहीं की ॥ १२ ॥

जैसे माता पिता, भाई या अन्य भाई-बन्धु हैं, वैसे ही गौवें हमारी परम मित्र हैं जिनसे कि औषधियाँ उत्पन्न होती हैं ॥ १३ ॥

ये अन्न, बल, वर्ण (=रूप) तथा सुख देने वाली हैं, इस बात को जानकर उन्होंने गौवों की हत्या नहीं की ॥ १४ ॥

कोमल, विशालकाय, सुन्दर तथा यशस्वी ब्राह्मण इन धर्मों से युक्त हो अपने करणीय कार्यों में जब तक लगे रहे तब तक यह प्रजा सुखी रही ॥ १५ ॥

धीरे-धीरे राजाओं की सम्पत्ति, सजी-धजी स्त्रियों, अच्छे-अच्छे घोड़े जुते सुन्दर बेल-बूटेदार रथों और बराबर अनेक भागों में बँटे निवासों को देखकर उनमें परिवर्तन आया ॥ १६–१७ ॥

---

१. ब्रह्मा के समान श्रेष्ठ ब्राह्मण—अट्ठकथा।

गोमण्डलपरिब्बूळ्हं, नारीवरगणायुतं।
उळारं मानुसं भोगं, अभिज्झायिंसु ब्राह्मणा ॥ १८ ॥
ते तत्थ मन्ते गन्थेत्वा, ओक्काकं तदुपागमुं।
पहूतधनधञ्ञोसि, (यजस्सु बहु ते वित्तं) यजस्सु बहु ते धनं ॥१९॥
ततो च राजा सञ्ञत्तो, ब्राह्मणेहि रथेसभो।
अस्समेधं पुरिसमेधं (सम्मापासं) वाजपेय्यं निरग्गळं।
एते यागे यजित्वान, ब्राह्मणानं अदा धनं ॥ २० ॥
गावो सयनं च वत्थं च, नारियो समलङ्कता।
रथे चाजञ्ञसंयुत्ते, सुकते चित्तसिब्बने ॥ २१ ॥
निवेसनानि रम्मानि, सुविभत्तानि भागसो।
नानाधञ्ञस्स पूरेत्वा, ब्राह्मणानं अदा धनं ॥ २२ ॥
ते च तत्थ धनं लद्धा, सन्निधिं समरोचयुं।
तेसं इच्छावतिण्णानं, भिय्यो तण्हा पवड्ढथ।
ते तत्थ मन्ते गन्थेत्वा, ओक्काकं पुनुपागमुं[1] ॥ २३ ॥
यथा आपो च पठवी, हिरञ्ञं धनधानियं।
एवं गावो मनुस्सानं, परिक्खारो सो हि पाणिनं।
यजस्सु बहु ते वित्तं, यजस्सु बहु ते धनं ॥ २४ ॥
ततो च राजा सञ्ञत्तो, ब्राह्मणेहि रथेसभो।
नेकसतसहस्सियो गावो, यञ्ञे अघातयि ॥ २५ ॥
न पादा न विसाणेन, नास्सु हिंसन्ति केनचि।
गावो एळकसमाना, सोरता कुम्भदूहना।
ता विसाणे गहेत्वान, राजा सत्थेन घातयि ॥ २६ ॥
ततो[2] च देवा पितरो[3], इन्दो असुररक्खसा।
अधम्मो इति पक्कन्दुं, यं सत्थं निपती गवे ॥ २७ ॥
तयो रोगा पुरे आसुं, इच्छा अनसनं जरा।
पसूनं च समारम्भा, अट्ठानवुतिमागमुं ॥ २८ ॥

---

१. पुन मुपागमुं—म० । २-३. ततो देवा पितरो च—स्या० ।

उन ब्राह्मणों ने गौ-मण्डली से घिरे और सुन्दर नारियों से युक्त, विपुल, मानुषिक सम्पत्ति का लोभ किया ॥ १८ ॥

तब वे मन्त्र रच कर इक्ष्वाकु के पास गए और कहा कि तू बहुत धन्य-धान्य वाला है, यज्ञ कर। तेरे पास बहुत सम्पत्ति तथा धन है, यज्ञ कर ॥१९॥

तब रथपति राजा ने ब्राह्मणों द्वारा समझाये जाने पर अश्वमेध, पुरुषमेध, सम्मापास (=यात्रा-यज्ञ), वाजपेय[1], निरर्गल (=सर्वमेध)—इन यज्ञों को कर ब्राह्मणों को धन दिया ॥ २० ॥

गौवें, शय्या, वस्त्र, सजी-धजी स्त्रियाँ, उत्तम घोड़े जुते सुसज्जित बेलबूटेदार रथ और धन-धान्य से भर कर, भली प्रकार बराबर-बराबर कोठरियों में विभक्त सुन्दर भवनों को धन के रूप में ब्राह्मणों को दिया ॥ २१,२२ ॥

उन्होंने वहाँ धन पाकर संचय करना पसन्द किया। इस प्रकार इच्छा के वशीभूत उन ब्राह्मणों की तृष्णा बहुत बढ़ गयी। वे मन्त्रों की रचना कर पुनः इक्ष्वाकु के पास गए ॥ २३ ॥

(जाकर उन्होंने कहा—) जिस प्रकार जल, पृथ्वी, हिरण्य और धन-धान्य हैं, उसी प्रकार मनुष्यों के लिए गौवें हैं। वे प्राणियों के उपभोग की वस्तु हैं, तेरे पास बहुत सम्पत्ति है, यज्ञ कर। तेरे पास बहुत धन है, यज्ञ कर ॥ २४ ॥

तब उन ब्राह्मणों द्वारा समझाये जाने पर रथपति राजा ने यज्ञ में लाखों गौवों का वध किया ॥ २५ ॥

जो गौवें न पैर से, न सींग से और न किसी अंग से हिंसा करती हैं, जो भेड़ के समान सीधी हैं और घड़े भर दूध देने वाली हैं, उन्हें सींगों से पकड़ कर राजा ने शस्त्र से मारा ॥ २६ ॥

जब गौवों पर शस्त्र-घात हुआ तब देवता, पितर, इन्द्र, असुर तथा राक्षस चिल्ला उठे—"यह अधर्म है ! ॥ २७ ॥

पहले केवल तीन रोग थे—इच्छा, भूख, और बुढ़ापा। पशुओं की हत्या से अनट्ठावे हो गए ॥ २८ ॥

---

१. सुरा पीने का आयोजन—अट्ठकथा।

एसो अधम्मो दण्डानं, ओक्कन्तो पुराणो अहु ।
अदूसिकायो हञ्ञन्ति, धम्मा धंसेन्ति[1] याजका ॥ २९ ॥

एवमेसो अनुधम्मो, पोराणो विञ्ञुगरहितो ।
तत्थ एदिसकं पस्सति, याजकं गरहती[2] जनो ॥ ३० ॥

एवं धम्मे वियापन्ने, विभिन्ना सुद्दवेस्सिका ।
पुथु विभिन्ना खत्तिया, पतिं भरिया अवमञ्ञथ ॥ ३१ ॥

खत्तिया ब्रह्मबन्धू च, ये चञ्ञे गोत्तरक्खिता ।
जातिवादं निरङ्कत्वा, कामानं वसमागमुं'न्ति ॥ ३२ ॥

एवं वुत्ते ते ब्राह्मणमहासाला भगवन्तं एतदवोचुं—"अभिक्कन्तं भो गोतम, अभिक्कन्तं भो गोतम, सेय्यथापि भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूल्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य चक्खुमन्तो रूपानि दक्खिन्तीति एवमेव भोता गोतमेन अनेक परियायेन धम्मो पकासितो। एते मयं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छाम, धम्मं च भिक्खुसंघं च । उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते सरणं गते'ति ।

ब्राह्मणधम्मिकसुत्तं निट्ठितं ।

८—नावा-सुत्तं (२, ८)

यस्मा हि धम्मं पुरिसो विजञ्ञा, इन्दं'व नं देवता पूजयेय्य ।
सो पूजितो तस्मिं पसन्नचित्तो, बहुस्सुतो पातुकरोति धम्मं ॥ १ ॥

तदट्ठि कत्वान निसम्म धीरो, धम्मानुधम्मं पटिपज्जमानो ।
विञ्ञू विभावी निपुणो च होति, यो तादिसं भजति अप्पमत्तो ॥ २ ॥

खुद्दं च बालं उपसेवमानो, अनागतत्थं च उसूयकं च ।
इधेव धम्मं अविभावयित्वा, अवितिण्णकङ्खो मरणं उपेति ॥ ३ ॥

१. धंसन्ति—म०, स्या० । २. गरही—क० ।

यह हिंसा रूपी अधर्म पुराने समय से चला आ रहा है। पुरोहित निर्दोष गौवों की हत्या करते हैं और धर्म से भ्रष्ट होते हैं ॥ २९ ॥

इस प्रकार यह नीच कर्म पुराना है और जानकारों द्वारा निन्दित है। लोग जहाँ भी इस प्रकार के पुरोहित को देखते हैं, उसकी निन्दा करते हैं ॥ ३०॥

इस प्रकार धर्म से च्युत होने पर शूद्रों और वैश्यों में फूट हो गई। क्षत्रिय भी विभिन्न भागों में बँट गए। स्त्री पति का अनादर करने लगी ॥ ३१ ॥

क्षत्रिय, ब्राह्मण और दूसरे गोत्र से रक्षित जातिवाद को तोड़ कर विषयों (=काम-भोगों) के वशी भूत हो गए ॥ ३२ ॥

ऐसा कहने पर उन महाधनी ब्राह्मणों ने भगवान् से यह कहा—"आश्चर्य है हे गौतम! आश्चर्य है हे गौतम! जैसे कि हे गौतम! उल्टे हुए (बर्तन) को सीधा कर दे, ढँके हुए को उघाड़ दे, रास्ता भूले हुए को रास्ता बतला दे, अथवा अन्धकार में तेल के प्रदीप को धारण करे, जिससे कि आँख वाले लोग चीजों को देख सकें, ऐसे ही आप गौतम द्वारा अनेक प्रकार से धर्म प्रकाशित किया गया ये हम लोग आप गौतम की शरण जाते हैं; धर्म और भिक्षु-संघ की भी। हमें आप गौतम आज से जीवन-पर्यन्त शरणागत उपासक धारण करें।"

ब्राह्मणधम्मिकसुत्त समाप्त।

८—नावासुत्त[1] (२, ८)

[गुरु-महिमा]

जिससे मनुष्य धर्म को जाने उसकी उसी प्रकार पूजा करे जिस प्रकार कि इन्द्र की देवता पूजा करते हैं। वह बहुश्रुत पूजित होने पर उस पर प्रसन्न-चित्त हो धर्म प्रकाशित करता है ॥१॥

जो बुद्धिमान् व्यक्ति उस प्रकार के गुरु की सतर्कता के साथ संगति करता है, मन लगाकर उसकी बातों को सुनता है और धर्म के अनुसार आचरण करता है तो विज्ञ समझदार और निपुण हो जाता है ॥२॥

जो क्षुद्र, मूर्ख, अर्थ को न समझने वाले और ईर्ष्यालु गुरु की संगति करता है, वह यहीं धर्म को विना समझे ही, शंकाओं को विना दूर किए ही, मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ॥३॥

---

१. 'धम्मसुत्त' भी इसका नाम है—अट्ठकथा।

यथा नरो आपगं ओतरित्वा, महोदिकं सलिलं सीघसोतं।
सो वुय्हमानो अनुसोतगामी, किं सो परे सक्खति तारयेतुं॥ ४॥

तथेव धम्मं अविभावयित्वा, वहुस्सुतानं अनिसामयत्थं।
सयं अजानं अवितिण्णकङ्खो, किं सो परे सक्खति निज्झपेतुं॥ ५॥

यथापि नावं दळ्हमारुहित्वा, पियेन रित्तेन समङ्गिभूतो।
सो तारये तत्थ वहूपि अञ्ञे, तत्रूपयञ्ञू कुसलो मुतीमा[1]॥ ६॥

एवम्पि यो वेदगु भावितत्तो, बहुस्सुतो होति अवेधधम्मो।
सो खो परे निज्झपये पजानं, सोतावधानूपनिसूपपन्नो॥ ७॥

तस्मा हवे सप्पुरिसं भजेथ, मेधाविनं चेव वहुस्सुतं च।
अञ्ञाय अत्थं पटिपज्जमानो, विञ्ञातधम्मो सो[2] सुखं लभेथा'ति॥८॥

नावासुत्तं निट्ठितं।

९—किंसील-सुत्तं (२,९)

किं सीलो किं समाचारो, कानि कम्मानि ब्रूहयं।
नरो सम्मा निविट्ठस्स, उत्तमत्थं च पापुणे॥ १॥

वद्धापचायी[3] अनुसुय्यको सिया, कालञ्ञू चस्स गरूनं[4] दस्सनाय।
धम्मिं कथं एरियितुं खणञ्ञू, सुणेय्य सक्कच्च सुभासितानि॥ २॥

कालेन गच्छे गरून सकासं, थम्भं निरङ्कत्वा निवातवुत्ति।
अत्थं धम्मं संयमं ब्रह्मचरियं, अनुस्सरे चेव समाचरे च॥ ३॥

धम्मारामो धम्मरतो, धम्मे ठितो धम्मविनिच्छयञ्ञू।
नेवाचरे धम्मसन्दोसवादं, तच्छेहि नीयेथ सुभासितेहि॥ ४॥

---

१. मतीमा-स्या०, क०। २. स—म०। ३. वुद्धापचायी—म०। ४. गरुनं—सी०।

जो मनुष्य तेज बहने वाली विशाल नदी में उतरकर धारा के साथ बह रहा है, वह दूसरों को किस प्रकार तार सकता है ? ॥४॥

उसी प्रकार जिसने धर्म को नहीं समझा है और बहुश्रुतों से अर्थ को नहीं सुना है। विना स्वयं समझे और शंकाओं को दूर किए वह दूसरों को क्या मिला सकता है ? ॥५॥

जिस प्रकार पतवार और डाँडों से युक्त मजबूत नाँव पर चढ़कर चतुर, बुद्धिमान् नाविक उससे और लोगों को भी पार करता है, उसी प्रकार ज्ञानी, संयमी बहुश्रुत सांसारिक बातों से अविचिलित रहता है। वह सुनने के लिए इच्छुक योग्य लोगों को धर्म सिखाता है ॥६-७॥

इसलिए बुद्धिमान्, बहुश्रुत सत्पुरुष की संगति करनी चाहिए, जो अर्थ को समझकर धर्म के अनुसार चलता है। ऐसा वह धर्म को जानकर सुख को प्राप्त करता है ॥८॥

नावासुत्त समाप्त।

९. किंसीलसुत्त (२,९)

[निर्वाण-प्राप्ति के लिए अपेक्षित गुण]

(आयुष्मान् सारिपुत्र–)

"किस शील, किस आचरण और किन कर्मों को करने में भली प्रकार लगा हुआ व्यक्ति अर्हत्व को प्राप्त करता है" ? ॥ १ ॥

भगवान् बुद्ध—

"वह बड़ों की सेवा करे, ईर्ष्यालु न हो, उचित समय पर गुरुओं का दर्शन करे, धर्म-कथा सुनने का उचित क्षण जाने और कहे गए उपदेशों को आदर के साथ सुने ॥ २ ॥

जड़ता को छोड़ विनीतभाव से उचित समय पर गुरुजनों के पास जाने और अर्थ, धर्म, संयम तथा ब्रह्मचर्य का स्मरणकर उनका आचरण करे ॥ ३ ॥

वह धर्म में रमते हुए, धर्म में रत हो, धर्म में स्थित हो, धार्मिक विनिश्चय को जानते हुए, धर्म को दूषित करने वाली चर्चा में न लगे। वास्तविक सदुपदेशों से ही समय व्यतीत करे ॥ ४ ॥

हस्सं जप्पं परिदेवं पदोसं, मायाकतं कुहनं गिद्धिमानं।
सारम्भकक्कस्सकसावमुच्छं[1], हित्वा चरे वीतमदो ठितत्तो॥ ५॥

विञ्ञातसारानि सुभासितानि, सुतं च विञ्ञातं समाधिसारं।
न तस्स पञ्ञा च सुतं च वड्ढति, यो साहसो होति नरो पमत्तो॥ ६॥

धम्मे च ये अरियपवेदिते रता, अनुत्तरा ते वचसा मनसा कम्मना[2] च।
ते सन्ति-सोरच्च-समाधि-सण्ठिता, सुतस्स पञ्ञाय च
सारमज्झगू'ति॥ ७॥

किंसीलसुत्तं निट्ठितं।

१०—उट्ठान-सुत्तं (२,१०)

उट्ठहथ निसीदथ, को अत्थो सुपिनेन वो।
आतुरानं हि का निद्दा, सल्लविद्धान रुप्पतं॥ १॥

उट्ठहथ निसीदथ, दळ्हं सिक्खथ सन्तिया।
मा वो पमत्ते विञ्ञाय, (मच्चुराजा) अमोहयित्थ वसानुगे॥२॥

याय देवा मनुस्सा च, सिता तिट्ठन्ति अत्थिका।
तरथेतं विसत्तिकं, खणो वे[3] मा उपच्चगा।
खणातीता हि सोचन्ति, निरयम्हि समप्पिता॥ ३॥

पमादो रजो पमादो, पमादानुपतितो रजो।
अप्पमादेन विज्जाय, अब्बहे सल्लमत्तनो'ति॥ ४॥

उट्ठानसुत्तं निट्ठितं।

१. सारम्भं कक्कसं कसावञ्च मुच्छं—सी०, म०। २. कम्मुना—म०।
३. वो—सी०, म०।

वह अट्टहास, गप्प, विलाप, द्वेष, माया, ढोंग, लोलुपता, लड़ाई झगड़े की बातें, कर्कशता (=कटु-वचन), राग और मोह को त्याग, मद-रहित, संयमी हो विचरण करे ॥ ५ ॥

सुभाषित ज्ञान के सार हैं। समाधि विद्या और ज्ञान का सार है। जो मनुष्य रागी[1] और प्रमादी होता है, उसकी प्रज्ञा (=ज्ञान) और श्रुत नहीं बढ़ते हैं॥ ६ ॥

जो आर्यों (=बुद्धों) के देशित धर्म में रत हैं, वे मन, वचन तथा शरीर से उत्तम हैं। उन्होंने शान्ति, शिष्टता तथा समाधि में संलग्न हो श्रुत और प्रज्ञा के सार को प्राप्त कर लिया है ॥७॥

किंसीलसुत्त समाप्त।

१०—उट्ठानसुत्त (२, १९)

[उठो, बैठो और चुभे काँटे को निकाल फेंको]

उठो, बैठो, सोने से तुम्हें क्या लाभ? कांटा चुभे पीड़ित रोगियों को नींद कैसी? ॥१॥

उठो, बैठो, दृढ़ता के साथ शान्ति (=निर्वाण) के लिए अभ्यास करो। मत तुम्हें प्रमत्त जानकार मृत्युराज मोहित करके अपने वश में कर ले ॥२॥

जिस तृष्णा में बँधकर देवता और मनुष्य सदा चक्कर काटा करते हैं, उसे पार कर जाओ, तुम्हारा क्षण न बीत जाय। क्षण बीते हुये लोग नरक में पड़कर शोक करते हैं ॥३॥

प्रमाद रज है। प्रमाद के कारण ही रज उत्पन्न होता है। अप्रमाद और विद्या से अपने (दुःख रूपी) काँटे को निकाल फेंके ॥४॥

उट्ठानसुत्त समाप्त।

---

१. यहां 'साहस' का तात्पर्य राग में लिप्त होना है—अट्ठकथा।

११—राहुल-सुत्तं (२,११)

कच्चि अभिण्हसंवासा, नावजानासि पण्डितं।
उक्काधारो मनुस्सानं, कच्चि अपचितो तया ॥ १ ॥

नाहं अभिण्हसंवासा, अवजानामि पण्डितं।
उक्काधारो[1] मनुस्सानं, निच्चं अपचितो मया ॥ २ ॥

वत्थुगाथा

पञ्चकामगुणे हित्वा, पियरूपे मनोरमे।
सद्धाय घरा निक्खम्म, दुक्खस्सन्तकरो भव ॥ ३ ॥

मित्ते भजस्सु कल्याणे, पन्तं[2] च[3] सयनासनं।
विवित्तं अप्पनिग्घोसं, मत्तञ्ञू होहि भोजने ॥ ४ ॥

चीवरे पिण्डपाते च, पच्चये सयनासने।
एतेसु तण्हं माकासि, मा लोकं पुनरागमि ॥ ५ ॥

संवुतो पातिमोक्खस्मिं, इन्द्रियेसु च पञ्चसु।
सति कायगतात्यत्थु, निब्बिदाबहुलो भव ॥ ६ ॥

निमित्तं परिवज्जेहि, सुभं रागूपसंहितं।
असुभाय चित्तं भावेहि, एकग्गं सुसमाहितं ॥ ७ ॥

अनिमित्तं च भावेहि, मानानुसयमुज्जह।
ततो मानाभिसमया, उपसन्तो चरिस्सी'ति ॥ ८ ॥

इत्थं सुदं भगवा आयस्मन्तं राहुलं इमाहि गाथाहि अभिण्हं ओवदती'ति।

राहुलसुत्तं निट्ठितं।

---

१. ओक्काधरो—स्या०, क०। २-३. पन्थञ्च—सी०।

परिवार का ही प्रथम संगीति में संगृहीत ग्रन्थ है और इसका उतना ही महत्व है जितना कि पालि त्रिपिटक के अन्य ग्रन्थों का ।

सुत्तनिपात की विषय-वस्तु—ऊपर हम कह आए हैं कि सुत्तनिपात पांच वग्गों में विभक्त हैं और उसमें ७० सुत्त आए हैं । वत्थुगाथा और पारायण सुत्त को लेकर इनकी संख्या ७२ हो जाती है ।

पहला उरगवग्ग है, जिसमें १२ सुत्त हैं । उरग सुत्त में सर्प के केंचुली छोड़ने के समान आसक्तियों को त्यागने का उपदेश है । धनियसुत्त में मगध के एक गृहस्थ के सुखी जीवन का वर्णन है । खग्गविसाणसुत्त में गैंडे की भाँति अकेले विचरण करते हुए विमुक्ति-सुख का अनुभव करने का उल्लेख है, जो बड़ा ही संविग्नकारक और विरक्तिजनक है । कसिभारद्वाजसुत्त में ५०० हलों से खेती कराने वाले गृहस्थ ब्राह्मण के प्रव्रजित होकर अर्हत्व का साक्षात्कार करने का वर्णन है । भगवान् ने चुन्द को चार मुनियों का परिचय चुन्दसुत्त में दिया है । पराभवसुत्त में अवनति के कारणों का और वसलसुत्त में नीच कहलाने वाले मनुष्यों का वर्णन है । मेत्तसुत्त में सभी प्राणियों के प्रति मैत्री करने का उपदेश है । आगे हेमवत और आलवक यक्षों का बुद्ध की शरण आने का वर्णन है । विजयसुत्त में अनित्यता का वर्णन है और मुनिसुत्त में भिक्षु और गृहस्थ की जीवनचर्या वर्णित है ।

दूसरा चूळवग्ग है । इसमें १४ सुत्त हैं । इस वर्ग का पहला सुत्त रतनसुत्त है, जिसमें बुद्ध, धर्म और संघ की महिमा बतलाई गई है और कहा गया है कि इस सत्य-वचन से कल्याण हो । यह बहुत ही लोकप्रिय एवं कल्याणकारी सुत्त है । इसकी देशना भगवान् ने वैशाली में दी थी । इसकी देशना से वहाँ के सभी रोग, दुर्भिक्ष, अवृष्टि आदि के उपद्रव शान्त हो गये थे । आमगन्ध सुत्त में बतलाया गया है कि मांस-मछली खाना आमगन्ध नहीं है, प्रत्युत बुरे आचरण ही आमगन्ध हैं । महामङ्गल सुत्त में अड़तीस मंगल बतलाए गए हैं । यह भी महामंगलकारी सुत्त है । ब्राह्मणधम्मिक सुत्त में प्राचीन ब्राह्मणों के धर्म बतलाये गये हैं और कहा गया है कि पहले तीन ही रोग थे—इच्छा, भूख और जरा, किन्तु पशु-वध से वे अट्ठानवे हो गए । धम्मिकसुत्तमें प्रव्रजित और गृहस्थों के कर्तव्यों का निर्देश किया गया है ।

११—राहुलसुत्त (२, ११)

[भगवान् बुद्ध का राहुल को उपदेश]

भगवान् बुद्ध—

क्या सदा साथ रहने के कारण पण्डित (=सारिपुत्र) का अनादर तो नहीं करते ? क्या मनुष्यों में उल्का (=मशाल) धारण करने वाले (=सारिपुत्र) तेरे द्वारा पूजित हैं ? ॥१॥

राहुल—

मैं सदा साथ रहने के कारण पण्डित का अनादर नहीं करता, मनुष्यों में उल्का धारण करने वाले मेरे द्वारा पूजित हैं ॥२॥

वस्तु-गाथा

भगवान् बुद्ध—

पाँच प्रकार के प्रिय और मनोरम काम-भोगों को त्यागकर श्रद्धापूर्वक घर से निकलकर दुःख का अन्त करने वाला बनो ॥३॥

उत्तम मित्रों का साथ करो। एकान्त और शब्द-रहित ग्राम से दूर शान्त स्थान में शयनासन लगाओ तथा भोजन में मात्रा जानने वाला बनो ॥४॥

चीवर, पिण्डपात (=भोजन), प्रत्यय (=औषधि) तथा शयनासन— इनमें तृष्णा मत करो। इस लोक में फिर मत आओ ॥५॥

प्रातिमोक्ष (के नियमों) में संयम करो, पाँचों इन्द्रियों में भी कायगता-स्मृति तुझे बनी रहे। वैराग्य बढ़ाने वाला बनो ॥६॥

राग से युक्त सौंदर्य के निमित्तों को त्यागो। एकाग्र और समाधिस्थ हो अशुभ की भावना में चित्त को लगाओ ॥७॥

निर्वाण (=अनिमित्त) की भावना करो। अभिमान के अनुशय (=चित्त मल) को निकाल दो। तब अभिमान का अन्तकर उपशान्त होकर विचरण करोगे ॥८॥

इस प्रकार भगवान् आयुष्मान् राहुल को इन गाथाओं से नित्य उपदेश देते थे।

राहुलसुत्त समाप्त।

१२—वङ्गीस-सुत्तं[1] (२,१२)

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा आळवियं विहरति अग्गालवे चेतिये । तेन खो पन समयेन आयस्मतो वङ्गीसस्स उपज्झायो निग्रोधकप्पो नाम थेरो अग्गाळवे चेतिये अचिरपरिनिब्बुतो होति । अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"परिनिब्बुतो नु खो मे उपज्झायो उदाहु नो परिनिब्बुतो" ति ? अथ खो आयस्मा वङ्गीसो सायह्नसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं एतदवोच—"इध मय्हं, भन्ते, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि-परिनिब्बुतो नु खो मे उपज्झायो उदाहु नो परिनिब्बुतो" ति ? अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"पुच्छाम[2] सत्थारं अनोमपञ्ञं, दिट्ठेव धम्मे यो विचिकिच्छानं छेत्ता ।
अग्गालवे कालमकासि भिक्खु, ञातो यसस्सी अभिनिब्बुतत्तो ॥१॥
निग्रोधकप्पो इति तस्स नामं, तया कतं भगवा ब्राह्मणस्स ।
सो तं नमस्सं अचरी मुत्यपेक्खो, आरद्धविरियो दळ्हधम्मदस्सी ॥२॥
तं सावकं सक्क[3] मयम्पि सब्बे, अञ्ञातुमिच्छाम समन्तचक्खु ।
समवट्ठिता नो सवणाय सोता, तुवं नो सत्था त्वमनुत्तरोसि ॥३॥
छिन्देव नो विचिकिच्छं ब्रूहि मेतं, परिनिब्बुतं वेदय भूरिपञ्ञ ।
मज्झेव[4] नो भास समन्तचक्खु, सक्को'व देवानं सहस्सनेत्तो ॥४॥
ये केचि गन्था इध मोहमग्गा, अञ्ञाणपक्खा विचिकिच्छट्ठाना ।
तथागतं पत्वा न ते भवन्ति, चक्खुं हि एतं परमं नरानं ॥ ५ ॥

---

१. निग्रोधकप्पसुत्तं–म० । २. पुच्छामि–क० । ३. सक्य–म० । ४. मज्झे च–स्या०, क० ।

१२—वङ्गीससुत्त (२, १२)

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् आलवी में अग्गालव चैत्य में विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् वंगीश के उपाध्याय (=गुरु) न्यग्रोधकल्प नामक स्थविर का कुछ ही दिन पूर्व अग्गालव चैत्य में परिनिर्वाण हो गया था। तब आयुष्मान् वंगीश को एकान्त में ध्यानावस्थित होने पर यह चित्त में वितर्क उत्पन्न हुआ—"क्या मेरे उपाध्याय का परिनिर्वाण हो गया अथवा नहीं ?" आयुष्मान् वंगीश सायं काल ध्यान से उठ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् वंगीश ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते! मुझे यहाँ एकान्त में ध्यानावस्थित होने पर ऐसा चित्त-वितर्क उत्पन्न हुआ—क्या मेरे उपाध्याय का परिनिर्वाण हो गया अथवा नहीं ?" तब आयुष्मान् वंगीश ने आसन से उठकर चीवर को एक कंधे पर करके जिधर भगवान् थे उधर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करके भगवान् से गाथाओं में कहा—

आयुष्मान् वंगीश—

इसी जन्म में जो महाप्रज्ञावान् शास्ता शंकाओं को दूर करने वाले हैं, उनसे मैं उस प्रसिद्ध, यशस्वी, शान्तचित्त भिक्षु के सम्बन्ध में पूछता हूँ जिनका कि देहान्त अग्गालव में हो गया ॥ १ ॥

हे भगवान्! आपने ही उस ब्राह्मण का नाम न्यग्रोधकल्प रखा था। उन उद्योगी, दृढ़-धर्मदर्शी ने मुक्ति की कामना से आपको नमस्कार करते हुए विचरण किया ॥ २ ॥

हे समन्तचक्षु! शाक्य!! उस श्रावक के सम्बन्ध में हम सब जानना चाहते हैं। हमारे कान सुनने को तैयार हैं। आप हमारे शास्ता हैं, आप सर्वोत्तम हैं ॥ ३ ॥

हे महाप्रज्ञ! हमारी शंका दूर करें। यह बतलायें कि वे परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। हे समन्तचक्षु! जिस प्रकार सहस्रनेत्र इन्द्र देवताओं के बीच बोलता है, उसी प्रकार आप हम लोगों के बीच बोलें ॥ ४ ॥

यहाँ मोह की ओर ले जाने वाली, अज्ञान सम्बन्धी, शंका उत्पादक जो कुछ ग्रन्थियाँ हैं, तथागत के पास पहुँचने पर वे सब नष्ट हो जाती हैं। तथागत ही मनुष्यों के उत्तम चक्षु हैं ॥ ५ ॥

नो चे हिं जातु पुरिसो किलेसे, वातो यथा अब्भघनं विहाने।
तमोवस्स निवुतो सब्बलोको, न जोतिमन्तो'पि नरा तपेय्युं ॥ ६ ॥
धीरा च पज्जोतकरा भवन्ति, तं तं अहं धीर[1] तथेव मञ्ञे।
विपस्सिनं जानमुपागमम्हा[2], परिसासु नो आविकरोहि कप्पं ॥ ७ ॥
खिप्पं गिरं एरय वग्गु वग्गुं, हंसोव पग्गय्ह सणिं[3] निकूज।
बिन्दुस्सरेन सुविकप्पितेन, सब्बेव ते उज्जुगता सुणोम ॥ ८ ॥
पहीनजातिमरणं असेसं, निग्गय्ह धोनं[4] वदेस्सामि धम्मं।
न कामकारो हि पुथुज्जनानं, संखेय्यकारो च तथागतानं ॥ ९ ॥
सम्पन्नवेय्याकरणं तवेदं, समुज्जुपञ्ञस्स[5] समुग्गहीतं।
अयमञ्जलि पच्छिमो सुप्पणामितो, मा मोहयी जानमनोमपञ्ञ ॥१०॥
परोवरं अरियधम्मं विदित्वा, मा मोहयी जानमनोमविरिय[6]।
वारिं यथा घम्मनि घम्मतत्तो, वाचाभिकङ्खामि सुतं[7] पवस्स[8] ॥११॥
यदत्थिकं[9] ब्रह्मचरियं अचारि[10], कप्पायनो कच्चिस्स तं अमोघं।
निब्बायि सो अनुपादिसेसो[11], यथा विमुत्तो अहु तं सुणोम" ॥१२॥
अच्छेच्छि तण्हं इध नामरूपे (इति भगवा), कण्हस्स[12] सोतं दीघरत्तानु-
सयितं।
अतारि जातिमरणं असेसं, इच्चब्रवी भगवा पञ्चसेट्ठो ॥१३॥

---

१. वीर—म०।
२. जानमुपगमुम्हा—म०।
३. सणिकं—म०, सी०।
४. धोतं—सी०।
५. समुज्जपञ्ञस्स—स्या०, क०।
६. जानमनोमवीर—म०।
७ ८. सुतस्स वस्स—स्या०।
९. यदत्थियं—रो०।
१०. अचरी—म०।
११. आदु सउपादिसेसो—सी०, म०।
१२. तण्हाय—क०।

जैसे हवा आकाश से बादलों को दूर कर देती है, वैसे ही यदि आपके समान मनुष्य लोगों की वासनाओं को दूर नहीं करेंगे तो संसार मोह से आच्छादित रहेगा और प्रकाशवान् पुरुष भी चमक नहीं पायेंगे ॥ ६ ॥

धीर प्रकाश देने वाले होते हैं। हे धीर ! मैं आपको भी वैसा ही समझता हूँ। हम लोग भगवान् को सर्वदर्शी समझकर आये हैं। (इस) परिषद् में हम लोगों को न्यग्रोधकल्प के विषय में बतलायें ॥ ७ ॥

जिस प्रकार हंस जल्दी-जल्दी मधुर वाणी बोलता है, वैसे ही आप शीघ्र स्पष्ट रूप में मधुर-मधुर वाणी बोलें। हम सब उसे ध्यानपूर्वक सुनेंगे ॥ ८ ॥

आपने सम्पूर्ण जन्म-मृत्यु का नाश किया है। मैं सुपरिशुद्ध आपसे उपदेश के लिए सानुरोध निवेदन करूँगा। पृथक् जनों[1] की इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं। तथागत जानकारी के साथ कर्म करते हैं ॥ ९ ॥

हे ऋजुप्रज्ञ ! आपके इस सम्पूर्ण कथन को हमने अच्छी तरह ग्रहण किया है। यह मेरा अन्तिम प्रणाम हैं। हे महाप्रज्ञ ! हमें भ्रम में न रखें ॥ १० ॥

महाप्रज्ञ ! आरम्भ से अन्त तक आर्य-धर्म को जानकर आप हमको भ्रम में न रखें। जिस प्रकार गर्मी के मौसम में गर्मी से पीड़ित मनुष्य पानी के लिए लालायित हो, उसी प्रकार मैं आपके वचन की आकांक्षा करता हूँ। आप वाणी की वर्षा करें ॥ ११ ॥

कप्पायन (= न्यग्रोधकल्प) ने जिस मतलब के लिए ब्रह्मचर्य का पालन किया, क्या वह सफल हुआ ? क्या वे अनुपादिशेष निर्वाण को प्राप्त हुए ? वे जैसे विमुक्त हुये, उसे बतलायें, हम उसे सुनना चाहते हैं ॥ १२ ॥

भगवान् बुद्ध—

वह नाम-रूप की तृष्णारूपी दीर्घकाल से बहने वाली मार की सरिता को नाश कर सारे जन्म-मृत्यु से पार हो गया—पञ्चश्रेष्ठ[2] भगवान् ने यह कहा ॥ १३ ॥

---

१. जिन्होंने मार्ग और फल अभी तक प्राप्त नहीं किया है।

२. प्रथम शिष्य तंचवर्गियों में श्रेष्ठ अथवा श्रद्धा आदि पाँच इन्द्रियों या शील आदि स्कन्धों से श्रेष्ठ होने के कारण पञ्चश्रेष्ठ, यह संगीतिकारकों का वचन है—अट्ठकथा।

"एस सुत्वा पसीदामि, वचो ते इसिसत्तम।
अमोघं किर मे पुट्ठं, न मं वञ्चेसि ब्राह्मणो ॥१४॥

यथावादी तथाकारी, अहु बुद्धस्स सावको।
अच्छिदा[1] मच्चुनो जालं, ततं मायाविनो दळ्हं ॥१५॥

अद्दस भगवा आदिं, उपादानस्स कप्पियो।
अच्चगा वत कप्पायनो, मच्चुधेय्यं सुदुत्तर'न्ति ॥१६॥

वङ्गीससुत्तं निट्ठितं।

१३—सम्मापरिब्बाजनिय-सुत्तं (२,१३)

"पुच्छाम मुनिं पहूतपञ्ञं, तिण्णं परिनिब्बुतं ठितत्तं।
निक्खम्म घरा पनुज्ज कामे, कथं(भिक्खु)सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य"॥१॥

"यस्स मङ्गला समूहता (इति भगवा), उप्पाता[2] सुपिना च लक्खणा च।
सो[3] मङ्गलदोसविप्पहीनो[4], सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥ २ ॥

रागं विनयेथ मानुसेसु, दिब्बेसु कामेसु चापि भिक्खु।
अतिक्कम्म भवं समेच्च धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥ ३ ॥

विपिट्ठि कत्वा पेसुनानि, कोधं कदरियं जहेय्य भिक्खु।
अनुरोध-विरोध-विप्पहीनो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥ ४ ॥

---

१. अच्छिदा—म०।
२. उप्पादा—सी०।
३-४. समंगळदोसविप्पहीनो—सी०।

वंगीश—

हे सातवें ऋषि[1] ! आपकी बात को सुनकर मैं प्रसन्न हूँ। मेरा प्रश्न निरर्थक नहीं हुआ। आप ब्राह्मण ने मुझे धोखा नहीं दिया ॥ १४ ॥

बुद्ध के वे शिष्य यथावादी तथाकारी थे। उन्होंने मार के विस्तृत, मायावी, दृढ़ जाल को काट डाला ॥ १५ ॥

भगवान् ! कप्पिय ने तृष्णा के हेतु को जान लिया था। अहो ! कप्पायन ने अति दुस्तर मृत्यु के राज्य को पार कर लिया !! ॥ १६ ॥

वङ्गीससुत्त समाप्त।

१३. सम्मापरिब्बाजनिय सुत्त[2] (२, १३)

[भिक्षुओं के आचरणीय धर्म]

निर्मित बुद्ध—

हे महाप्रज्ञ ! संसार-सागर को पार कर मुक्त, स्थितात्मा मुनि से हम पूछते हैं कि काम-भोगों का त्याग कर घर से निकल कर, कैसे भिक्षु सम्यक् प्रकार से लोक में विचरण करेगा ? ॥ १ ॥

भगवान् बुद्ध—

जिसके मांगलिक कर्मों, (उल्कापात आदि) उत्पातों, स्वप्न की बातों और लक्षण (=शास्त्र=सामुद्रिक विद्या) का विश्वास नष्ट हो गया है, जो मंगल-दोष (=शकुन-अपशकुन) से मुक्त है, वही लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ २ ॥

जो भिक्षु मनुष्य-लोक के कामों तथा स्वर्गीय कामों के प्रति राग त्याग, धर्म को अच्छी तरह जान, भव को पार करता है, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ ३ ॥

जो भिक्षु चुगली तथा क्रोध को त्याग, कंजूसी छोड़, कृपा और विरोध से रहित है, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ ४ ॥

---

१. विपस्सी, सिखी, वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमन और कास्यप के साथ सातवें बुद्ध—अट्ठकथा।

२. इसे महासमयसुत्त भी कहते हैं—अट्ठकथा।

हित्वा पियं च अप्पियं च, अनुपादाय अनिस्सितो कुहिञ्चि ।
संयोजनियेहि विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥ ५ ॥

न सो उपधीसु सारमेति, आदानेसु विनेय्य छन्दरागं ।
सो अनिस्सितो अनञ्ञनेय्यो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥ ६ ॥

वचसा मनसा च कम्मना च, अविरुद्धो सम्मा विदित्वा धम्मं ।
निब्बाणपदाभिपत्थयानो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥ ७ ॥

यो वन्दन्ति म'न्ति न उण्णमेय्य, अक्कुट्ठो'पि न सन्धियेथ भिक्खु ।
लद्धा परभोजनं न सज्जे, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥ ८ ॥

लोभं च भवं च विप्पहाय, न च भिक्खु हिंसेय्य कञ्चि लोके ।
सो तिण्णकथंकथो विसल्लो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥ ९ ॥

सारुप्पमत्तनो विदित्वा, न च भिक्खु हिंसेय्य कञ्चि लोके ।
यथातथियं विदित्वा धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१०॥

यस्सानुसया न सन्ति केचि, मूला[1] अकुसला समूहतासे ।
सो निरासयो[2] अनासयानो[3], सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥११॥

आसवखीणो पहीनमानो, सब्बं रागपथं उपातिवत्तो ।
दन्तो परिनिब्बुतो ठितत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१२॥

सद्धो सुतवा नियामदस्सी, वग्गगतेसु न वग्गसारी धीरो ।
लोभं दोसं विनेय्य पटिघं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१३॥

संसुद्धजिनो विवत्तच्छद्दो,[4] धम्मेसु वसी पारगू अनेजो ।
सङ्खारनिरोधञाणकुसलो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१४॥

१. मूला च—म० ।
२. निराससो—स्या०; निरासो—म० ।
३. अनासिसानो—म०, अनाससानो—स्या० ।
४. विवट्टच्छन्दो—म० ।

जो भिक्षु प्रिय-अप्रिय को छोड़, कहीं भी अनुराग या तृष्णा न कर, बन्धनों से मुक्त हो, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ ५ ॥

जो भिक्षु सांसारिक आसक्तियों में सार नहीं देखता, परिग्रह के प्रति छन्द-राग त्याग देता है और तृष्णा-रहित हो दूसरों का अनुसरण नहीं करता है, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ ६ ॥

जो भिक्षु वचन, मन तथा कर्म से विरोध न कर, अच्छी तरह धर्म को जान निर्वाण-पद की प्राप्ति की कामना करता है, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ ७ ॥

'दूसरे मेरी वन्दना करते हैं'—सोच जो भिक्षु गर्व नहीं करता, आक्रोश करने पर भी वैमनस्य नहीं करता, दूसरों का भोजन प्राप्त कर प्रमत्त नहीं होता, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ ८ ॥

जो भिक्षु लोभ और तृष्णा को त्याग, वध-बन्धन से रहित हो, संशय से परे हो, निष्काम होता है, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥९॥

जो भिक्षु अपनी अनुरूपता को जान, संसार में किसी की हिंसा न करे और यथार्थ रूप से धर्म को जान ले, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ १० ॥

जिस भिक्षु में किसी भी प्रकार की आसक्ति नहीं है, पाप की जड़ें (=अकुशल-मूल) नष्ट हो गई हैं, और जो तृष्णा तथा आसक्ति से रहित है, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ ११ ॥

जो भिक्षु आश्रव-क्षीण, अभिमान-रहित, सम्पूर्ण रागपथ को पार कर गया है, जो दान्त, उपशान्त और स्थितात्मा है, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ १२ ॥

जो भिक्षु श्रद्धालु, श्रुतिमान्, निर्वाणपथदर्शी, दलबन्दियों में किसी का पक्ष न लेने वाला है और जिस धीर ने लोभ, द्वेष तथा प्रतिहिंसा की भावना को त्याग दिया है, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ १३ ॥

जो भिक्षु सुविशुद्ध, आत्मजयी, खुले छत वाला (=अविद्या रूपी छत से मुक्त), धर्मों में वशी प्राप्त, पारंगत, तृष्णा-रहित और संस्कारों के नाश में कुशल है, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ १४ ॥

अतीतेसु अनागतेसु चापि, कप्पातीतो अतिच्च सुद्धिपञ्ञो।
सब्बायतनेहि विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१५॥
अञ्ञाय पदं समेच्च धम्मं, विवटं दिस्वान पहानमासवानं।
सब्बूपधीनं परिक्खयानो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य" ॥१६॥
"अद्धा हि भगवा तथेव एतं, यो सो एवं विहारी दन्तो भिक्खु।
सब्बसंयोजनिये च वीतिवत्तो,[2] सम्मा सो लोके परिब्बजेय्या" ति॥१७॥

सम्मापरिब्बाजनियसुत्तं निट्ठितं।

१४—धम्मिक-सुत्तं (२,१४)

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो धम्मिको उपासको पञ्चहि उपासकसतेहि सद्धिं येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो धम्मिको उपासको भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"पुच्छामि तं गोतम भूरिपञ्ञ, कथंकरो सावको साधु होति।
यो वा अगारा अनगारमेति[3], अगारिनो वा पनुपासकासे ॥ १ ॥
तुवं[4] हि[5] लोकस्स सदेवकस्स, गतिं पजानासि परायणं च।
न चत्थि तुल्यो निपुणत्थदस्सी, तुवं हि बुद्धं पवरं वदन्ति ॥ २ ॥
सब्बं तुवं ञाणमवेच्च धम्मं, पकासेसि सत्ते अनुकम्पमानो।
विवत्तच्छदोसि[6] समन्तचक्खु, विरोचसि विमलो सब्बलोके ॥ ३ ॥
आगच्छि ते सन्तिके नागराजा, एरावणो नाम जिनो'ति सुत्वा।
सो'पि तया मन्तयित्वा अज्झगमा, साधूति सुत्वान पतीतरूपो ॥ ४ ॥

१-२. सब्बसंयोजनयोगवीतिवत्तो—म०।
३. अनगारिमेति—सी०।
४-५. तुवञ्हि—म०।
६. विवट्टच्छदोसि—म०।

तीसरा महावग्ग है। इसमें १२ सुत्त हैं। पब्बज्जासुत्त में भगवान् के गृहत्याग के कारणों के वर्णन के साथ बिम्बिसार से की गई वार्ता की भी चर्चा है जिसमें भगवान् ने अपने कुल, गोत्र, पिता, राजधानी आदि का उल्लेख करते हुए कहा है कि कामभोगों के दोष और निष्कामता के गुण को देखकर मैंने गृहत्याग किया है। मेरा मन तपश्चर्या में लग रहा है और मैं उसी के लिए जा रहा हूँ। पधानसुत्त में भगवान् ने अपनी कठोर तपश्चर्या का वर्णन किया है और बतलाया है कि मार की पराजय कैसे हुई? सुभाषित सुत्त में प्रिय और मधुर वचन बोलने का उपदेश है। आगे के चार सुत्तों में क्रमशः सुन्दरिक भारद्वाज, माघ, सभिय और सेल—इन चार प्रसिद्ध ब्राह्मणों के बुद्धधर्म से प्रभावित होकर त्रिरत्न की शरण जाने का वर्णन है और माघ को छोड़ शेष तीन के प्रव्रजित हो अर्हत्व प्राप्त कर लेने का भी विवरण है। सल्लसुत्त में अनित्यता का वर्णन है। वासेट्ठ सुत्त में वर्णव्यवस्था का खण्डन है। कोकालिक सुत्त में सन्तों को गाली देकर दुर्गति प्राप्त करने का विवरण है। नालकसुत्त में बुद्धोत्पत्ति, असित ऋषि के दर्शनार्थ आना और अपने भांजे नालक को प्रेरित करने तथा उसके ज्ञानप्राप्ति का विवरण है। द्वयतानुपस्सना सुत्त में प्रतीत्यसमुत्पाद धर्म को अनुलोम और प्रतिलोम से समझाया गया है।

चौथा अट्ठकवग्ग है। इसमें १६ सुत्त हैं। सभी दार्शनिक और गम्भीर हैं। मागन्दिय, तुवटक और सारिपुत्तसुत्त इसी वग्ग में आए हुए हैं। मागन्दिय अपनी पुत्री से भगवान् का विवाह करना चाहता था, किन्तु भगवान् की विरक्ति युक्त वाणी को सुनकर अनागामी हो गया था। तुवटक सुत्त में भिक्षुचर्या का सुन्दर वर्णन है। सारिपुत्तसुत्त में भी भगवान् ने निर्वाण-प्राप्ति की साधना में लगे भिक्षुओं के कर्तव्यों का विवेचन किया है।

पांचवां पारायणवग्ग है। इसमें १६ सुत्त हैं। वत्थुगाथा और पारायणसुत्त को लेकर इनकी संख्या १८ हो जाती है। वत्थुगाथा में बावरी और उसके शिष्यों का वर्णन है और उस मार्ग का भी स्पष्ट उल्लेख है कि उन्होंने किस मार्ग से गोदावरी नदी के किनारे से चलकर राजगृह जा बुद्ध का दर्शन किया था। आगे बावरी के १६ शिष्यों के प्रश्न और भगवान् के उत्तर हैं। ये सभी

जो भिक्षु भूत और भविष्य की बातों से परे है, जो अत्यन्त विशुद्ध प्रज्ञा वाला है, सारे आयतनों[1] (=बारह आयतनों) से मुक्त है, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ १५ ॥

जो भिक्षु मदों[2] को जान, धर्मों[3] को समझ, आश्रवों[4] के प्रहाण से निर्वाण को साफ-साफ देख, सभी आसक्तियों को नष्ट कर देता है, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ १६ ॥

निर्मित्त बुद्ध—

निश्चय ही भगवान् ! यह वैसी ही बात है। जो इस प्रकार से विहार करने वाला दान्त, सारे बन्धनों से रहित भिक्षु है, वही इस लोक में भली प्रकार विचरण करेगा ॥ १७ ॥

सम्मापरिब्बाजनियसुत्त समाप्त ।

१४. धम्मिक सुत्त (२,१४)

[भिक्षुओं तथा गृहस्थों के धर्म]

ऐसा मैंने सुना । एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे । तब धार्मिक उपासक पाँच सौ उपासकों के साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुए धार्मिक उपासक ने भगवान् से गाथाओं में कहा—

धार्मिक उपासक—

हे महाप्रज्ञावान् गौतम ! मैं आप से पूछता हूँ कि कैसा करने वाला श्रावक अच्छा होता है ? घर से निकल कर वेघर होने वाला अथवा घर में रहने वाला उपासक ? ॥ १ ॥

आप देवों सहित लोक की गति और विमुक्ति को जानते हैं । आपके समान कोई दूसरा निपुण अर्थदर्शी नहीं है । लोग आपको ही श्रेष्ठ बुद्ध कहते हैं ॥ २ ॥

आपने धर्म के सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करके प्राणियों पर अनुकम्पा करके उसे प्रकाशित किया । आप खुले छत वाले (=ज्ञानी), और समन्तचक्षु हैं । सारे संसार में निर्मल रूप से सुशोभित हैं ॥ ३ ॥

ऐरावण नागराज भी आप 'जिन' हैं, सुनकर आपके पास आया, वह भी आपके साथ मंत्रणा कर, धर्म सुन प्रसन्न हो बहुत अच्छा कहकर चला गया ॥४॥

---

१. आयतन बारह होते हैं । २. चार आर्यसत्यों के चार पद—अट्ठकथा । ३. चार आर्यसत्य धर्म—अट्ठकथा । ४. आश्रव चार होते हैं ।

राजापि तं वेस्सवणो कुवेरो, उपेति धम्मं परिपुच्छमानो।
तस्सापि त्वं पुच्छितो ब्रूसि धीर, सो चापि सुत्वान पतीतरूपो ॥ ५ ॥

ये केचिमे तित्थिया वादसीला, आजीविका वा यदि वा निगण्ठा।
पञ्ञाय तं नातितरन्ति सब्बे, ठितो वजन्तं विय सीघगामिं ॥ ६ ॥

ये केचिमे ब्राह्मणा वादसीला, वुद्धा चापि ब्राह्मणा सन्ति केचि।
सब्बे तयि अत्थबद्धा भवन्ति, ये वापि चञ्ञे वादिनो मञ्ञमाना ॥७॥

अयं हि धम्मो निपुणो सुखो च, यो'यं तया भगवा सुप्पवुत्तो।
तमेव सब्बे[1] सस्सूसमाना, त्वं[2] नो वद पुच्छितो वुद्धसेट्ठ ॥ ८ ॥

सब्बेपिमे भिक्खवो संनिसिन्ना, उपासका चापि तथेव सोतुं।
सुणन्तु धम्मं विमलेनानुवुद्धं, सुभासितं वासवस्सेव देवा" ॥ ९ ॥

"सुणाथ मे भिक्खवो सावयामि वो, धम्मं धुतं तं च धराथ सब्बे।
इरियापथं पब्बजितानुलोमिकं, सेवेथ नं अत्थदस्सी[3] मुतीमा ॥ १० ॥

न[4] वे विकाले विचरेय्य भिक्खु, गामं च पिण्डाय चरेय्य काले।
अकालचारिं हि सजन्ति संगा, तस्मा विकाले न चरन्ति वुद्धा ॥११॥

रूपा च सद्दा च रसा च गंधा, फस्सा च ये संमदयन्ति सत्ते।
एतेसु धम्मेसु विनेय्य छन्दं, कालेन सो पविसे पातरासं ॥१२॥

पिण्डं च भिक्खु समयेन लद्धा, एको पटिक्कम्म रहो निसीदे।
अज्झत्तचिन्ती न मनो वहिद्धा, निच्छारये संगहितत्तभावो ॥१३॥

---

१. सब्वेपि—म०; सब्वे मयं—स्या०।

२. तं—म०, सी०।

३. अत्थदसो—म०।

४. नो—म०।

राजा वैश्रवण कुबेर भी धर्म पूछने के लिए आप के पास आया था। हे धीर! उसके प्रश्न का भी उत्तर आपने दिया, और वह भी आपकी बात सुनकर प्रसन्न हो चला गया ॥ ५ ॥

यहाँ जो कोई वाद-विवाद करने वाले तैर्थिक हैं, आजीवक या निगण्ठ (=निर्ग्रन्थ=जैन), वे सभी आपकी प्रज्ञा के समक्ष तुच्छ हैं जैसे शीघ्र चलने वाले के समक्ष खड़ा रहने वाला ॥ ६ ॥

जितने भी वाद-विवाद करने वाले ब्राह्मण हैं, जिनमें कुछ वृद्ध ब्राह्मण भी हैं अथवा दूसरे कोई भी जो अपने को वाद-विवाद में दक्ष मानते हैं, वे सभी अर्थ की बात पूछने के लिए आपके ही पास आते हैं ॥ ७ ॥

हे भगवान्! आप द्वारा उपदिष्ट जो यह धर्म है, वह उत्तम और सुखद है। हम सव उसी को सुनने के इच्छुक हैं। हे बुद्धश्रेष्ठ! पूछने पर हमें उसे कहें ॥८॥

यहाँ सभी भिक्षु और उपासक सुनने के लिए वैठे हैं। निर्मल बुद्ध के अवगत धर्म को वैसे ही सुनें जैसे कि इन्द्र के सदुपदेश को देवता सुनते हैं ॥९॥

भगवान् बुद्ध—

भिक्षु-धर्म

भिक्षुओ! मेरी बात सुनो। मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। तुम लोग धर्म और धुत[1] (=धुतांग) सबको धारण करो। तुम्हारी चाल-ढाल (=ईर्यापथ) प्रव्रजित के अनुकूल हो और जो अर्थदर्शी तथा बुद्धिमान् (भिक्षु) हैं उनका साथ करो ॥ १० ॥

भिक्षु को असमय में घूमना नहीं चाहिए। समय पर गाँव में भिक्षाटन करे। असमय में घूमने वालों को आसक्तियाँ लग जाती हैं। इसीलिए असमय में बुद्ध लोग नहीं घूमते हैं ॥ ११ ॥

रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श—जो प्राणियों को मोहित कर लेते हैं, इन बातों में राग त्याग कर समय पर प्रातराश (=प्रातः का भोजन) के लिये (गाँव में) प्रवेश करे ॥ १२ ॥

भिक्षु समय से प्राप्त भिक्षा को ले एकान्त में जा अकेले वैठे, वह अपने भीतर ही मनन करे। मन को वाहर न जाने दे और चित्त को एकाग्र करके रखे ॥ १३ ॥

सचेपि सो सल्लपे सावकेन, अञ्ञेन वा केनचि भिक्खुना वा ।
धम्मं पणीतं तमुदाहरेय्य, न पेसुणं नो'पि परूपवादं ॥१४॥
वादं हि एके पटिसेनियन्ति, न ते पसंसाम परित्तपञ्ञे ।
ततो ततो ने पसजन्ति संगा, चित्तं हि ते तत्थ गमेन्ति दूरे ॥१५॥
पिण्डं विहारं सयनासनं च, आपं च सङ्घाटिरजूपवाहनं ।
सुत्वान धम्मं सुगतेन देसितं, सङ्खाय सेवे वपरञ्ञसावको ॥१६॥
तस्मा हि पिण्डे सयनासने च, आपे च सङ्घाटिरजूपवाहने ।
एतेसु धम्मेसु अनूपलित्तो, भिक्खु यथा पोक्खरे वारिविन्दु ॥१७॥
गहट्ठवत्तं पन वो वदामि, यथाकरो सावको साधु होति ।
न हेसो लब्भा सपरिग्गहेन, फस्सेतुं यो केवलो भिक्खुधम्मो ॥१८॥
पाणं न हाने[1] न च घातयेय्य, न चानुजञ्ञा हननं परेसं ।
सब्बेसु भूतेस निधाय दण्डं, ये थावरा ये च तसन्ति[2] लोके ॥१९॥
ततो अदिन्नं परिवज्जयेय्य, किञ्चि क्वचि सावको बुज्झमानो ।
न हारये हरतं नानुजञ्ञा, सब्बं अदिन्नं परिवज्जयेय्य ॥२०॥
अब्रह्मचरियं परिवज्जयेय्य, अङ्गारकासुं जलितं'व विञ्ञू ।
असंभुणन्तो पन ब्रह्मचरियं, परस्स दारं नातिक्कमेय्य ॥२१॥
सभग्गतो वा परिसग्गतो वा, एकस्स वेको[3] न मुसा भणेय्य ।
न भासये[4] भणतं नानुजञ्ञा, सब्बं अभूतं परिवज्जयेय्य ॥२२॥
मज्जं च पानं न समाचरेय्य, धम्मं इमं रोचये यो गहट्ठो ।
न पायये पिवतं[5] नानुजञ्ञा, उम्मादनन्तं इति नं विदित्वा ॥२३॥
मदा हि पापानि करोन्ति बाला, कारेन्ति[6] चञ्ञे'पि जने पमत्ते[7] ।

---

१. हने—म० ।
२. तसा सन्ति—म० ।
३. चेको—सी०, स्या० ।
४. भाणये—सी०, म० ।
५. पिवतं—म० ।
८. करोन्ति—सी० ।
७. पमज्जे—स्या० ।

यदि वह किसी श्रावक या अन्य किसी भिक्षु से बातचीत करे, तो उत्तम धर्म की ही बात करे, न चुगली खाये और न दूसरे की निन्दा करे ॥ १४ ॥

कोई-कोई वाद-विवाद किया करते हैं, उन अल्पप्रज्ञों की हम प्रशंसा नहीं करते। इधर-उधर से आसक्तियाँ लग जाती हैं और उनका चित्त उन्हीं वाद-विवादों में ही दूर-दूर तक जाता रहता है ॥ १५ ॥

बुद्ध का उत्तम प्रज्ञावाला श्रावक सुगत के उपदिष्ट धर्म को सुन कर भिक्षा, विहार, शयनासन, जल और संघाटी की मैल को धोना—इनका विचार पूर्वक सेवन करे ॥ १६ ॥

इसलिये भिक्षा, शयनासन, जल और संघाटी की मैल को धोने में—इन बातों में भिक्षु उसी प्रकार आसक्ति-रहित हो जैसे कि कमल-पत्र पर जल बिन्दु ॥ १७ ॥

गृहस्थ-धर्म

अब मैं तुम्हें गृहस्थ-धर्म बतलाता हूँ, जैसा कि करने वाला श्रावक अच्छा होता है। जो सम्पूर्ण भिक्षु-धर्म है, उसका पालन सपरिग्रही (=गृहस्थ) से नहीं किया जा सकता ॥ १८ ॥

संसार में जो स्थावर और जंगम प्राणी हैं, न उनके प्राण की हत्या करे, न मरवाये, और न तो उन्हें मारने की आज्ञा दे, सभी प्राणियों के प्रति दण्ड-त्यागी हो ॥ १९ ॥

तब दूसरे की समझी जाने वाली किसी चीज को चुराना त्याग दे, न चुराये, और न चुराने वाले को अनुमति ही दे। सब प्रकार की चोरी का त्याग कर दे ॥ २० ॥

विज्ञ पुरुष जलते हुए आग के गड्ढे की भाँति अब्रह्मचर्य को छोड़ दे, ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकते हुए भी दूसरे की स्त्री का सेवन न करे ॥२१॥

सभा या परिषद् में जाकर एक दूसरे के लिए झूठ न बोले, न तो (स्वयं झूठ) बोले और न बोलने वाले को अनुमति दे, सब प्रकार के असत्य-भाषण को त्याग दे ॥ २२ ॥

---

१. धुतांग तेरह होते हैं।

एतं अपुञ्ञायतनं विवज्जये, उम्मादनं मोहनं बालकन्तं ॥२४॥

पाणं न हाने न चादिन्नमादिये, मुसा न भासे न च मज्जपो सिया ।
अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना, रत्तिं न भुञ्जेय्य विकालभोजनं ॥२५॥

मालं न धारे न च गन्धमाचरे, मञ्चे छमायं च सयेथ सन्थते ।
एतं हि अट्ठङ्गिकमाहुपोसथं, बुद्धेन दुक्खन्तगुना पकासितं ॥२६॥

ततो च पक्खस्सुपवस्सुपोसथं, चातुद्दसिं पञ्चदसिं च अट्ठमिं ।
पाटिहारियपक्खं च पसन्नमानसो, अट्ठङ्गुपेतं सुसमत्तरूपं ॥२७॥

ततो च पातो उपवुत्थुपोसथो, अन्नेन पानेन च भिक्खुसङ्घं ।
पसन्नचित्तो अनुमोदमानो, यथारहं संविभजेथ विञ्ञू ॥२८॥

धम्मेन मातापितरो भरेय्य, पयोजये धम्मिकं सो वणिज्जं ।
एतं गिही वत्तयं अप्पमत्तो, सयंपभे नाम उपेति देवे'ति'' ॥२९॥

धम्मिकसुत्तं निट्ठितं ।

जो गृहस्थ इस धर्म को पसन्द करता हो वह शराब का पान न करे, न पिलावे और न पीने वाले के लिए अनुमति दे 'यह उन्मादक है'—ऐसा उसे जानकर ॥ २३ ॥

मूर्ख लोग मद के कारण पाप करते हैं और दूसरे अन्य प्रमत्त लोगों से कराते भी हैं। इस पाप के घर को त्याग दे। जो कि उन्मादन है, मोहक है, और मूर्खों को प्रिय है ॥ २४ ॥

प्राण-वध न करे, चोरी न करे, झूठ न बोले, और न शराब पिये। अब्रह्मचर्य और मैथुन से विरत रहे और रात्रि में विकाल भोजन न करे ॥२५॥

न माला धारण करे, न गंध का सेवन करे, चौकी, भूमि या जमीन पर सोये—इसे अष्टांगिक उपोसथ कहते हैं। दुःख पारंगत बुद्ध द्वारा यह प्रकाशित किया गया है ॥ २६ ॥

प्रत्येक पक्ष की चातुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी और प्रतिहार्य पक्ष[1] को प्रसन्न मन से अष्टांग उपोसथ का पूर्णरूप से पालन करना चाहिए ॥ २७ ॥

तब विज्ञ पुरुष प्रातः उपोसथ ग्रहण कर अपनी शक्ति के अनुसार श्रद्धापूर्वक अनुमोदन करते हुए प्रसन्नता से भिक्षुसंघ को अन्न और पेय का दान दे ॥२८॥

धर्म से माता-पिता का पोषण करे, और किसी धार्मिक व्यापार में अपने को लगाये। जो अप्रमत्त गृहस्थ इस व्रत का पालन करता है, वह स्वयंप्रभ नामक देवलोक में उत्पन्न होता है ॥ २९ ॥

धम्मिकसुत्त समाप्त।

चूळवग्ग समाप्त।

---

१. आषाढ़, सावन, भादों, क्वार और कार्तिक—ये पाच मास प्रातिहार्य पक्ष हैं—ऐसा कोई कोई मानते हैं। दूसरे आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन को मानते हैं, और दूसरे प्रतिपक्ष की तेरस, प्रतिपदा, सप्तमी और नवमी का प्रातिहार्य पक्ष मानते हैं, जो पसन्द हो, उसे मानें—अट्ठकथा।

३—महावग्गो

१. पब्बज्जा-सुत्तं (३, १)

पब्बज्जं कित्तयिस्सामि, यथा पब्बजि चक्खुमा।
यथा वीमंसमानो सो, पब्बज्जं समरोचयि ॥ १ ॥

सम्बाधो'यं घरावासो, रजस्सायतनं इति।
अब्भोकासो च पब्बज्जा, इति दिस्वान पब्बजि ॥ २ ॥

पब्बजित्वान कायेन, पापकम्मं विवज्जयि।
वचीदुच्चरितं हित्वा, आजीवं परिसोधयि ॥ ३ ॥

अगमा राजगहं बुद्धो, मगधानं[1] गिरिब्बजं।
पिण्डाय अभिहारेसि, आकिण्णवरलक्खणो ॥ ४ ॥

तमद्दसा बिम्बिसारो, पासादस्मिं पतिट्ठितो।
दिस्वा लक्खणसम्पन्नं, इममत्थं अभासथ ॥ ५ ॥

इमं भोन्तो निसामेथ, अभिरूपो ब्रहा[2] सुचि।
चरणेन चेव सम्पन्नो, युगमत्तं च पेक्खति ॥ ६ ॥

ओक्खित्तचक्खु सतिमा, नायं नीचकुलामिव।
राजदूता[3] विधावन्तु[4], कुहिं भिक्खु गमिस्सति ॥ ७ ॥

ते पेसिता राजदूता, पिट्ठितो अनुबन्धिसुं।
कुहिं गमिस्सति भिक्खु, कत्थ वासो भविस्सति ॥ ८ ॥

सपदानं चरमानो, गुत्तद्वारो[6] सुसंवुतो।
खिप्पं पत्तं अपूरेसि, सम्पजानो पतिस्सतो[7] ॥ ९ ॥

---

१. मागधान—स्या० । २. ब्रह्मा—स्या० । ३-४. राजदूताभिधावन्तु—म०, स्या० । ५. अनुबन्धिसु—स्या० । ६. गुत्तद्वारे—स्या० । ७. पटिस्सतो—म०, सतीमतो—स्या०

३. महावग्ग

१. पब्बज्जासुत्त (१, ३)

[इस सुत्त में आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् की प्रव्रज्या का वर्णन किया है और बतलाया है कि किस प्रकार वे बिम्बिसार के प्रलोभन में न पड़ कर मुक्ति की गवेषणा के लिए आगे बढ़ गए ।]

जिस प्रकार चक्षुष्मान् (=बुद्ध) प्रव्रजित हुए, उनकी प्रव्रज्या का मैं वर्णन करूँगा कि किस प्रकार विचार करते हुए उन्होंने प्रव्रज्या को पसन्द किया ॥ १ ॥

यह घर-गृहस्थी में रहना संकटपूर्ण है। यह पापों का घर है। प्रव्रज्या खुले आकाश की भाँति है—ऐसा देखकर (वे) प्रव्रजित हुए ॥ २ ॥

प्रव्रजित होकर उन्होंने शरीर से पाप-कर्म करना छोड़ दिया। वचन के दुष्कर्मों को भी छोड़ कर आजीविका का परिशोधन किया ॥ ३ ॥

बुद्ध मगध-जनपद की (राजधानी) गिरिव्रज (=राजगृह) गए। वे (बत्तीस) लक्षणों से भरे हुए शरीर वाले (बुद्ध) भिक्षा के लिए (नगर में) प्रविष्ट हुए ॥ ४ ॥

महल में खड़े हुए राजा बिम्बिसार ने उन्हें देखा। उन्हें लक्षणों से युक्त देखकर उसने यह बात कही :— ॥ ५ ॥

"अरे! इस सुन्दर, लम्बे कदके, पवित्र, आचरण से युक्त व्यक्ति को देखो, जो कि केवल चार हाथ तक (=युगमात्र) ही देखता है ॥ ६ ॥

नीची की हुई आँख वाला, स्मृतिमान्, यह नीच कुल के समान नहीं है। राजदूत (इसके पीछे) दौड़ें और (देखें कि) भिक्षु कहाँ जायेगा ?" ॥ ७ ॥

भेजे गए वे राजदूत (भगवान् के) पीछे-पीछे लग गये और यह जानने की कोशिश करने लगे कि यह भिक्षु कहाँ जायेगा और इसका वासस्थान कहाँ होगा ? ॥८॥

इन्द्रियों में रक्षा करने वाले, संयमी, जागरूक और स्मृतिमान् (बुद्ध) ने घर-घर भिक्षा माँगी और शीघ्र ही पात्र (भिक्षा से) भर गया ॥९॥

पिण्डचारं[1] चरित्वान[2], निक्खम्म नगरा मुनि।
पण्डवं अभिहारेसि, एत्थ वासो भविस्सति ॥ १० ॥
दिस्वान वासूपगतं, ततो[3] दूता उपाविसुं।
एको[4] च दूतो[5] आगन्त्वा, राजिनो पटिवेदयि ॥ ११ ॥
एस भिक्खु महाराज, पण्डवस्स पुरक्खतो[6]।
निसिन्नो व्यग्घुसभो'व, सीहो'व गिरिगब्भरे ॥ १२ ॥
सुत्वान दूतवचनं, भद्दयानेन खत्तियो।
तरमानरूपो निय्यासि, येन पण्डवपब्बतो ॥ १३ ॥
स यानभूमिं यायित्वा, याना ओरुय्ह खत्तियो।
पत्तिको उपसङ्कम्म, आसज्ज नं उपाविसी ॥ १४ ॥
निसज्ज राजा सम्मोदि, कथं सारणियं ततो।
कथं सो वीतिसारेत्वा, इममत्थं अभासथ ॥ १५ ॥
"युवा च दहरो चासि, पठमुप्पत्तिको[7] सुसु।
वण्णारोहेन सम्पन्नो, जातिमा विय खत्तियो ॥ १६ ॥
सोभयन्तो अनीकग्गं, नागसङ्घपुरक्खतो।
ददामि भोगे भुञ्जस्सु, जातिं अक्खाहि[8] पुच्छितो" ॥ १७ ॥
"उजुं जनपदो राजा[9], हिमवन्तस्स पस्सतो।
धनविरियेन सम्पन्नो, कोसलेसु[10] निकेतिनो ॥ १८ ॥
आदिच्चा[11] नाम गोत्तेन, साकिया[12] नाम जातिया।
तम्हा कुला पब्बजितो'म्हि (राज), न कामे अभिपत्थयं ॥ १९ ॥
कामेस्वादीनवं दिस्वा, नेक्खम्मं दट्ठु खेमतो।
पधानाय गमिस्सामि, एत्थ मे रञ्जति मनो"ति ॥ २० ॥

पब्बज्जासुत्तं निट्ठितं।

१-२. सपिण्डचारं चरित्वा म०। ३. तयो–म०, स्या०। ४-५. तेसु एकोव–म०। ६. पुरत्ततो—म०। ७. पठमुप्पत्तिया—सी०; पठमुप्पत्तितो—स्या०। ८. वक्खाहि—सी०। ९. राज-म०। १०. कोसलस्स–स्या०, क०। ११. आदिच्चा–क०। १२. साकियो–क०।

प्रश्न दार्शनिक, आध्यात्मिक और वैराग्ययुक्त हैं। अन्त में पारायणसुत्त में पिंगिय द्वारा बुद्धगुणगान किया गया है।

अट्ठकवग्ग और पारायणवग्ग एक प्रकार से दार्शनिक काव्य-संग्रह हैं और विश्व-साहित्य में वेजोड़ हैं। यही कारण है कि बुद्ध-काल में भी इनका काफी प्रचार और महत्व था। पीछे इनका महत्व और भी वढ़ा। यही कारण है कि इन्हें लेकर वौद्धदर्शन के शून्यवाद आदि विचारधाराओं का निरूपण हुआ और महायान में उन विचारों का पल्लवन हुआ। महायानी-धर्म-ग्रन्थों के साथ इनकी प्रतियां विदेशों में पहुँचीं और चीनी, मंगोलियन, तिव्वती आदि भाषाओं में इनका भाषान्तर हुआ।

अट्ठकवग्ग तथागत को वड़ा प्रिय था। जिस समय आयुष्मान् सोण-कुटिकण्ण भगवान् के दर्शनार्थ अवन्ति के कुररघर से श्रावस्ती आये और रात में गन्धकुटी में सोये, उस समय भिनसार होने पर भगवान् ने उन्हें अट्ठकवग्ग का पाठ करने के लिए कहा। वे जव पाठ कर चुके, तव भगवान् ने 'साधु! साधु! भिक्षु!' कहकर अनुमोदन किया था।

शैली और छन्द—सुत्तनिपात की एक शैली नहीं है। उसकी शैली में अनेकरूपता है। विषय के अनुसार भाषा भी जटिल और सरल हो गयी है। अनेक सुत्त संवादों के रूप में हैं। कुछ प्रश्नोत्तर के रूप में हैं और कुछ स्वाभाविक शैली में हैं। अन्तिम अट्ठक और पारायण वर्गों की भाषा स्वभावतः कुछ कठिन हो गई है, क्योंकि इन दोनों ही वर्गों में गम्भीर दार्शनिक विषयों पर विचार व्यक्त किए गए हैं।

सुत्तनिपात के छन्दों में प्रायः गणों का विचार नहीं है। वे वैदिक ग्रन्थों की भाँति आठ अक्षरों वाले अनुष्टुभ्, ग्यारह अक्षरों वाले त्रिष्टुभ् तथा वारह अक्षरों वाले जगती छन्दों में अधिक संख्या में हैं, किन्तु साथ ही इसमें अनुष्टुभ् छन्द की कितनी गाथायें छः पदवाली हैं। त्रिष्टुभ् छन्द की कितनी गाथायें छः पदवाली हैं। किन्हीं-किन्हीं त्रिष्टुभ् छन्द की गाथाओं में सात-सात, आठ-आठ पद तक हैं। डॉ० बापट ने इन्हीं कारणों को दिखलाकर लिखा है कि सुत्त-

भिक्षाटन करके मुनि नगर से निकलकर पाण्डव पर्वत पर चढ़े कि यहाँ निवास होगा ॥१०॥

उनको वहाँ ठहरते देख दूत पास बैठ गये। एक दूत ने आकर राजा से निवेदन किया—॥११॥

'महाराज ! यह भिक्षु पाण्डव पर्वत के पूरब[१] उस प्रकार बैठा है जैसे कि व्याघ्र, साँढ़ या सिंह पहाड़ की गुफा में बैठा हो' ॥१२॥

दूत के वचन को सुनकर राजा उत्तम रथ से शीघ्र ही पाण्डव पर्वत की ओर चल दिया ॥१३॥

रथ के योग्य भूमि तक रथ से जा, रथ से उतरकर, राजा पैदल ही जा उनके पास बैठ गया ॥१४॥

तब राजा ने बैठकर कुशल-मंगल पूछा। कुशल-मंगल पूछकर इस बात को कहा—॥१५॥

बिम्बिसार—

"आप नवयुवक हैं, प्रथम अवस्था-प्राप्त तरुण हैं। आप रूप तथा शरीर की बनावट से क्षत्रिय जाति के जान पड़ते हैं ॥१६॥

मैं सम्पत्ति देता हूँ। हाथी समूह से युक्त सेना को सुशोभित करते हुए उसका उपभोग करें। अब मेरे पूछने पर बतायें कि आपकी क्या जाति है?" ॥१७॥

बुद्ध—

"हिमालय की तराई के एक जनपद में कोसल देशवासी धन तथा पराक्रम से युक्त एक ऋजु राजा हैं ॥१८॥

वे गोत्र से सूर्यवंशी हैं और शाक्य जाति के हैं। हे महाराज ! मैं उस कुल से प्रव्रजित हुआ हूँ। मैं काम-भोगों की कामना नहीं करता ॥१९॥

सांसारिक काम-भोगों के दुष्परिणामों तथा नैष्क्रम्य (=निष्कामता) को कल्याण के रूप में देख मैं तप करने के लिए जाऊँगा। इसी में मेरा मन लग रहा है।" ॥२०॥

पब्बज्जासुत्त समाप्त।

---

१. पाण्डव पर्वत में पूर्वमुख गुफा थी, जिसमें प्रव्रजित रहा करते थे, वहीं बुद्ध गये—अट्ठकथा।

२—पधान-सुत्तं (३, २)

तं मं पधानपहितत्तं, नदिं नेरञ्जरम्पति ।
विपरक्कम्म झायन्तं, योगक्खेमस्स पत्तिया ॥ १ ॥
नमुची करुणं वाचं, भासमानो उपागमि ।
"किसो त्वमसि दुब्बण्णो, सन्तिके मरणं तव ॥ २ ॥
सहस्सभागो मरणस्स, एकंसो तव जीवितं ।
जीव[1]भो[2]जीवितं सेय्यो, जीवं पुञ्ञानि काहसि ॥ ३ ॥
चरतो ते ब्रह्मचरियं, अग्गिहुत्तं च जूहतो ।
पहूतं चीयते पुञ्ञं, किं पधानेन काहसि ॥ ४ ॥
दुग्गो मग्गो पधानाय, दुक्करो दुरभिसम्भवो" ।
इमा गाथा भणं मारो, अट्ठा बुद्धस्स सन्तिके ॥ ५ ॥
तं तथावादिनं मारं, भगवा एतदब्रवि ।
"पमत्तबन्धु पापिम, येनत्थेन इधागतो ॥ ६ ॥
अणुमत्तेन'पि[3]पुञ्ञेन, अत्थो मय्हं न विज्जति ।
येसं च अत्थो पुञ्ञानं, ते मारो वत्तुमहरति ॥ ७ ॥
अत्थि सद्धा ततो[4]विरियं, पञ्ञा च मम विज्जति ।
एवं मं पहितत्तम्पि, किं जीवमनुपुच्छसि ॥ ८ ॥
नदीनम्पि सोतानि, अयं वातो विसोसये ।
किञ्च मे पहितत्तस्स, लोहितं नूपसुस्सये[5] ॥ ९ ॥
लोहिते सुस्समानम्हि, पित्तं सेम्हं च सुस्सति ।
मंसेसु खीसयानेसु, भिय्यो चित्तं पसीदति ।
भिय्यो सति च पञ्ञा च, समाधि मम तिट्ठति ॥ १० ॥

१-२. जीवम्भो—सी० । ३. अणुमत्तोपि—म० । ४. तथा—म० । ५. नुपसुस्सये—म० ।

२. पधानसुत्त (३, २)

[मार-पराजय]

जव मैं निर्वाण की प्राप्ति के लिए नेरंजरा नदी के किनारे पराक्रमपूर्वक ध्यान कर रहा था ॥१॥

तव मार करुणाभरी बात कहते हुए मेरे पास आया—"तुम कृश और कुरूप हो गये हो, तेरी मृत्यु पास आ गई है ॥२॥

हजार अंश तेरी मृत्यु का है, केवल एक अंश तेरे जीवन का है। हे ! जीओ, जीवित रहना उत्तम है, जीवित रहते हुए ही पुण्यों को करोगे ॥३॥

यदि तुम ब्रह्मचर्य का पालन करो और अग्निहोत्र करो, तो बहुत पुण्य का संचय होता है। तप करके क्या करोगे ? ॥४॥

तप का मार्ग दुर्गम है, निर्वाण की प्राप्ति दुष्कर है।" इन गाथाओं को कहते हुए मार बुद्ध के पास खड़ा रहा ॥५॥

उस वैसे कहने वाले मार को भगवान् ने यह कहा—"हे प्रमत्तबन्धु ! पापी ! ! जिस मतलव से यहाँ आए हो ॥६॥

उस पुण्य की अणुमात्र भी मुझे आवश्यकता नहीं है। जिन्हें पुण्य की आवश्यकता हो, मार उन्हीं से कहे ॥७॥

मुझमें श्रद्धा, वीर्य और प्रज्ञा विद्यमान हैं। मुझ ऐसे संयमात्मा से भी जीने की बात करते हो ॥८॥

यह हवा नदियों की धाराओं को सुखा दे, क्या यह मुझ संयमात्मा के लोहू को भी नहीं सुखा पायेगी ? ॥९॥

लोहू के सूखने पर पित्त और कफ सूख जाते हैं। मांस के क्षीण होने पर चित्त और भी अधिक प्रसन्न होता है और स्मृति, प्रज्ञा और समाधि मुझमें अधिक ठहरती है ॥१०॥

तस्स मे'वं विहरतो, पत्तस्सुत्तमवेदनं ।
कामे[1] नापेक्खते[2] चित्तं, पस्स सत्तस्स सुद्धतं ॥ ११ ॥
कामा ते पठमा सेना, दुतिया अरति वुच्चति ।
ततिया खुप्पिपासा ते, चतुत्थी तण्हा पवुच्चति ॥ १२ ॥
पञ्चमं थीनमिद्धं ते, छट्ठा भीरु पवुच्चति ।
सत्तमी विचकिच्छा ते, मक्खो थम्भो ते अट्ठमो ॥ १३ ॥
लाभो सिलोको सक्कारो, मिच्छालद्धो च यो यसो ।
यो चत्तानं समुक्कंसे, परे च अवजानति ॥ १४ ॥
एसा नमुचि ते सेना, कण्हस्साभिप्पहारिणी ।
न तं असूरो जिनाति, जेत्वा च लभते सुखं ॥ १५ ॥
एस मुञ्जं परिहरे, धिरत्थु इध[3] जीवितं ।
संगामे मे मतं सेय्यो, यं चे जीवे पराजितो ॥ १६ ॥
पगाळ्हा[4] एत्थ[5] न दिस्सन्ति, एके समणब्राह्मणा ।
तं च मग्गं न जानन्ति, येन गच्छन्ति सुब्बता ॥ १७ ॥
समन्ता धजिनिं दिस्वा, युत्तं मारं सवाहनं ।
युद्धाय पच्चुग्गच्छामि, मा मं ठाना अचावयि ॥ १८ ॥
यन्तेतं नप्पसहति, सेनं लोको सदेवको ।
तं ते पञ्ञाय गच्छामि[6], आमं पत्तं'व अस्मना[7] ॥ १९ ॥
वसिं कत्वान संकप्पं, सतिं च सुप्पतिट्ठितं ।
रट्ठा रट्ठं विचरिस्सं, सावके विनयं पुथु ॥ २० ॥
ते अप्पमत्ता पहितत्ता, मम सासनकारका ।
अकामस्स[8] ते गमिस्सन्ति, एत्थ गन्त्वा न सोचरे" ॥ २१ ॥

१-२. कामेसुनापेक्खते–म० । ३. मम–म० । ४-५. पगाल्हेत्थ–म० । ६. भेच्छामि–म० ।
७. अम्हना–म० । ८. अकामा—म० ।

इस प्रकार विहरने वाले उत्तम वेदना प्राप्त मेरा मन कामों की इच्छा नहीं करता। इस व्यक्ति की शुद्धि को देखो ॥११॥

हे मार! काम तेरी पहली सेना है, अरति दूसरी सेना कहलाती है। भूख-प्यास तेरी तीसरी सेना है और तृष्णा चौथी (सेना) कहलाती है ॥१२॥

तेरी पाँचवीं (सेना) स्त्यान-मृद्ध है, छठीं भीरुपन[1] (=डरपोकपन) कहलाती है। तेरी सातवीं (सेना) शंका है और ईर्ष्या तथा जड़ता तेरी आठवीं (सेना) है ॥१३॥

लाभ, प्रशंसा, सत्कार, अनुचित ढंग से प्राप्त जो यश है, जो अपने को प्रशंसा और दूसरे की निन्दा करनी है ॥१४॥

हे मार! यह तेरी सेना (श्रमण-ब्राह्मणों पर) प्रहार करने वाली है। उसे अ-सूर जीत नहीं सकता और जो उसे जीत लेता है वह सुख पाता है ॥१५॥

मैं इस मूँज को धारण करता हूँ। यहाँ जीना धिक्कार है। पराजित होकर जीने की अपेक्षा संग्राम में मुझे मर जाना उचित है ॥१६॥

वासनाओं में डूबे हुए कुछ श्रमण-ब्राह्मण यहाँ सत्य को नहीं देखते। वे उस मार्ग को नहीं जानते जिसपर सुव्रती चलते हैं ॥१७॥

चारों ओर से वाहन सहित सुसज्जित मार की सेना को देखकर मैं युद्ध के लिए निकलता हूँ जिसमें कि मार मुझे अपने स्थान से च्युत न कर सके ॥१८॥

देव मनुष्य सहित सारा संसार तेरी जिस सेना को जीत नहीं पाता, उसे मैं प्रज्ञा से उसी प्रकार नष्ट कर दूँगा जिस प्रकार कि पत्थर से कच्चे बर्तन को ॥१९॥

संकल्प को अपने वश में करके, स्मृति को सुप्रतिष्ठित कर बहुत से श्रावकों को शिक्षित करते एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में विचरण करूँगा ॥२०॥

वे मेरी आज्ञा का पालन करने वाले अप्रमादी और संयमी शिष्य निर्वाण को प्राप्त कर लेंगे, जहाँ कि जाकर शोक नहीं करेंगे ॥ २१ ॥

---

१. भय—अट्ठकथा।

"सत्त वस्सानि भगवन्तं, अनुबन्धिं[1] पदा पदं।
ओतारं नाधिगच्छिस्सं, सम्बुद्धस्स सतीमतो॥ २२॥

मेदवण्णं'व पासाणं, वायसो अनुपरियगा।
अपेत्थ मुदु[2] विन्देम, अपि अस्सादना सिया॥ २३॥

अलद्धा तत्थ अस्सादं, वायसेत्थो[3] अपक्कमि।
काको'व सेलमासज्ज, निब्बिज्जापेम गोतमं"॥ २४॥

तस्स सोकपरेतस्स, वीणा कच्छा अभस्सथ।
ततो सो दुम्मनो यक्खो, तत्थेवन्तरधायथा'ति॥ २५॥

पधानसुत्तं निट्ठितं।

३—सुभासित-सुत्तं (३, ३)

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने ..... पे० भगवा एतदवोच—"चतूहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागता वाचा सुभासिता होति नो दुब्भासिता, अनुवज्जा च अननुवज्जा च विञ्ञूनं। कतमेहि चतूहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सुभासितं येव भासति नो दुब्भासितं, धम्मं येव भासति नो अधम्मं, पियं येव भासति नो अप्पियं, सच्चं येव भासति नो अलिकं। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि अङ्गेहि समन्नागता वाचा सुभासिता होति नो दुब्भासिता, अनवज्जा च अननुवज्जा च विञ्ञून'न्ति। इदमवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

सुभासितं उत्तममाहु सन्तो, धम्मं भणे नाधम्मं तं दुतियं।
पियं भणे नाप्पियं तं ततियं, सच्चं भणे नालिकं तं चतुत्थ'न्ति॥१॥

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"पटिभाति मं सुगता" ति। "पटिभातु तं वङ्गीसा"ति भगवा अवोच। अथ खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

---

१. अनुबन्धि—म०। २. मुदुं—म०, स्या०। ३. वायसेन्तो—सी०; वायसेत्तो—म०।

मार—

सात वर्ष तक मैं भगवान् के पीछे-पीछे लगा रहा, किन्तु स्मृतिमान् सम्बुद्ध के लिए कोई भी अवसर नहीं पाया ॥ २२ ॥

लाल पत्थर को चर्बी का टुकड़ा समझ कर कौवा उस पर झपटा कि कुछ कोमल स्वादिष्ट चीज मिलेगी ॥ २३ ॥

उसमें कुछ स्वाद न पा कौवा वहां से हट गया। कौवे के पत्थर पर ठोकर मारने की भाँति गौतम से वैराग्य ले रहा हूँ ॥ २४ ॥

शोकाकुल उस मार की काँख से वीणा नीचे खिसक गई, वह यक्ष दुःखी हो वहीं अन्तर्ध्यान (=अदृश्य) हो गया ॥ २५ ॥

पधानसुत्त समाप्त ।

३. सुभासितसुत्त (३, ३)

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे।...भगवान् ने यह कहा—"भिक्षओ! चार अंगों से युक्त वचन सुभाषित होता है, न कि दुर्भाषित विज्ञों के लिए वह निर्दोष होता है, न कि दोषयुक्त। किन चार? भिक्षओ! यहाँ भिक्षु सुभाषित ही बोलता है, न कि दुर्भाषित। धर्म को ही बोलता है, न कि अधर्म। प्रिय ही बोलता है, न कि अप्रिय। सत्य ही बोलता है न कि असत्य। भिक्षुओ! इन चार अंगों से युक्त वचन सुभाषित होता है, न कि दुर्भाषित। विज्ञों के लिए वह निर्दोष होता है, न कि दोषयुक्त।"

भगवान् ने यह यह कहा, सुगत ने यह कहकर उसके पश्चात् शास्ता ने यह कहा—

सन्तों ने सुभाषित को ही उत्तम वचन कहा है। धर्म को ही कहे, अधर्म को नहीं—यह दूसरा है। प्रिय वचन बोले, अप्रिय नहीं—यह तीसरा है। सत्य बोले, असत्य नहीं—यह चौथा है ॥१॥

तब आयुष्मान् वंगीश आसन से उठ, चीवर को एक कन्धे पर करके जिधर भगवान् थे, उधर दोनों हाथ जोड़ प्रणाम कर भगवान् से यह बोले—"सुगत! मुझे सूझता है।"

"वंगीश! उसे सुनाओ।" भगवान् ने ऐसा कहा।

तब आयुष्मान् वंगीश ने भगवान् के सामने अनुकूल गाथाओं से स्तुति की–

"उसी बात को बोले जिससे न स्वयं कष्ट पाये और न दूसरे को ही दुःख हो। वही बात सुभाषित है ॥ २ ॥

जो बात आनन्दमयी हो उसी प्रिय बात को बोले। पापी बातों को छोड़कर दूसरों को प्रिय वचन ही बोले ॥ ३ ॥

सत्य ही अमृत वचन है––यः सदा का नियम है। सत्य, अर्थ और धर्म में प्रतिष्ठित सन्तों ने ऐसा कहा है ॥ ४ ॥

भगवान् बुद्ध जो कल्याणकर निर्वाण की प्राप्ति और दुःख का अन्त करने के लिए जो वचन बोलते हैं, वही वचनों में उत्तम है ॥ ५ ॥

सुभासितसुत्त समाप्त।

४. सुन्दरिकभारद्वाजसुत्त[1] (३,४)

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् कोसल जनपद में सुन्दरी[2] नदी के किनारे विहार कर रहे थे। उस समय सुन्दरिक भारद्वाज नामक ब्राह्मण सुन्दरी नदी के किनारे अग्नि-हवन करता था, अग्निहोत्र में लगा था। तब सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण ने अग्नि-हवन करके, अग्निहोत्र की परिचर्या कर, आसन से उठ चारों ओर चारों दिशाओं का अवलोकन किया––"कौन इस हव्यशेष को खायेगा ?" सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् को पास में ही किसी एक वृक्ष के नीचे सिर से चीवर ओढ़े बैठे देखा। देखकर बायें हाथ से हव्यशेष को लेकर, दायें हाथ से कमण्डल ले, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया।

तब भगवान् ने सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण के पैरों के शब्द से सिर खोल दिया। तब सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण––'यह आप मथमुंडे हैं, यह आप मथ-मुंडे हैं!' वहीं से पुनः लौटना चाहा। तब सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण को ऐसा हुआ––"यहां कोई-कोई ब्राह्मण भी मथमुंडे होते हैं, क्यों न मैं पास जाकर जाति पूछूँ ?" तब सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण जहां भगवान् थे, वहां गया। जाकर भगवान् से यह कहा––"आप किस जाति के हैं ?" तब भगवान् ने सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण से गाथाओं में कहा––

---

१. पूरलाससुत्त भी नाम है।

२. सई नदी का प्राचीन नाम।

"न ब्राह्मणो नो'म्हि न राजपुत्तो, न वेस्सायनो उद कोचि नो'म्हि।
गोत्तं परिञ्ञाय पुथुज्जनानं, अकिञ्चनो मन्त चरामि लोके ॥ १ ॥
सङ्घाटिवासी अगहो[1] चरामि, निवुत्तकेसो अभिनिब्बुतत्तो।
अलिप्पमानो[2] इध माणवेहि, अकल्लसं(ब्राह्मण) पुच्छसि गोत्तपञ्हं" २
"पुच्छन्ति वे भो ब्राह्मणा ब्राह्मणेहि सह ब्राह्मणो नो भव'न्ति।

"ब्राह्मणो चे त्वं ब्रूसि, मं च ब्रूसि अब्राह्मणं।
तं सावित्तिं पुच्छामि, तिपदं चतुवीसतक्खरं" ॥ ३ ॥
"किं निस्सिता इसयो, मनुजा खत्तिया ब्राह्मणा।
देवतानं यञ्ञमकप्पयिंसु, पुथु इध लोके"।
"यदन्तगू वेदगू यञ्ञकाले,
यस्साहुतिं लभे तस्सिज्झेति ब्रूसि" ॥ ४ ॥
"अद्धा हि तस्स हुतमिज्झे (ति ब्राह्मणो),
यं तादिसं वेदगुं अद्दसाम।
तुम्हादिसानं हि अदस्सनेन,
अञ्ञो जनो भुञ्जति पूरळासं" ॥ ५ ॥
"तस्मातिह त्वं ब्राह्मण अत्थेन,
अत्थिको उपसङ्कम्म पुच्छ।
सन्तं विधूमं अनिघं निरासं,
अप्पेविध अभिविन्दे सुमेधं" ॥ ६ ॥
"यञ्ञे रताहं (भो गोतम),
यञ्ञं यिट्ठुकामो[3]।
नाहं पजानामि अनुसासतु मं भवं,
यत्थ हुतं इज्झते ब्रूहि मे तं" ॥ ७ ॥

---

१. अगिहो—सी०, रो०। २. अलिम्पमानो—स्या०। ३. यट्ठुकामो—सी०।

निपात अत्यन्त प्राचीन है क्योंकि वेद को छोड़ पीछे कहीं भी छन्द की यह स्वतंत्रता देखने को नहीं मिलती।

सुत्तनिताात में मुख्यतः निम्नलिखित छन्द पाये जाते हैं—अनुष्टुभ्, त्रिष्टुभ्, जगती, अतिजगती, वैतालीय, औपच्छन्दसिक, वेगवती और आर्या। कुछ गाथायें अर्धसम और विषम छन्दों में हैं तथा कुछ पांच, छः या सात पदों की भी हैं, जिन्हें 'गाथा' छन्द कहा जाता है। वास्तव में सुत्तनिपात में अनुष्टुभ् और त्रिष्टुभ् छन्दों की संख्या ८६ प्रतिशत है और १४ प्रतिशत अन्य छन्दों में।

सुत्तनिपात का हिन्दी अनुवाद मूलपालि-सुत्तों के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे पाठकों को मूल और अनुवाद दोनों का ही लाभ मिल सकेगा। छात्रों को विशेष लाभ होगा—ऐसी आशा है। हिन्दी अनुवाद में यह ध्यान रखा गया है कि भाषा सरल और सुगम्य हो। कहीं-कहीं इसकी अट्ठकथा 'परमत्थ-जोतिका' से भी ऐतिहासिक, पारिभाषिक एवं परम्परागत मान्यताओं से परिचित कराने के लिए पाठ उद्धृत किये गये हैं। मूलपाठ में विभिन्न संस्करणों में जो पाठान्तर-भेद हैं, उन्हें भी पादटिप्पणियों में अंकित कर दिया गया है।

सुत्तनिपात के इस संस्करण के लिए सबको श्रीनरेन्द्र कुमार जैन का आभारी होना चाहिए। मेरे अस्वस्थ रहने पर भी उन्होंने कई बार आग्रह किया कि मैं स्वस्थ होते ही सुत्तनिपात के हिन्दी अनुवाद को प्रकाशनार्थ प्रस्तुत करूँ। मेरी ओर से भी वे बधाई के पात्र हैं। साधुवाद!

सारनाथ, वाराणसी
१-३-१९७७

—भिक्षु धर्मरक्षित

भगवान्—

मैं न तो ब्राह्मण हूँ, न राजपुत्र हूँ, न वैश्य हूँ, और न कोई और ही हूँ। पृथक्जनों के गोत्र को भली प्रकार जानकर मैं विचार-पूर्वक अकिंचन भाव से लोक में विचरण करता हूँ॥ १॥

चीवर पहन, बेघर हो, सिर मुँड़ाकर, पूर्ण रूप से शान्त हो, यहाँ लोगों में अनासक्त हो विचरण करता हूँ। हे ब्राह्मण! तू मुझसे गोत्र का प्रश्न अनुचित पूछ रहा है॥ २॥

ब्राह्मण—

"हे! ब्राह्मण ही ब्राह्मण से पूछते हैं कि आप ब्राह्मण हैं?"

भगवान्—

तू अपने को ब्राह्मण कहते हो और मुझे अब्राह्मण कहते हो, तो तुमसे मैं त्रिपद और चौबीस अक्षर वाले सावित्री मंत्र को पूछता हूँ॥ ३॥

ब्राह्मण—

इस संसार में ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने किस कारण देवताओं के नाम बहुत यज्ञ किये थे?

भगवान्—

यज्ञ के समय पारंगत, ज्ञानी किसी को आहुति मिल गई तो उसका यज्ञ सफल होता है—ऐसा मैं कहता हूँ॥ ४॥

ब्राह्मण—

अवश्य ही उसका यज्ञ सफल होगा जो वैसे ज्ञानी का दर्शन पाये। आप जैसे (ज्ञानियों के) दर्शन न होने से ही दूसरे लोग पूड़ी और चिउरा खाते हैं॥ ५॥

भगवान्—

इसलिए तू ब्राह्मण! शान्त, क्रोध-रहित, निष्पापी, तृष्णा-रहित महाज्ञानी के पास जाकर अर्थ की बात पूछो; कदाचित् तू कुछ समझ पाओगे॥ ६॥

ब्राह्मण—

हे गौतम! मैं यज्ञ में रत हूँ, यज्ञ करना चाहता हूँ। मैं उसे नहीं जानता, इसलिए आप उपदेश दें, आप बतावें कि यज्ञ कैसे सफल होता है?॥ ७॥

तेन हि त्वं ब्राह्मण ओदहस्सु सोतं, धम्मं ते देसिस्सामि[1]—

"मा जातिं पुच्छ चरणं च पुच्छ, कट्ठा हवे जायति जातवेदो।
नीचा कुलीनो'पि मुनी धितीमा, आजानियो होति हिरीनिसेधो ॥८॥
सच्चेन दन्तो दमसा उपेतो, वेदन्तगू वूसितब्रह्मचरियो।
कालेन तम्हि हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥९॥
ये कामे हित्वा अगहा[2] चरन्ति, सुसञ्ञतत्ता तसरं'व उज्जुं।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥१०॥
ये वीतरागा सुसमाहितिन्द्रिया, चन्दो'व राहुगहणा[3] पमुत्ता।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥११॥
असज्जमाना विचरन्ति लोके, सदा सता हित्वा ममायितानी।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥१२॥
यो कामे हित्वा अभिभुय्यचारी, यो वेदि[4] जातिमरणस्स अन्तं।
परिनिब्बुतो उदकरहदो'व सीतो, तथागतो अरहति पूरळासं ॥१३॥
समो समेहि विसमेहि दूरे, तथागतो होति अनन्तपञ्ञो।
अनूपलित्तो इध वा हुरं वा; तथागतो अरहति पूरळासं ॥१४॥
यम्हि न माया वसती न मानो, यो वीतलोभो अममो निरासो।
पनुण्णकोधो अभिनिब्बुतत्तो, यो ब्राह्मणो सोकमलं अहासि।
तथागतो अरहति पूरळासं ॥१५॥
निवेसनं यो मनसो अहासि, परिग्गहा यस्स न सन्ति केचि।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा, तथागतो अरहति पूरळासं ॥१६॥

१. देसेस्सामि—म०।

२. अगिहा—सी०।

३. राहुग्गहणा—म०, सी०।

४. वेदी—सी०।

भगवान्—

"तो ब्राह्मण ! कान लगाओ। मैं तुझे धर्म का उपदेश दूँगा।

जाति मत पूछो, आचरण पूछो। लकड़ी से आग निकलती है। इसी प्रकार नीच कुल से पैदा होकर भी मुनि धृतिमान्, उत्तम और लज्जा-युक्त कार्यों से दूर रहने वाला होता है ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से यज्ञ करता है उसे चाहिए कि वह सत्य से दान्त, दम (=इन्द्रिय-दमन) से युक्त, ज्ञान-पारंगत, ब्रह्मचर्यवास समाप्त मुनि को समयानुसार हव्य प्रदान करे ॥ ९ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से यज्ञ करता है, उसे चाहिए कि तसर (=ढरकी) के समान ऋजु, दूसरे संयमी जो काम-भोगों को छोड़, बेघर हो विचरण करने वाले (मुनि) हैं, उन्हें समयानुसार हव्य प्रदान करे ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से यज्ञ करता है, उसे चाहिए कि राहु-ग्रहण से युक्त चन्द्रमा के समान जो राग-रहित, इन्द्रियों में संयम रखने वाले मुनि हैं उन्हें समयानुसार हव्य प्रदान करे ॥ ११ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से यज्ञ करता है, उसे चाहिए कि जो सदा स्मृतिमान् हो, ममत्व को छोड़, संसार में अनासक्त हो विचरण करते हैं, समयानुसार उन्हें हव्य प्रदान करे ॥ १२ ॥

जो विषयों को छोड़, निर्भय रूप से विचरण करते हैं, जिन्होंने जन्म-मृत्यु का अन्त जान लिया है, उपशान्त, गम्भीर जलाशय की तरह तथागत ही पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं ॥ १३ ॥

सत्पुरुषों के साथ समान व्यवहार वाले, दुर्जनों से दूर रहने वाले तथागत अनन्त ज्ञानी हैं। इस लोक या परलोक में आसक्ति नहीं रखने वाले तथागत ही पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं ॥ १४ ॥

जिनमें न माया है, न अभिमान है, जो लोभ, अहंकार और तृष्णा-रहित हैं, क्रोध को दूर कर उपशान्त हो गए हैं, और जिस ब्राह्मण ने शोक रूपी मल को दूर कर दिया है, ऐसे तथागत ही पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं ॥ १५ ॥

जिन्होंने मन से आसक्तियों को त्याग दिया है, जिन्हें किसी प्रकार का परिग्रह नहीं है, इस लोक या परलोक में अनासक्त तथागत ही पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं ॥ १६ ॥

समाहितो यो उदतारि ओघं, धम्मञ्च ञासि परमाय दिट्ठिया।
खीणासवो अन्तिमदेहधारी, तथागतो अरहति पूरळासं ॥१७॥
भवासवा यस्स वची खरा च, विधूपिता अत्थगता न सन्ति।
स वेदगू सब्बधि विप्पमुत्तो, तथागतो अरहति पूरळासं ॥१८॥
सङ्गातिगो यस्स न सन्ति सङ्गा, यो मानसत्तेसु अमानसत्तो।
दुक्खं परिञ्ञाय सुखेत्तवत्थुं, तथागतो अरहति पूरळासं ॥१९॥
आसं अनिस्साय विवेकदस्सी, परवेदियं दिट्ठिमुपातिवत्तो।
आरम्मणा यस्स न सन्ति केचि, तथागतो अरहति पूरळासं ॥२०॥
परोवरा[1] यस्स समेच्च धम्मा, विधूपिता अत्थगता न सन्ति।
सन्तो उपादानक्खये[2] विमुत्तो, तथागतो अरहति पूरळासं ॥२१॥
संयोजनं जातिखयन्तदस्सी, यो'पानुदि रागपथं असेसं।
सुद्धो निद्दोसो विमलो अकाचो,[3] तथागतो अरहति पूरळासं ॥२२॥
यो अत्तनात्तानं[4] नानुपस्सति, समाहितो उज्जुगतो ठितत्तो।
स वे अनेजो अखिलो अकंखो, तथागतो अहरति पूरळासं ॥२३॥
मोहन्तरा यस्स न सन्ति केचि, सब्बेसु धम्मेसु च ञाणदस्सी।
सरीरं च अन्तिमं धारेति, पत्तो च सम्बोधिमनुत्तरं सिवं।
एत्तावता यक्खस्स सुद्धी, तथागतो अरहति पूरळासं" ॥२४॥
"हुत[5] च[6] मय्हं हुतमत्थु सच्चं, यं तादिसं वेदगुनं अलत्थं।
ब्रह्मा हि सक्खि पटिगण्हातु मे भगवा,भुञ्जतु मे भगवा पूरळासं ॥२५॥

---

१. परोपरा—म०।
२. उपादानखये—म०।
३. अकाभो—सी०, स्या०।
४. अत्तनो अत्तानं—म०।
५-६. हुतञ्च—सी०, क०।

जिन्होंने एकाग्र-चित्त होकर सांसारिक बाढ़ को पार कर लिया और उत्तम दृष्टि से धर्म को जान लिया वह क्षीणाश्रव और अन्तिम शरीर धारण करने वाले तथागत ही पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं ॥ १७ ॥

जिनके भवाश्रव और कटु-वचन नष्ट हो गए हैं, अस्त हो गए हैं, नहीं हैं, वे ज्ञानी, सब प्रकार से मुक्त तथागत ही पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं ॥१८॥

जो रागादि आसक्तियों के परे हो गए हैं, जिनमें आसक्तियां नहीं हैं; जो अभिमानी लोगों में अभिमान शून्य हैं; जिन्होंने दुःख और उसकी उत्पत्ति-क्षेत्र को जान लिया है, ऐसे तथागत ही पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं ॥ १९ ॥

जो तृष्णा-रहित हैं, निर्वाणदर्शी हैं, दूसरों की दृष्टियों से परे हैं और जिनके लिए कहीं कुछ भी विषयालम्बन नहीं है; ऐसे तथागत ही पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं ॥ २० ॥

ज्ञान द्वारा जिनमें आदि से अन्त तक वासनाएँ नष्ट हो चुकी हैं, अस्त हो चुकी हैं, जो शान्त और आसक्तियों के क्षय से विमुक्त हैं, ऐसे तथागत ही पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं ॥ २१ ॥

जिन्होंने जन्म-क्षय को देख लिया है, सभी सांसारिक बन्धनों और राग के मार्गों को दूर कर दिया है, जो शुद्ध हैं, निर्दोष हैं, विमल हैं और निर्मल हैं, ऐसे तथागत ही पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं ॥ २२ ॥

जो अपने भीतर आत्मा को नहीं देखता, एकाग्र, ऋजुगामी, और स्थिर चित्त है, वही तृष्णा-रहित, सम्पूर्ण प्रकार से शंका-रहित तथागत ही पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं ॥ २३ ॥

जिनमें किसी भी प्रकार का मोह नहीं है और जो सभी धर्मों में ज्ञानदर्शी हैं, जो अन्तिम शरीर धारण कर रहे हैं, जिन्होंने सर्वोत्तम कल्याणकर सम्बोधि (=ज्ञान) को प्राप्त कर लिया है, इतने से पुरुष (=यक्ष) की शुद्धि होती है, ऐसे तथागत ही पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं ॥ २४ ॥

ब्राह्मण—

आप जैसे ज्ञान-पारंगत को पाकर मेरा यज्ञ पूर्ण हो। आप साक्षात् ब्रह्म हैं भगवान्! मेरा भोजन स्वीकार करें, भगवान्! मेरे पूड़ी और चिउरा को खायें ॥ २५ ॥

"गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं, संपस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो ।
गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरेसा ॥२६॥
अञ्ञेन च केवलिनं महेसिं, खीणासवं कुक्कुच्चवूपसन्तं ।
अन्नेन पानेन उपट्ठहस्सु, खेत्तं हि तं पुञ्ञपेक्खस्स होति" ॥२७॥

"साधाहं भगवा तथा विजञ्ञं, यो दक्खिणं भुञ्जेय्य मादिसस्स ।
यं यञ्ञकाले परियेसमाना, पप्पुय्य तव सासनं" ॥२८॥

"सारम्भा यस्स विगता, चित्तं यस्स अनाविलं ।
विप्पमुत्तो च कामेहि, थीनं यस्स पनूदितं ॥ २९ ॥

सीमन्तानं विनेतारं, जातिमरणकोविदं ।
मुनिं मोनेय्यसम्पन्नं, तादिसं यञ्ञमागतं ॥ ३० ॥

भकुटिं[1] विनयित्वान, पञ्जलिका नमस्सथ ।
पूजेथ अन्नपानेन, एवं इज्झन्ति दक्खिणा" ३१ ॥

"बुद्धो भवं अरहति पूरळासं, पुञ्ञक्खेत्तमनुत्तरं ।
आयागो सब्बलोकस्स, भोतो दिन्नं महप्फलं'न्ति ॥ ३२ ॥

अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच–"अभिक्कन्तं भो गोतम····पे०····अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो । एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि, धम्मं च भिक्खु संघं च । लभेय्याहं भोतो गोतमस्स सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पद'न्ति । अलत्थ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो····पे०····अरहतं अहोसी'ति ।

सुन्दरिकभारद्वाजसुत्तं निट्ठितं ।

---

१. भुकुटि—सी० ।

भगवान्—

धर्मोपदेश करने से प्राप्त भोजन मेरे लिए अभोज्य है। ब्राह्मण! भली प्रकार जानकारों का यह नियम (=धर्म) नहीं है। बुद्ध धर्मोपदेश से प्राप्त भोजन को त्याग देते हैं। ब्राह्मण! धर्म के विद्यमान रहते यही रीति है॥ २६॥

ज्ञानी, महर्षि, क्षीणाश्रव और चंचलता-रहित मेरे लिए दूसरे अन्न और पेय को लाओ। पुण्य चाहने वाले के लिए यह (उत्तम) क्षेत्र होता है॥ २७॥

ब्राह्मण—

वहुत अच्छा भगवान्! मैं जानना चाहता हूँ कि मुझ जैसे की दक्षिणा कौन ग्रहण करे? आपके धर्म को ग्रहण कर मैं यज्ञ के समय किसको खोजूँ?॥२८॥

भगवान्—

जिनमें हिंसा-भाव नहीं है, जिनका चित्त राग-रहित परिशुद्ध है, जो काम-भोगों से मुक्त हैं, स्त्यान जिनसे दूर हो गया है॥ २९॥

जो वासनाओं को नाश करने वाले हैं, जन्म और मृत्य के जानकार हैं, जो मौनेय व्रत से युक्त मुनि हैं, वैसे के यज्ञ में आने पर—॥ ३०॥

आँखें नीची करके, दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार करो। अन्न और पेय से उनकी पूजा करो—इस प्रकार दक्षिणा सफल होती है॥ ३१॥

ब्राह्मण—

आप बुद्ध पूड़ी और चिउरा के योग्य हैं। आप उत्तम पुण्य-क्षेत्र हैं। सारे संसार के पूज्य हैं। आपको देना महाफलदायी है॥३२॥

तब सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् से यह कहा—"आश्चर्य है हे गौतम!... अनेक प्रकार से धर्म प्रकाशित किया। यह मैं आप गौतम की शरण जा रहा हूँ, धर्म और भिक्षु-संघ की भी। आप गौतम के पास मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।"

सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण ने... उपसम्पदा पाई। ...अर्हन्तों में से एक हुए।

सुन्दरिकभारद्वाजसुत्त समाप्त।

५—माघ-सुत्तं (३, ५)

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। अथ खो माघो माणवो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो माघो माणवो भगवन्तं एतदवोच-"अहं हि, भो गोतम, दायको दानपति वदञ्ञू याचयोगो, धम्मेन भोगे परियेसामि, धम्मेन भोगे परियेसित्वा धम्मलद्धेहि भोगेहि धम्माधिगतेहि एकस्स'पि ददामि, द्विन्नम्पि ददामि, तिण्णम्पि ददामि, चतुन्नम्पि ददामि, पञ्चन्नम्पि ददामि, छन्नम्पि ददामि, सत्तन्नम्पि ददामि, अट्ठन्नम्पि ददामि, दसन्नम्पि ददामि, वीसाय'पि ददामि, तिंसाय'पि ददामि, चत्तारीसाय'पि ददामि, पञ्ञासाय'पि ददामि, सतस्स'पि ददामि, भिय्यो'पि ददामि, कच्चाहं, भो गोतम, एवं ददन्तो एवं यजन्तो बहुं पुञ्ञं पसवामी"ति ? "तग्घ त्वं, माणव, एवं ददन्तो एवं यजन्तो बहुं पुञ्ञं पसवसि। यो खो, माणव दायको दानपति वदञ्ञू याचयोगो धम्मेन भोगे परियेसति, धम्मेन भोगे परियेसित्वा धम्मलद्धेहि भोगेहि धम्माधिगतेहि एकस्स'पि ददाति.... पे०.. सतस्स'पि ददाति, भिय्यो'पि ददाति, बहुं सो पुञ्ञं पसवती'ति अथ खो माघो माणवो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

पुच्छामहं भो[1] गोतमं वदञ्ञुं (इति माघो माणवो),
कासायवासिं अगहं[2] चरन्तं।
यो याचयोगो दानपति गहट्ठो, पुञ्ञत्थिको यजति पुञ्ञपेक्खो।
ददं परेसं इध अन्नपानं, कत्थ हुतं यजमानस्स सुज्झे ॥ १ ॥
(यो) याचयोगो दानपति[3] गहट्ठो (माघोति भगवा),
पुञ्ञत्थिको यजति पुञ्ञपेक्खो।
ददं परेसं इध अन्नपानं, आराधये दक्खिणेय्ये हि तादि ॥ २ ॥

---

१. म० पोत्थके नत्थि। २. अगिहं—सी; अगेहं—रो०। ३. दानपती—सी०, स्या०, रो०।

५—माघसुत्त (३, ५)

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। तब माघ माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् के साथ कुशल-मंगल पूछा। कुशल-मंगल पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे माघ माणवक ने भगवान् से यह कहा—"हे गौतम ! मैं दायक हूँ, दानपति हूँ, (याचकों के) कहते ही समझने वाला हूँ, मैं याचना के योग्य हूँ। धर्म से धन कमाता हूँ, धर्म से धन कमाकर धर्म से प्राप्त तथा धर्म से हस्तगत धन से एक को भी देता हूँ, दो को भी देता हूँ, तीन को भी देता हूँ, चार को भी देता हूँ, पाँच को भी देता हूँ, छः को भी देता हूँ, सात को भी देता हूँ, आठ को भी देता हूँ, नव को भी देता हूँ, दस को भी देता हूँ, बीस को भी देता हूँ, तीस को भी देता हूँ, चालीस को भी देता हूँ, पचास को भी देता हूँ, सौ को भी देता हूँ, अधिक को भी देता हूँ। क्या हे गौतम ! मैं ऐसे देते, ऐसे चढ़ाते बहुत पुण्य कमाता हूँ ?"

"तो तू माणवक ! ऐसे देते, ऐसे चढ़ाते बहुत पुण्य कमाते हो। माणवक ! जो दायक, दानपति (याचकों के) कहते ही समझने वाला, याचना के योग्य धर्म से धन कमाता है, धर्म से धन कमाकर धर्म से प्राप्त, धर्म से हस्तगत धन से एक को भी देता है...सौ को भी देता है, अधिक को भी देता है, वह बहुत पुण्य कमाता है।"

तब माघ माणवक ने भगवान् से गाथा में कहा—

माघ—काषायवस्त्रधारी, याचकों को जाननेवाले आप गौतम से मैं पूछता हूँ कि पुण्यार्थी हो, पुण्य का अपेक्षी हो, दूसरों के अन्न-पेय का दान करने वाले, याचने योग्य, दानपति, गृहस्थ का दान किसे देने से महाफल होता है ? ॥ १ ॥

भगवान्—जो याचना करने योग्य, दानपति गृहस्थ पुण्य को चाहता, पुण्य की आकांक्षा करता यहाँ दूसरों को अन्न और पेय देता है, उसे चाहिए कि वह ज्ञानी दाक्षिणेय को प्रसन्न करे ॥ २ ॥

यो याचयोगो दानपति गहट्ठो (इति माणवो),
पुञ्ञत्थिको यजति पुञ्ञपेक्खो।
ददं परेसं इध अन्नपानं, अक्खाहि मे भगवा दक्खिणेय्ये ॥ ३ ॥

ये वे असत्ता[1] विचरन्ति लोके, अकिञ्चना केवलिनो यतत्ता।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो[2] यजेथ ॥ ४ ॥
ये सब्बसंयोजनबन्धनच्छिदा, दन्ता विमुत्ता अनिघा निरासा।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ ५ ॥
ये सब्बसंयोजनविप्पमुत्ता, दन्ता विमुत्ता अनिघा निरासा।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ ६ ॥
रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं, खीणासवा वुसितब्रह्मचरिया।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ ७ ॥
येसु माया वसति न मानो, ये[3] वीतलोभा अममा निरासा।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ ८ ॥
ये[4] वे न तण्हासु उपातिपन्ना, वितरेय्य ओघं अममा चरन्ति[5]।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ ९ ॥
येसं[6] तण्हा नत्थि कुहिञ्चि लोके, भवाभवाय इध वा हुरं वा।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ १० ॥
ये[7] कामे हित्वा अगहा चरन्ति, सुसञ्ञतत्ता तसरं'व उज्जुं।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ ११ ॥

१. अलग्ग—स्या०।
२. पुञ्ञपेखो—सी०, रो, क०।
३-४. खीणासवा वूसितब्रह्मचरिया-म०।
५. ये वीतलोभा अममा निरसा, खीणासवा वूसितब्रह्मचरिया-म०।
६. अयं गाथा पन मरम्मपोत्थकस्स एकादसमी होति।
७. अयं गाथा पन मरम्मपोत्थकस्स दसमी होति।

सुत्त-सूची

१. उरग-वग्ग

२. चूळ-वग्ग

माघ—जो याचना करने योग्य, दानपति गृहस्थ पुण्य को चाहते, पुण्य की आकांक्षा से दान देता है तथा जो यहाँ दूसरों को अन्न और पेय का दान करता है तो भगवान् ! ऐसे के लिए मुझे दाक्षिणेय (व्यक्ति) को बतलायें ॥ ३ ॥

भगवान्—जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिए कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जो कि अनासक्त हो लोक में विचरण करते हैं तथा जो अकिंचन, ज्ञानी तथा संयमी हैं ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिए कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जो कि दान्त, विमुक्त, निष्पाप, तृष्णारहित तथा सारे सांसारिक बन्धनों से रहित हैं ॥ ५ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिए कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जो कि दान्त, विमुक्त, निष्पाप, तृष्णारहित तथा सारे सांसारिक वन्धनों से मुक्त हैं ॥ ६ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिए कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जो कि राग, द्वेष और मोह को त्यागकर क्षीणाश्रव हो गये हैं तथा जिन्होंने ब्रह्मचर्यवास को पूर्ण कर लिया है ॥ ७ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिए कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जिनमें न माया है, न अभिमान है, जो लोभरहित, ममतारहित और तृष्णारहित हैं ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिए कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जो कि तृष्णा में फँसे हुए नहीं हैं और जो संसाररूपी बाढ़ को पारकर आसक्तिरहित हो विचरण करते हैं ॥ ९ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिए कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जिन्हें कि इस लोक या परलोक में कहीं भी उत्पत्ति या विनाश के लिए तृष्णा नहीं है ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिए कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जो कि काम-भोगों को त्यागकर, बेघरबार का होकर सीधे तसर (= ढरकी) के समान संयमी होकर विचरण करते हैं ॥ ११ ॥

ये वीतरागा सुसमाहितिन्द्रिया, चन्दोव राहुगहणा पमुत्ता।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ १२ ॥
समिताविनो वीतरागा अकोपा, येसं गति नत्थि इध विप्पहाय।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ १३ ॥
जहेत्वा जातिमरणं असेसं, कथंकथिं सब्बमुपातिवत्ता।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ १४ ॥
ये अत्तदीपा विचरन्ति लोके, अकिञ्चना सब्बधिविप्पमुत्ता।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ १५ ॥
ये हेत्थ[1] जानन्ति यथातथा इदं, अयमन्तिमा नत्थि पुनब्भवोति।
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥ १६ ॥
यो वेदगू झानरतो सतीमा, सम्बोधिपत्तो सरणं बहुन्नं।
कालेन तम्हि हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेक्खो यजेथ ॥१७॥
अद्धा अमोघा मम पुच्छना अहु, अक्खासि मे भगवा दक्खिणेय्ये।
त्वं हेत्थ जानासि यथातथा इदं, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥१८॥
यो याचयोगो दानपति गहट्ठो (इति माघो माणवो),
पुञ्ञत्थिको यजति पुञ्ञपेक्खो।
ददं परेसं इध अन्नपानं, अक्खाहि मे भगवा यञ्ञसम्पदं ॥१९॥
यजस्सु यजमानो (माघोति भगवा), सब्बत्थ च विप्पसादेहि चित्तं।
आरम्मणं यजमानस्स यञ्ञं,[2] एत्थ पतिट्ठाय जहाति दोसं ॥२०॥

१ एत्थ-सी०।
२. यञ्ञो—सी०, म०।

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिए कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जो कि राहु से मुक्त चन्द्रमा की भाँति वीतराग और सुसंयमित इन्द्रिय वाले हैं ॥ १२ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिए कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जो कि वासनारहित हैं, रागरहित हैं, क्रोधरहित हैं और जिन्हें इस जन्म के पश्चात् फिर जन्म नहीं लेना है ॥ १३ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिए कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जो कि जन्म-मृत्यु को सम्पूर्णतः छोड़ सव संशयों से परे हो गये हैं ॥ १४ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिए कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जो कि लोक में अपने लिए द्वीप वनाकर विचरण करते हैं, जो अकिंचन है और सव प्रकार ये मुक्त हो गये हैं ॥ १५ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता हैं, उसे चाहिये कि समयानुसार उन्हें हव्य का दान करे जो कि यथार्थ रूप से जानते हैं कि यह मेरा अन्तिम जन्म है और पुर्नजन्म नहीं होगा ॥ १६ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की कामना से दान देता है, उसे चाहिये कि समयानुसार उसे द्रव्य का दान करे जो कि ज्ञानी हैं, ध्यान में रत हैं, स्मृतिमान् हैं, सम्वोधि प्राप्त हैं और वहुतों का शरण हैं ॥ १७ ॥

साघ—निश्चय ही मेरा प्रश्न निरर्थक नहीं हुआ। भगवान् ने दक्षिणा देने वाले व्यक्तियों को वतलाया। आप इसे यथार्थ रूप से जानते है, आपको ही यह कर्म यथार्थ रूप से विदित है ॥ १८ ॥

जो चायना करने योग्य दानपति गृहस्थ पुण्य की कामना से यज्ञ करता है, जो यहां दूसरों को अन्न और पेय देता है, भगवान्! उसके लिए मुझे यज्ञ-सम्पदा (=दान का फल) वतलायें ॥ १९ ॥

भगवान्—दान दो और दान देते समय सवके प्रति अपने मन को प्रसन्न रखो। दान ही दायक का आलम्वन है। इसमें प्रतिष्ठित हो दायक के मन का द्वेष दूर हो जाता है ॥ २० ॥

सो वीतरागो पविनेय्य दोसं, मेत्तं चित्तं भावयं अप्पमाणं।
रत्तिं दिवं सततं अप्पमत्तो, सब्बा दिसा फरते अप्पमञ्ञं ॥२१॥
को सुज्झति मुच्चति बज्झति च, केनत्तना गच्छति ब्रह्मलोकं।
अजानतो मे मुनि ब्रूहि पुट्ठो, भगवा हि मे सक्खि ब्रह्मज्ज दिट्ठो।
तुवं हि नो ब्रह्मसमोति सच्चं, कथं उप्पज्जति ब्रह्मलोकं (जुतीमा[1])॥२२॥
यो यजति तिविधं यञ्ञसम्पदं (माघोति भगवा),
आराधये दक्खिणेय्ये हि तादि।
एवं यजित्वा सम्मा याचयोगो, उप्पज्जति ब्रह्मलोकन्ति ब्रूमी'ति ॥२३॥

एवं वुत्ते माघो माणवो भगवन्तं एतदवोच—अभिक्कन्तं भो गोतम··· पे०···अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि, धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मे भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गत'न्ति।

माघसुत्तं निट्ठितं।

६.—सभिय-सुत्तं (३, ६)

एवं मे सुत्तं। एकं समयं भगवा राजगहे विरहति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन सभियस्स परिब्बाजकस्स पुराणसालोहिताय देवताय पञ्हा उद्दिट्ठा होन्ति—"यो ते, सभिय समणो वा ब्राह्मणो वा इमे पञ्हे पुट्ठो ब्याकरोति, तस्स सन्तिके ब्रह्मचरियं चरेय्यासी"ति। अथ खो सभियो परिब्बाजको तस्सा देवताय सन्तिके पञ्हे उग्गहेत्वा, ये ते समणब्राह्मणा सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स, सेय्यथीदं—पूरणो[2] कस्सपो, मक्खलिगोसालो, अजितो केसकम्बली, पकुधो[3] कच्चायनो[4], संजयो[5] बेल्लट्ठिपुत्तो[6], निगण्ठो नातपुत्तो[7], ते उपसङ्कमित्वा ते पञ्हे पुच्छति। ते सभियेन परिब्बाजकेन पञ्हे पुट्ठा

---

१. जुतिमा—म०। २. पुराणो—स्या०। ३. ककुधो—सी०; पकुद्धो—स्या०, क०। ४. कच्चानो—म०, स्या०। ५. सञ्चयो—म०। ६. बेलट्ठपुत्तो—म०; वेलट्ठपुत्तो—स्या०। ७. नाठपुत्तो—म०, स्या०।

वह राग-रहित हो, द्वेष का दमन कर, अप्रमाण मैत्री चित्त की भावना करते, रात-दिन सदा अप्रमादी रहकर सभी दिशाओं में अप्रमाण (=असीम) मैत्री भाव फैलाता है ॥ २१ ॥

माघ—मुझ अज्ञानी को मुनि बतायें कि कौन शुद्ध होता है, मुक्त होता है, बन्धन में पड़ता है और कौन स्वयं ब्रह्मलोक को जाता है? भगवान् मेरे देखे साक्षात् ब्रह्म हैं। यह सत्य है कि आप हमारे लिए ब्रह्म रूप हैं। धृतिमान्! ब्रह्मलोक में उत्पत्ति किस प्रकार होती है? ॥ २२ ॥

भगवान्—जो तीन प्रकार का दान देता है, वह दक्षिणा पाने वालों को प्रसन्न रखता है। इस प्रकार अच्छी तरह दान देकर दाता ब्रह्मलोक में जन्म लेता है—ऐसा मैं कहता हूँ ॥ २३ ॥

ऐसा कहने पर माघ माणव ने भगवान् से यह कहा—आश्चर्य है हे गौतम!......अनेक प्रकार से धर्म प्रकाशित किया। यह मैं आप गौतम की शरण जा रहा हूँ, धर्म और भिक्षु संघ की भी। आप गौतम मुझे आज से जीवन-पर्यन्त शरणागत उपासक धारण करें।"

माघसुत्त समाप्त।

६—सभियसुत्त (३, ६)

[सभिय परिव्राजक तत्कालीन छः शास्ताओं के प्रश्नोत्तरों से सन्तुष्ट न होकर भगवान् के पास गया और उनके उत्तरों से प्रसन्न हो भिक्षु बन गया।]

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् राजगृह में वेणुवन कलन्दक निवाप में विहार कर रहे थे। उस समय सभिय परिव्राजक के एक पुराने हितैषी देवता द्वारा प्रश्न बतलाये गये थे—"सभिय! जो श्रमण या ब्राह्मण इन प्रश्नों को पूछने पर उत्तर दे, उसके पास तुम ब्रह्मचर्य का पालन करना।" तब सभिय परिव्राजक उस देवता के पास प्रश्नों को सीख, जो श्रमण-ब्राह्मण संघवाले, गणवाले, गणाचार्य, प्रसिद्ध, यशस्वी, तीर्थंकर, बहुत लोगों से उत्तम माने जानेवाले

न संपायन्ति, असंपायन्ता कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोन्ति, अपि च सभियं येव परिब्बाजकं पटिपुच्छन्ति। अथ खो सभियस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि—"ये खो ते भोन्तो समणब्राह्मणा सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स सेय्यथीदं-पूरणो कस्सपो···पे०···निगण्ठो नातपुत्तो, ते मया पञ्हे पुट्ठा न संपायन्ति, असंपायन्ता कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोन्ति, अपि च मञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छन्ति, यन्नूनाहं हीनायावत्तित्त्वा कामे परिभुञ्जेय्य'न्ति। अथ खो सभियस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि—"अयम्पि[1] समणो गोतमो[2] सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स, यन्नूनाहं समणं गोतमं उपसङ्कमित्वा इमे पञ्हे पुच्छेय्य"न्ति अथ खो सभियस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि—"ये पि[3] खो ते[4] भोन्तो समणब्राह्मणा जिण्णा वुद्धा महल्लका अद्धगता वयोअनुप्पत्ता थेरा रत्तञ्ञू चिरपब्बजिता सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स, सेय्यथीदं—पूरणो कस्सपो···पे०···निगण्ठो नातपुत्तो, ते'पि मया पञ्हे पुट्ठा न संपायन्ति, असंपायन्ता कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोन्ति, अपि च मञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छन्ति। किं पन मे समणो गोतमो इमे पञ्हे पुट्ठो व्याकरिस्सति। समणो हि[5] गोतमो दहरो चेव जातिया नवो च पब्बज्जाया"ति। अथ खो सभियस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि—"समणो खो दहरोति न परिभोतब्बो[6]। दहरो'पि चे समणो होति, सो होति महिद्धिको महानुभावो यन्नूनाहं समणं गोतमं उपसङ्कमित्वा इमे पञ्हे पुच्छेय्य"न्ति। अथ खो सभियो परिब्बाजको येन राजगहं तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन राजगहं वेळुवनं कलन्दकनिवापो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं

१-२. अयम्पि खो समणो—सी०। ३-४. येपि खो ते—सी०, म०; यं खो ते—क०।
५. खो—स्या०, क०। ६. उञ्ञातब्बो—म०।

थे, जैसे कि पूर्ण काश्यप, मक्खलि गोशाल, अजित केशकम्बली, प्रक्रुध कात्यायन, संजय वेलट्ठिपुत्र, निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र—उनके पास जाकर उन प्रश्नों को पूछता था। वे सभिय परिव्राजक के प्रश्न पूछने पर उत्तर नहीं दे पाते थे, उत्तर न दे पाते हुए क्रोध, द्वेष और नाराजगी प्रगट करते थे। यहां तक कि सभिय परिव्राजक से प्रश्न करने लगते थे। तब सभिय परिव्राजक के मन में यह हुआ–"यह भी श्रमण गौतम संघवाले, गणवाले, गणाचार्य, प्रसिद्ध, यशस्वी, तीर्थंकर, और बहुत लोगों से उत्तम माने जाने वाले हैं, क्यों न मैं श्रमण गौतम के पास इन प्रश्नों को पूछूँ ?" तव सभिय परिव्राजक के मन में यह हुआ–"वे जो भी आप श्रमण-ब्राह्मण जीर्ण, वृद्ध, पुरनिया, अवस्था बीते हुए, अवस्था-प्राप्त, स्थविर, दीर्घजीवी, बहुत दिनों के प्रव्रजित, संघवाले, गणवाले, गणाचार्य, प्रसिद्ध, यशस्वी, तीर्थंकर और बहुत से लोगों से उत्तम माने जाने वाले हैं, जैसे कि पूर्ण काश्यप……निर्ग्रंथ ज्ञातृपुत्र, वे भी मेरे पूछे प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाते हैं, उत्तर न दे पाते हुए क्रोध, द्वेष और नाराजगी प्रगट करते हैं, यहां तक कि मुझसे ही प्रश्न पूछने लगते हैं। फिर श्रमण गौतम क्या मेरे पूछे इन प्रश्नों का उत्तर दे सकेगा ? श्रमण गौतम जन्म से तरुण है और प्रव्रज्या में भी नया है !" तब सभिय परिव्राजक के मन में यह हुआ—"श्रमण तरुण है—ऐसा समझकर उसका अनादर नहीं करना चाहिए। यदि तरुण भी श्रमण हो और यदि वह महाऋद्धिमान् और महाप्रतापी हो। क्यों न मैं श्रमण गौतम के पास जाकर इन प्रश्नों को पूछूँ ?" तब सभिय परिव्राजक जहाँ राजगृह है, वहां के लिए चारिका पर चल दिया। क्रमशः चारिका करते जहाँ राजगृह का वेणुवन कलन्दक निवाप था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् के साथ कुशल-क्षेम पूछा। कुशल-क्षेम पूछकर, स्मरण दिलाने वाली बात को समाप्त कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सभिय परिव्राजक ने भगवान् से गाथाओं में कहा—

कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सभियो परिब्बाजको भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

कङ्खी वेचिकिच्छी आगमं (इति सभियो), पञ्हे पुच्छितुं अभिकङ्खमानो
तेसन्तकरो भगवाहि[1] पुट्ठो, अनुपुब्बं अनुधम्मं ब्याकरोहि मे ॥ १ ॥

दूरतो आगतोसि (सभियाति भगवा), पञ्हे पुच्छितुं अभिकङ्खमानो।
तेसन्तकरो[2] भवामि[3] पुट्ठो, अनुपुब्बं अनुधम्मं ब्याकरोमि ते ॥ २ ॥

पुच्छ[4] मं सभिय पञ्हं, यं किञ्चि मनसिच्छसि।
तस्स तस्सेव पञ्हस्स, अहं अन्तं करोमि ते'ति ॥ ३ ॥

अथ खो सभियस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि—"अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, यावताहं अञ्ञेसु समणब्राह्मणेसु ओकास-मत्तम्पि[5] नालत्थं, तं मे इदं समणेन गोतमेन ओकासकम्मं कत'न्ति अत्तमनो पमोदितो उदग्गो पीतिसोमनस्सजातो भगवन्तं पञ्हं पुच्छि—

किं पत्तिनमाहु भिक्खुनं (इति सभियो), सोरतं केन कथं च दन्तमाहु
बुद्धो'ति कथं पवुच्चति, पुट्ठो मे भगवा ब्याकरोहि ॥ ४ ॥

पज्जेन कतेन अत्तना (सभियाति भगवा), परिनिब्बाणगतो वितिण्णकङ्खो
विभवं च भवं च विप्पहाय, वुसितवा खीणपुनब्भवो स भिक्खु ॥५॥

सब्बत्थ उपेक्खको सतीमा, न सो हिंसति किञ्चि सब्बलोके।
तिण्णो समणो अनाविलो, उस्सदा यस्स न सन्ति सोरतो सो ॥६॥

यस्सिन्द्रियानि भावितानि, अज्झत्तं बहिद्धा च सब्बलोके।
निब्बिज्झ इमं परं च लोकं, कालं कङ्खति भावितो स दन्तो ॥७॥

---

१. एत्थ 'भवाहि पञ्हे मे' ति पाठो म०, स्या० पोत्थकेसु दिस्सति।
२-३. तेसन्तकरोमि ते—क०। ४. पुच्छसि—स्या०।
५. ओकासकम्ममत्तम्पि—म०, स्या०।

सभिय—मैं संशय और विचिकित्सा में पड़ कर प्रश्न पूछने की इच्छा से आपके पास आया हूँ। भगवान्! मेरे प्रश्नों का उत्तर धार्मिक रीति से क्रमशः देकर उनका समाधान करें ॥ १ ॥

भगवान्—तुम दूर से प्रश्नों को पूछने की इच्छा से आए हो। तुम्हारे पूछने पर मैं धार्मिक रीति से क्रमशः उनका समाधान करूँगा ॥ २ ॥

सभिय! तुम्हारे मन में जो कुछ भी है, मुझसे प्रश्न पूछो। मैं तेरे उन-उन प्रश्नों का (उत्तर देकर) अन्त करूँगा ॥ ३ ॥

तब सभिय परिव्राजक के मन यह हुआ—"हे आश्चर्य है! हे अद्भुत है! यहाँ तक कि अन्य श्रमण-ब्राह्मणों के पास मुझे समय भी नहीं दिया गया था, उसके लिए श्रमण गौतम ने मुझे समय दे दिया!" ऐसा सोच, प्रसन्न-मन, प्रमुदित, हर्षित, प्रीति और प्रसन्नता से विभोर होकर उसने भगवान् से प्रश्न पूछा—

सभिय—किस प्रकार की प्राप्ति वाले को भिक्षु कहते हैं? शान्त और दान्त किसे कहते हैं? बुद्ध किसे कहते हैं? भगवान्! मेरे इन पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर दें ॥ ४ ॥

भगवान्—जिसने स्वयं अपने द्वारा निर्मित मार्ग पर चलकर, संशय रहित हो परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया है, जिसने जन्म-मृत्यु को त्याग दिया है, जिसने ब्रह्मचर्य पूर्ण कर लिया है और जिसका पुनर्जन्म क्षीण हो गया है, वह भिक्षु है ॥ ५ ॥

जो सब प्रकार से (उपेक्षा करने वाला है, स्मृतिमान् है, सारे लोक में जो किसी की हिंसा नहीं करता, जो (संसार-सागर) पार कर गया है, जो श्रमण और निर्मल है, जिसमें आसक्तियाँ नहीं हैं, वह शान्त है ॥ ६ ॥

जिसकी इन्द्रियाँ भीतर और बाहर सारे लोक में, वश में कर ली गई हैं, जो इस लोक और परलोक को जानकर समय की प्रतीक्षा करता है अर्थात् मृत्यु की राह देखता है, वह संयमी है, वह दान्त है ॥ ७ ॥

कप्पानि विचेय्य केवलानि, संसारदुभयं[1] चुतूपपातं।
विगतरजमनङ्गणं विसुद्धं, पत्तं जातिक्खयं तमाहु बुद्ध'न्ति ॥८॥

अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा अत्तमनो पमोदितो[2] उदग्गो पीतिसोमनस्सजातो भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं पुच्छि—

किं पत्तिनमाहु ब्राह्मणं (इति सभियो), समणं केन कथं च न्हातको'[3]ति।
नागो'ति कथं पवुच्चति, पुट्ठो मे भगवा व्याकरोहि ॥९॥
बाहेत्वा[4]सब्बपापानि[5] (सभियाति भगवा),
विमलो साधुसमाहितो ठितत्तो।
संसारमतिच्च केवली सो, असितो तादि पवुच्चते स ब्रह्मा ॥१०॥
समितावि पहाय पुञ्ञपापं, विरजो ञत्वा इमं परं च लोकं।
जातिमरणं उपातिवत्तो, समणो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥११॥
निन्हाय[6] सब्बपापकानि, अज्झत्तं बहिद्धा च सब्बलोके।
देवमनुस्सेसु कप्पियेसु, कप्पं नेति तमाहु न्हातको'ति ॥१२॥
आगुं न करोति किञ्चि लोके, सब्बसंयोगे[7] विसज्ज बन्धनानि।
सब्बत्थ न सज्जति विमुत्तो, नागो तादि पवुच्चते[8] तथत्ता'ति ॥१३॥

अथ खो सभियो परिब्बाजको……पे०……भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं पुच्छि—किं खेत्तजिनं वदन्ति बुद्धा (इति सभियो), कुसलं केन कथं च पण्डितो'ति। मुनि नाम कथं पवुच्चति, पुट्ठो मे भगवा व्याकरोहि।१४।
खेत्तानि विजेय्य केवलानि (सभियाति भगवा),
दिब्बं मानुसकं च ब्रह्मखेत्तं।
सब्बखेत्तमूलबन्धना पमुत्तो, खेत्तजिनो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥१५॥

---

१. संसारं दुभयं—म०। २. पमुदितो—म०। ३. नहातको—सी०। ४. बहित्वा—म०, स्या०। ५. सब्बपापकानि—म०, स्या०। ६. निनहाय—स्या०। ७. सब्बयोगे—क०। ८. पवुच्चति—सी०।

जिसने सम्पूर्ण तृष्णा का मननकर, संसार की उत्पत्ति और च्युति दोनों को जान लिया है, जो तृष्णा आदि मलों से रहित तथा निर्मल है, विशुद्ध है, जिसने जन्म क्षय को प्राप्त कर लिया है, उसे बुद्ध कहते हैं ॥ ८ ॥

तब सभिय परिव्राजक ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन कर अनुमोदन कर प्रसन्न एवं प्रमुदित, हर्षित, प्रीति और प्रसन्नता प्राप्त हो भगवान् से आगे प्रश्न पूछा—

सभिय—किस प्रकार की प्राप्ति वाले को ब्राह्मण कहते हैं? श्रमण और स्नातक किसे कहते हैं? नाग किसे कहते हैं? भगवान्! मेरे प्रश्न का उत्तर दें ॥ ९ ॥

भगवान्—जो सब पापों को बहाकर निर्मल, साधु, एकाग्रचित्त, स्थितात्मा, संसार-पारंगत, केवली (=ज्ञानी), अनासक्त और स्थिर है, वह ब्राह्मण कहा जाता है ॥ १० ॥

जो पुण्य और पाप को दूर कर शान्त हो गया है, इस लोक और परलोक को जानकर मल रहित हो गया है, जो जन्म और मृत्यु से परे हो गया है, जो स्थिर और स्थितात्मा है, वह श्रमण कहा जाता है ॥ ११ ॥

जिसने सारे लोक में भीतर और बाहर के सब पापों को धो डाला है, और जो आवागमन में पड़े देवताओं और मनुष्यों में फिर जन्म ग्रहण नहीं करता, वह स्नातक कहा जाता है ॥ १२ ॥

जो संसार में किसी प्रकार का पाप नहीं करता, जिसने सब बन्धनों को तोड़ डाला है, जो कहीं आसक्त नहीं होता, जो विमुक्त, स्थिर, स्थितात्मा है, वह नाग कहा जाता है ॥ १३ ॥

तब सभिय परिव्राजक ने···भगवान् से आगे प्रश्न पूछा—

सभिय—बुद्ध किसे क्षेत्रजिन बतलाते हैं? कुशल कौन है? पण्डित कौन है? और मुनि किसे कहते हैं? भगवान्! मेरे पूछे प्रश्न का उत्तर दें ॥ १४ ॥

भगवान्—जो सम्पूर्ण स्वर्गीय, मानवीय और ब्रह्म लोकों को जीत कर सारे लोकों के बन्धन से मुक्त हो गया है, वह स्थिर और स्थितात्मा क्षेत्रजिन कहा जाता है ॥ १५ ॥

कोसानि विजेय्य केवलानि, दिब्बं मानुसकं च ब्रह्मकोसं।
(सब्ब) कोससूलबन्धना पमुत्तो, कुसलो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥१६॥
तदुभयानि विजेय्य पण्डरानि, अज्झत्तं बहिद्धा च सुद्धिपञ्ञो।
कण्हं सुक्कं उपातिवत्तो, पण्डितो तादि पवुच्चते[1] तथत्ता ॥१७॥
असतं च सतं च ञत्वा धम्मं, अज्झत्तं च बहिद्धा च सब्बलोके।
देवमनुस्सेहि पूजितो[2] सो, सङ्गं जालमतिच्च सो मुनी' ति ॥१८॥

अथ खो सभियो परिब्बाजको ... पे० ... भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं पुच्छि—
किं पत्तिनमाहु वेदगुं (इति सभियो), अनुविदितं केन कथं च विरियवा' ति। आजानीयो किन्ति नाम होति, पुट्ठो मे भगवा ब्याकरोहि ॥१९॥
वेदानि विचेय्य केवलानि (सभिया ति भगवा),
समणानं यानिधत्थि[3] ब्राह्मणानं।
सब्बवेदनासु वीतरागो, सब्बं वेदमतिच्च वेदगू सो ॥२०॥
अनुविच्च पपञ्चनामरूपं, अज्झत्तं बहिद्धा च रोगसूलं।
सब्बरोगसूलबन्धना पमुत्तो, अनुविदितो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥२१॥
विरतो इध सब्बपापकेहि, निरयदुक्खमतिच्च विरियवा[4] सो।
सो विरियवा पधानवा, धीरो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥२२॥
यस्सस्सु लुतानि[5] बन्धनानि, अज्झत्तं बहिद्धा च सङ्गमूलं।
(सब्ब) सङ्गमूलबन्धनापमुत्तो,
आजानियो तादि पवुच्चते तथत्ता' ति ॥२३॥

अथ खो सभियो परिब्बाजको ... पे० ... भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं पुच्छि—
किं पत्तिनमाहु सोत्थियं (इति सभियो), अरियं केन कथं च चरणवा' ति। परिब्बाजको किन्ति नाम होति, पुट्ठो मे भगवा ब्याकरोहि ॥२४॥

---

१. दुभयानि—म०। २. पूजनीयो—म०; पूजियो—सी०। ३. यानिपत्थि—सी०, स्या०, रो०। ४. वीरियवा—म०। ५. लुनानि—म०।

जो सम्पूर्ण स्वर्गीय, मानवीय और ब्रह्मलोक के अच्छे-बुरे कर्मों को जीत कर सारे कर्मबन्धनों से मुक्त हो गया है, वह स्थिर और स्थितात्मा कुशल कहा जाता है ॥ १६ ॥

जो शुद्ध-प्रज्ञ भीतर और बाहर के विषयों पर विजय पाकर पुण्य तथा पाप के परे हो गया है, वह स्थिर और स्थितात्मा पण्डित कहा जाता है ॥ १७ ॥

जो सारे संसार में भीतर और बाहर के सत् और असत् बातों को जानकर देव-मनुष्यों से पूजित है और जो आसक्ति रूपी जाल से परे है, वह मुनि कहा जाता है ॥ १८ ॥

तब सभिय परिव्राजक ने भगवान् से आगे प्रश्न पूछा—

सभिय—किस प्रकार की प्राप्ति वाले को वेदज्ञ कहते हैं? अनुविज्ञ कौन है? वीर्यवान् कौन है? आजानीय किसका नाम है? भगवान्! मेरे प्रश्न का उत्तर दें।

भगवान्—जो यहाँ श्रमणों और ब्राह्मणों की सम्पूर्ण अवस्थाओं को जान गया है, जो सब वेदनाओं में रागरहित है, जो सब वेदनाओं से परे है, वह वेदज्ञ है ॥ २० ॥

जो भीतर और बाहर के रोगमूल रूपी नाम-रूप के बन्धन को जान गया है और जो सब रोगों के मूल बन्धन से मुक्त है, वह स्थिर और स्थितात्मा अनुविदित कहा जाता है ॥ २१ ॥

जो सब पापों से विरत है, नरक के दुःख से मुक्त हो गया है, वह वीर्यवान् है। वह स्थिर और स्थितात्मा ही वीर्यवान्, पराक्रमी तथा धीर (= धैर्यवान्) कहा जाता है ॥ २२ ॥

जिसके भीतर और बाहर के सब बन्धन टूट गये हैं, जो सारी तृष्णाओं के मूल बन्धन से मुक्त है, वह स्थिर और स्थितात्मा आजानीय (= उत्तम) कहा जाता है ॥ २३ ॥

तब सभिय परिव्राजक ने भगवान् से आगे प्रश्न पूछा—

सभिय—किस प्रकार की प्राप्ति वाले को श्रोत्रिय कहते हैं? आर्य कौन है? आचारवान् कौन है? परिव्राजक किसका नाम है? भगवान्! मेरे प्रश्न का उत्तर दें ॥ २४ ॥

सुत्वा सब्बधम्मं अभिञ्ञाय लोके (सभिया'ति भगवा),

सावज्जानवज्जं यदत्थि किञ्चि ।

अभिभुं अकथंकथिं विमुत्तं, अनीघं सब्बधिमाहु सोत्थियो'ति ॥२५॥

छेत्वा आसवानि आलयानि, विद्वा सो न उपेति गब्भसेय्यं ।

सञ्ञं तिविधं पनुज्ज पङ्कं, नेति तमाहु अरियो'ति ॥२६॥

यो इध चरणेसु पत्तिपत्तो, कुसलो सब्बदा आजानाति धम्मं ।

सब्बत्थ न सज्जति विमुत्तो[1], पटिघा यस्स न सन्ति चरणो सो ॥२७॥

दुक्खवेपक्कं यदत्थि कम्मं, उद्धं अधो च तिरियं चापि[2] मज्झे ।

परिवज्जयित्वा[3] परिञ्ञचारी, मायं मानमथो'पि लोभकोधं ।

परियन्तमकासि नामरूपं, तं परिब्बाजकमाहु पत्तिपत्त'न्ति ॥२८॥

अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा अत्तमनो पमोदितो उदग्गो पीतिसोमनस्सजातो उट्ठायासना एकंसं उत्तारासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं सम्मुखा सारूप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

यानि च तीणि यानि च सट्ठि, समणप्पवादसितानि[4] भूरिपञ्ञ ।

सञ्ञक्खरसञ्ञनिस्सितानि, ओसरणानि विनेय्य ओघतमगा ॥२९॥

अन्तगू'सि पारगू'सि[5] दुक्खस्स,

अरहा'सि सम्मासम्बुद्धो खीणासवं तं मञ्ञे ।

जुतिमा मुतिमा पहूतपञ्ञो, दुक्खस्सन्तकर अतारयि मं ॥३०॥

यं मे कङ्खितमञ्ञासि, विचिकिच्छं[6] मं अतारेसि[7] नमो ते ।

मुनि मोनपथेसु पत्तिपत्तं, अखिल आदिच्चबन्धु सोरतो'सि ॥३१॥

या मे कङ्खा पुरे आसि, तं मे व्याकासि चक्खुमा ।

अद्धा मुनिसि सम्बुद्धो, नत्थि नीवरणा तव ॥३२॥

---

१. विमुत्तनित्तो—म० । २. वापि—म०, सी० । ३. परिब्बाजयित्वा—सी० ।
४. समणप्पवादनिस्सितानि—स्या० । ५. पारगू—म०, सी० । ६. विचिकिच्छा—म० ।
७. तारयि—म० ।

भगवान्—इस संसार में जो भी सदोष और निर्दोष बातें हैं, उन सबको सुनकर भली प्रकार जान जो विजयी, संशयरहित और विमुक्त हो गया है और जो सब प्रकार के राग से रहित है, उसे श्रोत्रिय कहा जाता है ॥ २५ ॥

जो विज्ञ आश्रवों (= चित्तमलों) के आलयों को समाप्त कर फिर जन्म नहीं ग्रहण करता, जो सारे त्रिविध कामों को त्यागकर फिर काम-भोग में नहीं पड़ता, उसे आर्य कहा जाता है ॥ २६ ॥

जो शीलों का पालन करने वाला है, कुशल है, सदा धर्म को जानने वाला हैं, सर्वत्र अनासक्त है, विमुक्त है और जिसमें द्वेषभाव नहीं हैं, वह आचारवान् है ॥ २७ ॥

जो भूत,[1] भविष्य तथा वर्तमान कालिक कर्म और माया, मान, लोभ तथा क्रोध को दूर कर विचार पूर्वक विचरता है, जिसने नाम-रूप का अन्त कर दिया है, प्राप्तव्य को प्राप्त उसे परिव्राजक कहा जाता है ॥ २८ ॥

तब सभिय परिव्राजक ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर प्रसन्न, प्रमुदित, हर्षित, प्रीति और सौमनस्य प्राप्त हो आसन से उठ उत्तरासंग (=ओढ़ने की चादर) को एक कंधे पर करके जिधर भगवान् थे उधर दोनों हाथों को जोड़ प्रणाम कर भगवान् के सामने समयोचित गाथाओं से स्तुति की ।

सभिय—हे महाप्रज्ञ ! जो श्रमणों के तिरसठ वाद (=मत=दृष्टियाँ) हैं और जो केवल कल्पना आश्रित हैं, आप इन मिथ्या दृष्टियों की बाढ़ को पार कर गए हैं ॥ २९ ॥

आप दुःख का अन्त कर गए हैं, दुःख को पार कर गए हैं, आप अर्हत् हैं, सम्यक् सम्बुद्ध हैं, क्षीणास्रव हैं—ऐसा मैं मानता हूँ । हे ज्योतिष्मान् ! महाप्रज्ञ ! दुःख के अन्त करने वाले ! आपने मेरा उद्धार कर दिया ॥ ३० ॥

जो आपने मुझे संशय में पड़ा जान, संशय से पार कर दिया, उसके लिए आपको नमस्कार है । ज्ञान के पथ पर चल कर निर्वाण प्राप्त, द्वेष रहित, आदित्यबन्धु मुनि आप शान्त हैं ॥ ३१ ॥

चक्षुष्मान् ! पहले मुझमें जो शंकायें थीं, आपने उनका समाधान कर दिया । सम्बुद्ध आप स्वयं मुनि हैं । आप में नीवरण[2] नहीं हैं ॥ ३२ ॥

---

१. यहाँ अट्ठकथा में कहा गया है—"उद्धन्ति अतीतं, अधोति अनागतं तिरियं वापि मज्झेति पच्चुप्पन्नं ।"

२. नीवरण पांच होते हैं—कामच्छन्द, व्यापद, स्त्यानमृद्ध, औधत्य कौकृत्य और विचिकित्सा । इन्हें ज्ञान का आवरण (= ढक्कन) कहा जाता है ।

उपायासा च ते सब्बे, विद्धस्ता विनलीकता।
सीतिभूतो दमप्पत्तो, धितिमा सच्चनिक्कमो ॥३३॥

तस्स ते नागनागस्स, महावीरस्स भासतो।
सब्बे देवानुमोदन्ति, उभो नारदपब्बता ॥३४॥

नमो ते पुरिसाजञ्ञ, नमो ते पुरिसुत्तम।
सदेवकस्मिं लोकस्मिं, नत्थि ते पटिपुग्गलो ॥३५॥

तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुवं माराभिभू[1] मुनि।
तुवं अनुसये छेत्वा, तिण्णो तारेसिमं पजं ॥३६॥

उपधी ते समतिक्कन्ता, आसवा ते पदालिता।
सीहोसि अनुपादानो, पहीनभयभेरवो ॥३७॥

पुण्डरीकं यथा वग्गु, तोये न उपलिप्पति[2]।
एवं पुञ्ञे च पापे च, उभये त्वं न लिम्पसि।
पादे वीर पसारेहि, सभियो वन्दति सत्थुनो ति ॥३८॥

अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं भो गोतम ···पे०··· धम्मं च भिक्खुसंघञ्च, लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं'न्ति। "यो खो, सभिय, अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खति पब्बज्जं, आकङ्खति उपसम्पदं, सो चत्तारो मासे परिवसति; चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति, उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय; अपि च मेत्थ पुग्गलवेमत्तता विदिता" ति। "सचे, भन्ते, अञ्ञतित्थियपुब्बा इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खन्ता पब्बज्जं, आकङ्खन्ता उपसम्पदं चत्तारो मासे परिवसन्ति, चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति, उपसम्पादेन्ति

---

१. मायाभिभू—स्या०। २. उपलिम्पति—म०।

आपकी सब परेशानियाँ नष्ट और विनष्ट हैं। आप शान्त हैं, दान्त हैं, धृतिमान् हैं और सत्यवादी हैं ॥ ३३ ॥

श्रेष्ठों में श्रेष्ठ महावीर ! दोनों नारद और पर्वत[1] तथा अन्य सब देवता आपके भाषण का अनुमोदन करते हैं ॥ ३४ ॥

हे श्रेष्ठ पुरुष ! आपको मेरा नमस्कार है, हे उत्तम पुरुष ! आपको मेरा नमस्कार है, देवता और मनुष्य सहित सारे संसार में आपके समान कोई नहीं है ॥ ३५ ॥

आप बुद्ध हैं, आप शास्ता हैं, आप मार विजयी मुनि हैं ! आपने समूल वासनाओं को नष्ट कर भवसागर को पार कर लिया है और इस प्रजा को भी पार लगाया है ॥ ३६ ॥

आपने वासना-बन्धनों को पार किया है, वासनाओं को नष्ट किया है, आप अनासक्त भय और भयानकता से रहित सिंह हैं ॥ ३७ ॥

जैसे सुन्दर कमल-पुष्प जल में लिप्त नहीं होता, वैसे ही आप पुण्य और पाप दोनों में लिप्त नहीं होते। हे वीर ! पैरों को फैलायें, सभिय शास्ता की वन्दना कर रहा है ॥ ३८ ॥

तब सभिय परिव्राजक ने भगवान् के पैरों पर सिर से गिर कर भगवान् से यह कहा—"आश्चर्य है हे गौतम !......धर्म और भिक्षु संघ की भी। भन्ते ! भगवान् के पास मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।"

भगवान्—सभिय ! जो कोई पहले का अन्यतीर्थक (=दूसरे धर्म का साधु) इस धर्म-विनय मे प्रव्रज्या लेना चाहता है, उपसम्पन्न होना चाहता है, तो उसे चार मास परिवास[2] करना पड़ता है। चार मासों के बीतने पर प्रसन्न मन भिक्षु उसे भिक्षु होने के लिए प्रव्रजित करते हैं, उपसम्पन्न करते हैं। फिर भी मुझे यहाँ व्यक्ति की विभिन्नता ज्ञात है।"

---

१. यह दो देवता गणों का नाम हैं—अट्ठकथा।

२. परीक्षार्थ नियम।

भिक्खुभावाय, अहं चत्तारि वस्सानि परिवसिस्सामि, चतुन्नं वस्सानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्तु उपसम्पादेन्तु भिक्खुभावाया"ति।

अलत्थ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं...पे०...अञ्ञतरो खो पनायस्मा सभियो अरहतं अहोसी'ति।

सभियसुत्तं निट्ठितं।

७—सेल-सुत्तं (३,७)

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा अंगुत्तरापेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि येन आपणं नाम अङ्गुत्तरापानं निगमो तदवसरि। अस्सोसि खो केणियो जटिलो—"समणो खलु भो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि आपणं अनुप्पत्तो; तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुगतो—इति'पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवाति; सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति; सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सत्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति; साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती"ति। अथ खो केणियो जटिलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो केणियं जटिलं भगवा धम्मिया कथाय संदस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। अथ खो

सभिय—यदि भन्ते ! पहले के अन्यतीर्थकों को इस धर्म-विनय में प्रव्रज्या चाहने पर, उपसम्पदा चाहने पर चार मास परिवास करना पड़ता है, चार मासों के बीतने पर प्रसन्न मन भिक्षु उसे भिक्षु होने के लिए प्रव्रजित करते हैं, उपसम्पन्न करते हैं, तो मैं चार वर्षों तक परिवास करूँगा, चार वर्षों के बीतने पर प्रसन्न चित्त भिक्षु मुझे भिक्षु होने के लिए प्रव्रजित करें, उपसम्पन्न करें।"

सभिय परिव्राजक ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई।.... आयुष्मान् सभिय अर्हन्तों में से एक अर्हत् हो गए।

सभियसुत्त समाप्त।

७. सेलसुत्त (३,७)

[तीन सौ शिष्यों सहित शैल की प्रव्रज्या।]

ऐसा मैंने सुना एक समय भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ, अंगुत्तराप (जनपद) में चारिका करते हुये, जहाँपर आपण नामक अंगुत्तरापों का निगम (=कस्बा) था, वहाँ पहुँचे।

केणिय जटिलने सुना—"शाक्य-कुलसे प्रव्रजित, शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम साढ़े बाहर सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ, अंगुत्तरापमें चारिका करते हुए, आपण में आये हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याण कीर्ति-शब्द फैला हुआ है। वह भगवान् ऐसे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध, विद्याचरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद् अनुपम पुरुषदम्य सारथी, देवमनुष्यों के शास्ता हैं। वह इस लोक में देव-मार ब्रह्मा-श्रमण-ब्राह्मण सहित देव-मनुष्यों की प्रजा को स्वयं ज्ञान से साक्षात्कार करके उपदेश देते हैं, वह आरम्भ, मध्य और अन्त सभी अवस्थाओं में कल्याणकर धर्म का उसके शब्दों और भाव सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार के अर्हतों का दर्शन उत्तम होता है।"

तब केणिय जटिल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान् के साथ संमोदन कर, (कुशल-प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ केणिय जटिल को भगवान् ने धर्म के उपदेश द्वारा संदर्शन, समादपन, समुत्तेजन, संप्रशंसन किया। भगवान् के धर्म-उपदेश-द्वारा संदर्शित... हो, केणिय जटिलने भगवान् से कहा—

"आप गौतम भिक्षु-संघ-सहित कल का मेरा भोजन स्वीकार करें।"

केणियो जटिलो भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो भगवन्तं एतदवोच—"अधिवासेतु मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना"ति। एवं वुत्ते भगवा केणियं जटिलं एतदवोच—"महा खो, केणिय, भिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि, त्वं च खो ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो"ति। दुतियम्पि खो केणियो जटिलो भगवन्तं एतदवोच—"किञ्चापि, भो गोतम, महाभिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि, अहञ्च ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो, अधिवासेतु मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना"ति। दुतियम्पि खो भगवा केणियं जटिलं एतदवोच—"महा खो, केणिय, भिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि, त्वं च खो ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो"ति। ततियम्पि खो केणियो जटिलो भगवन्तं एतदवोच—"किञ्चापि, भो गोतम, महाभिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि, अहं च खो ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो, अधिवासेत्वेव मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना"ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो केणियो जटिलो भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना येन सको अस्समो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा मित्तामच्चे ञातिसालोहिते आमन्तेसि—"सुणन्तु मे भोन्तो मित्तामच्चा ञातिसालोहिता, समणो मे गोतमो निमन्तितो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेन, येन मे कायवेय्यावटिकं करेय्याथा"ति। "एवं भो"ति खो केणियस्स जटिलस्स मित्तामच्चा ञातिसालोहिता केणियस्स जटिलस्स पटिस्सुत्वा अप्पेकच्चे उद्धनानि खणन्ति, अप्पेकच्चे कट्ठानि फालेन्ति, अप्पेकच्चे भाजनानि धोवन्ति, अप्पेकच्चे उदकमणिकं पतिट्ठापेन्ति, अप्पेकच्चे आसनानि पञ्ञापेन्ति; केणियो पन जटिलो सामं येव मण्डलमालं पटियादेति। तेन खो पन समयेन सेलो ब्राह्मणो आपणे पटिवसति, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डु केटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं पदको वेय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो तीणि माणवकसतानि मन्ते वाचेति। तेन खो पन समयेन केणियो जटिलो सेले

५. पारायण-वग्ग

ऐसा कहने पर भगवान् ने केणिय जटिल से कहा—

"केणिय ! भिक्षु-संघ बड़ा है, साढ़े बारह सौ भिक्षु हैं और तुम ब्राह्मणों में प्रसन्न (=श्रद्धालु) हो।"

दूसरी बार भी केणिय जटिल ने भगवान् से कहा—

"क्या हुआ, हे गौतम ! जो बड़ा भिक्षु-संघ है, साढ़े बारह सौ भिक्षु हैं, और मैं ब्राह्मणों में प्रसन्न हूँ ? आप गौतम भिक्षु-संघ-सहित कल का मेरा भोजन स्वीकार करें।"

दूसरी बार भी भगवान् ने केणिय जटिल से यही कहा····।

भगवान् ने मौन रह स्वीकार किया।

तब केणिय जटिल भगवान् की स्वीकृति को जान, आसन से उठ, जहाँ उसका आश्रम था, वहाँ गया। जाकर मित्र-अमात्य, जाति-बिरादरीवालों से बोला—

"आप सब मेरे मित्र-अमात्य, जाति-बिरादरी सुनें—मैंने भिक्षु-संघ-सहित श्रमण गौतम-को कल के भोजन के लिये निमंत्रित किया है, सो आप लोग शरीर से सेवा करें।"

"अच्छा, हे !" केणिय जटिल से, ····मित्र-अमात्य, जाति-बिरादरी ने कहा। (उनमें से) कोई चूल्हा खोदने लगे, कोई लकड़ी फाड़ने लगे, कोई बर्तन धोने लगे, कोई पानी के मटके (=मणिक) रखने लगे, कोई आसन बिछाने लगे। केणिय जटिल स्वयं पट-मंडप (=मंडल माल) तैयार करने लगा।

उस समय निघण्टु, कल्प (=केटुभ)—अक्षर-प्रभेद सहित तीनों वेदों तथा पाँचवें इतिहास में पारङ्गत, पदक (=कवि), वैयाकरण, लोकायत (शास्त्र) तथा महापुरुष-लक्षण (=सामुद्रिक-शास्त्र) में निपुण (=अनवय) शैल नामक ब्राह्मण आपण में, वास करता था; और तीन सौ विद्यार्थियों (=माणवक) को मंत्र (=वेद) पढ़ाता था। उस समय शैल ब्राह्मण केणिय जटिल में अत्यन्त प्रसन्न (=श्रद्धावान्) था।····। तब (वह) तीन सौ माणवकों के साथ जंघा-विहार (=चहल-कदमी) के लिये टहलता हुआ, जहाँ केणिय जटिल का आश्रम था, वहाँ गया। शैल ब्राह्मण ने देखा कि केणिय जटिल के जटिलों (=जटाधारी, वाणप्रस्थी शिष्यों) में, कोई चूल्हा खोद रहे हैं····, तथा केणिय जटिल स्वयं मंडल-माल तय्यार कर (रहा है)। देखकर (उसने) केणिय जटिल से कहा—

ब्राह्मणे अभिप्पसन्नो होति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो तीहि माणवकसतेहि परिवुतो जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अनुविचरमानो येन केणियस्स जटिलस्स अस्समो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो केणियस्स जटिलस्स अस्समे अप्पेकच्चे उद्धनानि खणन्ते पे०.... अप्पेकच्चे आसनानि पञ्ञापेन्ते, केणियं पन जटिलं सामं येव मण्डलमालं पटियादेन्तं; दिस्वान केणियं जटिलं एतदवोच—'किन्नु भोतो केणियस्स आवाहो वा भविस्सति, विवाहो वा भविस्सति, महायञ्ञो वा पच्चुपट्ठितो, राजा वा मागधो सेनियो बिम्बिसारो निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं बलकायेना"ति? "न मे, सेल, आवाहो भविस्सति, नपि विवाहो भविस्सति, नपि राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं बलकायेन, अपि च खो मे महायञ्ञो पच्चुपट्ठितो अत्थि। समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि आपणं अनुप्पत्तो। तं खो पन भवन्तं गोमतं...पे०... बुद्धो भगवाति। सो मे निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेना"ति। "बुद्धो'ति खो, केणिय, वदेसि"? "बुद्धो'ति, भो सेल, वदामि"। "बुद्धो'ति, भो केणिय, वदेसि?" "बुद्धोति, भो सेल, वदामी"ति। अथ खो सेलस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—"घोसो'-पि खो एसो दुल्लभो लोकस्मिं यदिदं बुद्धो'ति। आगतानि खो पन अम्हाकं मन्तेसु द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्स द्वेवगतियो भवन्ति अनञ्ञा। सचे अगारं अज्झावसति राजा होति चक्कवत्ति धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। तस्सिमानि सत्त रतनानि भवन्ति, सेय्यथीदं—चक्करतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं, मणिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरतनं, परिणायकरतनमेव सत्तमं। परोसहस्सं खो पनस्स पुत्ता भवन्ति सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना। सो इमं पठविं

"क्या आप केणिय के यहाँ आवाह होगा, विवाह होगा, या महा-यज्ञ आ पहुँचा है ? क्या बलकाय (=सेना) सहित मगध-राज श्रेणिक बिम्बिसार, कलके भोजन के लिये निमंत्रण किया गया है ?"

"नहीं, शैल ! न मेरे यहाँ आवाह होगा, न विवाह होगा, और न बल-काय सहित मगध-राज श्रेणिक बिम्बिसार कलके भोजन के लिए निमन्त्रित है, बल्कि मेरे यहाँ महायज्ञ है। शाक्य-कुल से प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के महाभिक्षु-संघ के साथ अंगुत्तराप में चारिका करते, आपण में आये हैं। उन भगवान् गौतम का ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—वे भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध, विद्या-आचरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, अनुत्तर (=अनुप) पुरुषों के चाबुक-सवार, देव-मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध भगवान् हैं। वे भिक्षु-संघ-सहित कल मेरे यहाँ निमंत्रित हुए हैं···।"

"हे केणिय ! (क्या) 'बुद्ध' कह रहे हो ?"

"हे शैल ! (हाँ) 'बुद्ध' कह रहा हूँ।"

"· बुद्ध कह रहे हो ?"

"· बुद्ध कह रहा हूँ।"

" बुद्ध कह रहे हो? "

"बुद्ध कह रहा हूँ।"

तब शैल ब्राह्मण को हुआ—'बुद्ध' ऐसा घोष (=आवाज) भी लोक में दुर्लभ है। हमारे मंत्रों में महापुरुषों के बत्तीस लक्षण आए हुए हैं, जिनसे युक्त महापुरुष की दो ही गतियाँ होती हैं, अन्य नहीं। यदि वह घर में वास करता है, तो चारों छोर तक का राज्य वाला, धार्मिक धर्म-राजा चक्रवर्ती···राजा (होता) है···। वह सागर-पर्यन्त इस पृथ्वी को बिना दण्ड-शस्त्र से, धर्म से विजय कर शासन करता है, सात रत्नों से युक्त हो। उसके ये सात रत्न हैं, जैसे कि—चक्ररत्न, हस्तिरत्न, अश्वरत्न, मणिरत्न, स्त्री-रत्न, गृहपतिरत्न, सातवाँ परिणायक-रत्न। हजार से अधिक शूर, वीरांग और परसेना को मर्दन करने वाले उसके पुत्र होते हैं। वह इस पृथ्वी पर सागर तक बिना दण्ड तथा शस्त्र के धर्म से जीत कर निवास करता है

सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजय अज्झावसति। सचे खो पनागारस्मा अनगारियं पब्बजति अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके विवत्तच्छदो। कहं पन, भो केणिय, एतरहि सो भवं गोतमो विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो"ति? एवं वुत्ते केणियो जटिलो दक्खिणं बाहं पग्गहेत्वा सेलं ब्राह्मणं एतदवोच—"येन सा, भो सेल, नील-वनराजी"ति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो ते माणवके आमन्तेसि—"अप्पसद्दा भोन्तो आगच्छन्तु पदे पदं निक्खिपन्ता, दुरासदा हि ते भगवन्तो सीहा'व एकचरा; यदा चाहं भो समणेन गोतमेन सद्धिं मन्तेय्यं मा मे भोन्तो अन्तरन्तरा कथं ओपातेथ, कथापरियोसानं मे भवन्तो आगमेन्तू"ति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुप-सङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि सम्मन्नेसि[1]। अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि येभुय्येन ठपेत्वा द्वे; द्वीसु महापुरिसलक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुय्हे पहूतजिव्हताय च। अथ खो भगवतो एतदहोसि—पस्सति खो मे अयं सेलो ब्राह्मणो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि येभुय्येन ठपेत्वा द्वे; द्वीसु महापुरिस-लक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुय्हे पहूतजिव्हताय चा"ति। अथ खो भगवा तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं अभिसङ्खासि यथा अद्दस सेलो ब्राह्मणो भगवतो कोसोहितं वत्थगुय्हं। अथ खो भगवा जिव्हं निन्नामेत्वा उभोपि कण्णसोतानि अनुमसि पटिमसि, उभोपि नासिकसोतानि अनुमसि पटिमसि, केवलम्पि नलाटमण्डलं जिव्हाय छादेसि। अथ खो सेलस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—"समन्नागतो खो समणो गोतमो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि परिपुण्णेहि, नो अपरिपुण्णेहि; नो च

---

१. समन्नेसि—म०।

और यदि घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित होता है; (वो) लोक में आच्छादन-रहित अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध होता है—"हे केणिय ! तो फिर कहाँ वह आप गौतम अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध,इस समय विहार करते हैं ?"

ऐसा कहने पर केणिय जटिल ने दाहिनी बाँह उठा कर, शैल ब्राह्मण से यह कहा--

"हे शैल ! जहाँ वह नील वन-पाँती है।"

तब शैल तीन सौ माणवकों के साथ जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। तब शैल ब्राह्मण ने उन माणवकों से कहा--

"आप लोग निःशब्द (=अल्प-शब्द) हों, पैर के बाद पैर रखते आवें। सिंहों की भाँति वे भगवान् अकेले विचरने वाले, (और) दुर्लभ होते हैं और जब मैं श्रमण गौतम के साथ संवाद करूँ, तो आप लोग मेरे बीच में बात न उठावें। आप लोग मेरे (कथन) की समाप्ति तक चुप रहें।

तब शैल ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान् के साथ सम्मोदनकर···(=कुशल प्रश्न पूछ)···एक ओर एक बैठ गया। एक ओर बैठ शैल ब्राह्मण भगवान् के शरीर में महापुरुषों के बत्तीस लक्षण खोजने लगा। शैल ब्राह्मण ने बत्तीस महापुरुष-लक्षणों में से दो को छोड़ अधिकांश भगवान् के शरीर में देख लिए। दो महापुरुष-लक्षणों—झिल्ली से ढँकी पुरुष-गुह्येन्द्रिय, और अति-दीर्घ-जिह्वा—के बारे में····सन्देह था····। तब भगवान् ने इस प्रकार का योग-बल प्रकट किया, जिससे कि शैल ब्राह्मण ने भगवान् के कोष-आच्छादित वस्ति-गुह्य को देखा। फिर भगवान् ने जीभ निकाल कर (उससे) दोनों कानों के श्रोतों को छुआ····, दोनों नाक के श्रोतों को छुआ····, सारे ललाट-मण्डल को जीभ से ढांक दिया। तब शैल ब्राह्मण को ऐसा (विचार) हुआ—श्रमण गौतम अ-परिपूर्ण नहीं, परिपूर्ण बत्तीस महापुरुष-लक्षणों से युक्त हैं। लेकिन नहीं

खो नं जानामि बुद्धो वा नो वा। सुतं खो पन मे'तं ब्राह्मणानं बुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—ये ते भवन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा ते सके वण्णे भञ्जमाणे अत्तानं पातुकरोन्ती'ति; यन्नूनाहं समणं गोतमं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवेय्य''न्ति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि —

"परिपुण्णकायो सुरुचि, सुजातो चारुदस्सनो।
सुवण्णवण्णो'सि भगवा सुसुक्कदाठो'सि विरियवा ॥ १ ॥
नरस्स हि सुजातस्स, ये भवन्ति वियञ्जना।
सब्बे ते तव कायस्मिं, महापुरिसलक्खणा ॥ २ ॥
पसन्ननेत्तो सुमुखो, ब्रहा उजु पतापवा।
मज्झे समणसङ्घस्स, आदिच्चो'व विरोचसि[1] ॥ ३ ॥
कल्याणदस्सनो भिक्खु, कञ्चनसन्निभत्तचो।
किं ते समणभावेन, एवं उत्तमवण्णिनो ॥ ४ ॥
राजा अरहसि भवितुं, चक्कवत्ती रथेसभो।
चातुरन्तो विजितावी, जम्बुसण्डस्स[2] इस्सरो ॥ ५ ॥
खत्तिया भोजराजानो[3], अनुयुत्ता[4] भवन्ति ते।
राजाभिराजा मनुजिन्दो, रज्जं कारेहि गोतम'' ॥ ६ ॥
"राजाहमस्मि सेला (ति भगवा), धम्मराजा अनुत्तरो।
धम्मेन चक्कं वत्तेमि, चक्कं अप्पतिवत्तियं'' ॥ ७ ॥
"सम्बुद्धो पटिजानासि (इति सेलो ब्राह्मणो), धम्मराजा अनुत्तरो।
धम्मेन चक्कं वत्तेसि, इति भाससि गोतम ॥ ८ ॥
को नु सेनापति भोतो, सावको सत्थुरन्वयो।
को ते इमं अनुवत्तेति, धम्मचक्कं पवत्तितं'' ॥ ९ ॥
"मया पवत्तितं चक्कं (सेलाति भगवा), धम्मचक्कं अनुत्तरं।
सारिपुत्तो अनुवत्तेति, अनुजातो तथागतं ॥ १० ॥

---

१ विरोचति—सी०। २. जम्बुमण्डस्स—क०।
३. भोगिराजानो—म०। ४. अनुयन्ता—म०।

जानता कि बुद्ध हैं, या नहीं। वृद्ध=महल्लक ब्राह्मणों आचार्य-प्राचार्यों को कहते सुना है—कि जो अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध होते हैं, वे अपने गुण कहे जाने पर अपने को प्रकाशित करते हैं। क्यों न मैं श्रमण गौतम के सम्मुख उपयुक्त गाथाओं से स्तुति करूँ। तब शैल ब्राह्मण भगवान् के सामने उपयुक्त गाथाओं से स्तुति करने लगा—

"परिपूर्ण-काया सुन्दर रुचि (=कांति) वाले, सुजान, चारु-दर्शन,
सुवर्णवर्ण हो भगवान्! सु-शुक्ल-दाँत हो, (और) वीर्यवान् ॥१॥
सुजात (=सुन्दर जन्मवाले) पुरुष के जो व्यंजन (=लक्षण) होते हैं,
वे सभी महापुरुष-लक्षण तुम्हारी काया में (हैं) ॥२॥

प्रसन्न (निर्मल)–नेत्र, सुमुख, बड़े सीधे, प्रताप-वान्,
(आप) श्रमण-संघ के बीच में आदित्य की भाँति विराजते हो ॥३॥
कल्याण-दर्शन, हे भिक्षु! कंचन-समान शरीरवाले।

ऐसे उत्तम वर्णवाले तुम्हें श्रमण-भाव (=भिक्षु होने) में क्या (रखा) है? ॥४॥

तुम तो चारों छोर के राज्य वाले, जम्बूद्वीप के स्वामी।
रथर्षभ, चक्रवर्ती, राजा हो सकते हो ॥५॥

क्षत्रिय भोज-राजा (=माण्डलिक-राजा) तुम्हारे अनुयायी होंगे।
हे गौतम! राजाधिराज मनुजेन्द्र हो राज्य करो ॥६॥

(भगवान्—) "शैल! मैं राजा हूँ; अनुपम धर्मराजा।
मैं न पलटनेवाला...चक्र धर्म के साथ चला रहा हूँ ॥७॥

(शैलब्राह्मण—) "अनुपम धर्म-राजा सम्बुद्ध (अपने को) कहते हो?
हे गौतम! 'धर्म से चक्र चला रहा हूँ' कह रहे हो ॥८॥

कौन सा आप शास्ताका दन्तप (=नाग) श्रावक सेनापति है?
कौन इसे चलाये धर्म-चक्र को अनु-चालन कर रहा है? ॥९॥

(भगवान्—"शैल!) मेरे द्वारा संचालित चक्र, अनुपम धर्म-चक्र को।
तथागत का अनुजात (=पीछे उत्पन्न) सारिपुत्र अनुचालित कर रहा है ॥१०॥

अभिञ्ञेय्यं अभिञ्ञातं भावेतब्बं च भावितं।
पहातब्बं पहीनं मे, तस्मा बुद्धो'स्मि ब्राह्मण ॥ ११ ॥
विनयस्सु मयि कङ्खं, अधिमुच्चस्सु ब्राह्मण।
दुल्लभं दस्सनं होति, सम्बुद्धानं अभिण्हसो ॥ १२ ॥
येसं[1] वे[2] दुल्लभो लोके, पातुभावो अभिण्हसो।
सोहं ब्राह्मण सम्बुद्धो, सल्लकत्तो अनुत्तरो ॥ १३ ॥
ब्रह्मभूतो अतितुलो, मारसेनप्पमद्दनो।
सब्बामित्ते वसी कत्वा, मोदामि अकुतोभयो" ॥ १४ ॥
"इमं भोन्तो निसामेथ, यथा भासति चक्खुमा।
सल्लकत्तो महावीरो, सीहो'व नदति वने ॥१५॥
ब्रह्मभूतं अतितुलं, मारसेनप्पमद्दनं।
को दिस्वा नप्पसीदेय्य, अपि कण्हाभिजातिको ॥१६॥
यो मं इच्छति अन्वेतु, यो वा निच्छति गच्छतु।
इधाहं पब्बजिस्सामि, वरपञ्ञस्स सन्तिके" ॥१७॥
"एतं[3] चे[4] रुच्चति भोतो, सम्मासम्बुद्धसासनं[5]।
मयम्पि पब्बजिस्साम, वरपञ्ञस्स सन्तिके" ॥१८॥
"ब्राह्मणा तिसता इमे, याचन्ति पञ्जलीकता।
ब्रह्मचरियं चरिस्साम, भगवा तव सन्तिके" ॥१९॥
"स्वाक्खातं ब्रह्मचरियं (सेलाति भगवा), संदिट्ठिकमकालिकं।
यत्थ अमोघा पब्बज्जा, अप्पमत्तस्स सिक्खतो"ति ॥२०॥

अलत्थ खो सेलो ब्राह्मणो सपरिसो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अथ खो केणियो जटिलो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके अस्समे पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि—"कालो, भो गोतम, निट्ठितं भत्त"न्ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन केणियस्स जटिलस्स अस्समो तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि सद्धिं

१. यस्स—स्या०। २. वो—रो०।
३-४. एवञ्चे—म०। ५. सम्मासम्बुद्धसासने—म०।

ज्ञातव्य को जान लिया, भावनीय की भावना कर ली।
परित्याज्य को छोड़ दिया, अतः हे ब्राह्मण ! मैं बुद्ध हूँ ॥११॥
ब्राह्मण ! मेरे विषय में संशय को हटाओ, छोड़ो।
वार-वार सम्बुद्धों का दर्शन दुर्लभ है ॥ १२ ॥
लोक में जिसका बार बार प्रादुर्भाव दुर्लभ है,
वह मैं (राग आदि) शल्य का छेदनेवाला अनुपम सम्बुद्ध हूँ ॥ १३ ॥
ब्रह्म-भूत तुलना-रहित, मार की सेना का प्रमर्दक,
सभी शत्रुओं को वश में करके निर्भय होकर प्रमुदित हूँ ॥ १४ ॥

आप सब सुनें, जैसा कि चक्षुष्मान् कर रहे हैं शल्य-कर्ता, महावीर जैसे कि वन में सिंह गर्जन कर रहा हो ॥१५॥

ब्रह्मभूत, तुलना-रहित, मार की सेना को मर्दन करने वाले को देखकर कौन नहीं प्रसन्न होगा, चाहे वह कृष्ण [1] अभिजातिक क्यों न हो ? ॥१६॥

(शैल—) "जो मुझे चाहता है, (वह मेरे) पीछे आवे, जो नहीं चाहता है, वह जावे।
(मैं) यहाँ उत्तम-प्रज्ञावाले (बुद्ध) के पास प्रव्रजित होऊँगा ॥ १७ ॥"

(शैल के शिष्य—) "यदि आपको यह सम्यक्-सम्बुद्ध का शासन (=धर्म) रुचता है।
(तो) हम भी वर-प्रज्ञ के पास प्रव्रजित होंगे ॥ १८ ॥
ये तीन सौ ब्राह्मण हाथ-जोड़े याचना करते हैं।
भगवान् ! हमलोग भी तुम्हारे पास ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे ॥ १९ ॥
(भगवान्—"शैल !) (यह) [2]सांदृष्टिक [3]अकालिक [4]स्वाख्यात ब्रह्मचर्य है।
जहाँ प्रमाद-शून्य सीखने वाले की प्रव्रज्या अ-मोघ है ॥ २० ॥"

शैल ब्राह्मण ने परिषद्-सहित भगवान् के पास प्रव्रज्या और उपसम्पदा पाई।

तब केणिय जटिल ने उस रात के बीतने पर, अपने आश्रम में उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान् को काल की सूचना दिलवाई···। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहन कर पात्र-चीवर ले, जहाँ केणिय जटिल का आश्रम था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर भिक्षु-संघ के साथ बैठे। तब केणिय जटिल ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अपने हाथ से, संतर्पित किया, पूर्ण किया। केणिय जटिल भगवान् के भोजन कर, पात्र से हाथ हटा लेने पर एक नीचा आसन ले,

---

१. दुर्गुणों से भरा। २. प्रत्यक्ष फल-प्रद। ३. न कालान्तर में फल-प्रद। ४. सुन्दर प्रकार से व्याख्यान किया गया।

भिक्खुसङ्घेन । अथ खो केणियो जटिलो बुद्धपमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि संपवारेसि। अथ खो केणियो जटिलो भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नं खो केणियं जटिलं भगवा इमाहि गाथाहि अनुमोदि—

"अग्गिहुत्तमुखा यञ्ञा, सावित्ती छन्दसो मुखं ।
राजा मुखं मनुस्सानं, नदीनं सागरो मुखं ॥२१॥
नक्खत्तानं मुखं चन्दो, आदिच्चो तपतं मुखं ।
पुञ्ञं आकङ्खमानानं, सङ्घो वे यजतं मुख"न्ति ॥२२॥

अथ खो भगवा केणियं जटिलं इमाहि गाथाहि अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि । अथ खो आयस्मा सेलो सपरिसो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो न चिरस्सेव यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि; 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया'ति अब्भञ्ञासि । अञ्ञतरो च खो पनायस्मा सेलो सपरिसो अरहतं अहोसि । अथ खो आयस्मा सेलो सपरिसो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"यं तं सरणमागम्म[1], इतो अट्ठमि चक्खुम ।
सत्तरत्तेन भगवा, दन्तम्ह तव सासने ॥ २३ ॥
तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुवं माराभिभू मुनि ।
तुवं अनुसये छेत्वा, तिण्णो तारेसिमं पजं ॥ २४ ॥
उपधी ते समतिक्कन्ता, आसवा ते पदालिता ।
सीहोसि अनुपादानो, पहीनभयभेरवो ॥ २५ ॥
भिक्खवो तिसता इमे, तिट्ठन्ति पञ्जलीकता ।
पादे वीर पसारेहि नागा, वन्दन्तु सत्थुनो"ति ॥ २६ ॥

सेलसुत्तं निट्ठितं ।

१. सरणमागम्ह—म० ।

संक्षेप और संकेत

म० = वर्मी संस्करण

स्या० = स्यामी संस्करण

रो० = रोमन संस्करण

क० = कम्बोडियन संस्करण

सि० = सिंहली संस्करण

एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये केणिय जटिल को भगवान् ने इन गाथाओं से (दान —) अनुमोदन किया—

"यज्ञों में मुख अग्नि-होत्र है, छन्दों में मुख (=मुख्य) [1]सावित्री है।

मनुष्यों में मुख राजा है, नदियों में मुख सागर है॥ २१॥

नक्षत्रों में मुख चन्द्रमा है, तपने वालों में मुख आदित्य है।

इच्छितों में (मुख) पुण्य (है), यजन (=पूजा) करने में मुख संघ है॥ २२॥

भगवान् केणिय जटिल को इन गाथाओं से अनुमोदित कर आसन से उठकर चल दिये।

तब आयुष्मान् शैल परिषद्-सहित एकान्त में प्रमाद-रहित, उद्योग-युक्त, आत्म-निग्रही हो विहरते अचिर में ही, जिसके लिये कुल-पुत्र घर से बेघर हो प्रव्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्य के अन्त (=निर्वाण) को, इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर, विहरने लगे। 'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया, करणीय कर लिया गया, और यहाँ कुछ करना शेष नहीं'—यह जान गये। परिषद्-सहित आयुष्मान् शैल अर्हत् हुये।

तब आयुष्मान् शैलने शास्ता (=बुद्ध) के पास जाकर, चीवर को (दक्षिण कंधा नंगा रख) एक कंधे पर (रख), जिधर भगवान् थे, उधर अञ्जलि जोड़, भगवान् से गाथाओं में कहा—

"हे चक्षुष्मान्! जो मैं आज से आठ दिन पूर्व तुम्हारी शरण आया।

हे भगवान्! तुम्हारे शासन में सातही रात में मैं दान्त हो गया॥ २३॥

तुम्हीं बुद्ध हो, तुम्हीं शास्ता हो, तुम्हीं मार-विजयी मुनि हो।

तुम (राग आदि) अनुशयों को छिन्न कर, (स्वयं) उत्तीर्ण हो, इस प्रजा को तारते हो॥ २४॥

उपधि तुम्हारी हट गई, आस्रव तुम्हारे विदारित हो गये।

सिंह-समान, भव (—सागर) की भीषणता से रहित, तुम [2]उपादान-रहित हो॥ २५॥

ये तीन सौ भिक्षु हाथ जोड़े खड़े हैं।

हे वीर! पाद प्रसारित करो, (ये) नाग (=पाप-रहित) शास्ता की वन्दना करें॥ २६॥"

सेलसुत्त समाप्त।

---

१. सावित्री गायत्री। २. परि-ग्रह।

८—सल्ल-सुत्तं (३, ८)

अनिमित्तमनञ्ञातं, मच्चानं इध जीवितं ।
कसिरं च परित्तं च, तं च दुक्खेन सञ्ञुतं ॥ १ ॥

न हि सो उपक्कमो अत्थि, येन जाता न मिय्यरे[1] ।
जरम्पि पत्वा मरणं, एवं धम्मा हि पाणिनो ॥ २ ॥

फलानमिव पक्कानं, पातो पतनतो[2] भयं ।
एवं जातानं मच्चानं, निच्चं मरणतो भयं ॥ ३ ॥

यथा'पि कुम्भकारस्स, कता मत्तिकभाजना ।
सब्बे भेदनपरियन्ता[3], एवं मच्चान जीवितं ॥ ४ ॥

दहरा च महन्ता च, ये बाला ये च पण्डिता ।
सब्बे मच्चुवसं यन्ति, सब्बे मच्चुपरायणा ॥ ५ ॥
तेसं मच्चुपरेतानं, गच्छतं परलोकतो ।
न पिता तायते पुत्तं, ञाति वा पन ञातके ॥ ६ ॥

पेक्खतं येव ञातीनं पस्स लालपतं पुथु ।
एकमेको व मच्चानं, गोवज्झो विय निय्यति[4] ॥ ७ ॥
एवमब्भाहतो लोको, मच्चुना च जराय च ।
तस्मा धीरा न सोचन्ति, विदित्वा लोकपरियायं ॥ ८ ॥
यस्स मग्गं न जानासि, आगतस्स गतस्स वा ।
उभो अन्ते असम्पस्सं, निरत्थं परिदेवसि ॥ ९ ॥
परिदेवयमानो चे, किञ्चिदत्थं उदब्बहे ।
सम्मूळ्हो हिंसमत्तानं, कयिरा चेनं विचक्खणो ॥ १० ॥
न हि रुण्णेन सोकेन, सन्तिं पप्पोति चेतसो ।
भिय्यस्सुप्पज्जते दुक्खं, सरीरं चुपहञ्ञति ॥ ११ ॥
किसो विवण्णो भवति, हिंसमत्तानमत्तना ।
न तेन पेता पालेन्ति, निरत्था परिदेवना ॥ १२ ॥

---

१. मीयरे—सी० । २. पपतनो—रो० । ३. भेदपरियन्ता—स्या० । ४. नीयति—म० ।

८—सल्लसुत्त (३, ८)

[जीवन की अनित्यता। तृष्णा के प्रहाण और मुक्ति का मार्ग।]

यहाँ मनुष्यों का जीवन अनिमित्त और अज्ञात है, कठिन और अल्प है और वह भी दुःख से युक्त है ॥ १ ॥

ऐसा कोई उपक्रम नहीं है जिससे कि जन्मे हुये लोग न मरें। बुढ़ापा प्राप्त करके भी मरना होता है। प्राणियों का ऐसा ही स्वभाव है ॥ २ ॥

जैसे पके हुए फलों को प्रातः गिरने का भय होता है, वैसे ही जन्म लिए हुए प्राणियों को नित्य मृत्यु से भय लगा रहता है ॥ ३ ॥

जैसे कुम्हार द्वारा बनाये मिट्टी के बर्तन सभी टूट जाने वाले हैं, ऐसा ही प्राणियों का जीवन है ॥ ४ ॥

तरुण, बड़े, बच्चे और बुद्धिमान् सभी मृत्यु के वश में चले जाते हैं। सभी मृत्यु को प्राप्त होने वाले हैं ॥ ५ ॥

उन मृत्यु के अधीन रहने वालों के परलोक जाते समय न तो पिता पुत्र की रक्षा करता है और न तो भाई-बन्धु भाई-बन्धुओं की ॥ ६ ॥

भाई-बन्धुओं के देखते हुए ही, नाना प्रकार के विलाप को देखते हुए भी मृत्यु अकेले ही प्राणियों को वध करने वाली गौ की भाँति ले जाती है ॥ ७ ॥

इस प्रकार लोक मृत्यु और बुढ़ापे से पीड़ित हैं; इसलिए धीर पुरुष संसार के स्वभाव को जानकर शोक नहीं करते हैं ॥ ८ ॥

जिसके आने और जाने के मार्ग को नहीं जानते हो, दोनों अन्तों को न देखते हुए व्यर्थ में विलाप कर रहे हो ॥ ९ ॥

यदि विलाप करते हुए कुछ भी अपना भला कर सके तो बुद्धिमान् व्यक्ति भी अपने को पीड़ित करता हुआ वैसा करे ॥ १० ॥

किन्तु रोने और शोक करने से चित्त को शान्ति नहीं प्राप्त होती, प्रत्युत अधिक दुःख ही उत्पन्न होता है और शरीर पीड़ित होता है ॥ ११ ॥

अपने आपको पीड़ित करते हुए व्यक्ति कृश और कुरूप हो जाता है। उससे प्रेतों का पालन नहीं होता। विलाप करना निरर्थक है ॥ १२ ॥

सोकमप्पजहं जन्तु, भिय्यो दुक्खं निगच्छति ।
अनुत्थुनन्तो कालकतं[1] सोकस्स वसमन्वगू ॥ १३ ॥
अञ्ञे'पि पस्स गमिने, यथा कम्मूपगे नरे ।
मच्चुनो वसमागम्म, फन्दन्ते चिध पाणिनो ॥ १४ ॥
येन येन हि मञ्ञन्ति, ततो तं होति अञ्ञथा ।
एतादिसो विनाभावो, पस्स लोकस्स परियायं ॥ १५ ॥
अपि वस्ससतं जीवे, भिय्यो वा पन मानवो ।
ञातिसङ्घा विना होति, जहाति इध जीवितं ॥ १६ ॥
तस्मा अरहतो सुत्वा, विनेय्य परिदेवितं ।
पेतं कालकतं दिस्वा, न सो लब्भा मया इति ॥ १७ ॥
यथा सरणमादित्तं, वारिना परिनिब्बये[2] ।
एवम्पि धीरो सप्पञ्ञो, पण्डितो कुसलो नरो ।
खिप्पमुप्पतितं सोकं, वातो तूलंव धंसये ॥ १८ ॥
परिदेवं पजप्पं च, दोमनस्सं च अत्तनो ।
अत्तनो सुखमेसानो, अब्बहे सल्लमत्तनो ॥ १९ ॥
अब्बूळ्हसल्लो असितो, सन्ति पप्पुय्य चेतसो ।
सब्बसोकमतिक्कन्तो, असोको होति निब्बुतो'ति ॥२०॥

सल्लसुत्तं निट्ठितं ।

९—वासेट्ठ-सुत्तं (३, ९)

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गल-वनसण्डे । तेन खो पन समयेन सम्बहुला अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता ब्राह्मणमहासाला इच्छानङ्गले पटिवसन्ति, सेय्यथीदं—चङ्की ब्राह्मणो, तारुक्खो ब्राह्मणो, पोक्खरसाति ब्राह्मणो, जानुस्सोणि ब्राह्मणो, तोदेय्यो ब्राह्मणो, अञ्ञे च अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता ब्राह्मणमहासाला । अथ खो वासेट्ठभारद्वाजानं माणवानं जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानानं[3] अनुविचरमानानं[4] अयमन्तरा कथा उदपादि—"कथं भो

---

१. कालंकतं—म० । २. परिनिब्बुतो—सी०, क० ।
३. अनुचंकमन्तानं—म०, स्या० । ४. अनुविचरन्तानं—म० स्या० ।

जो व्यक्ति शोक को नहीं छोड़ता है, वह अत्यधिक दुःख को प्राप्त होता है, मरे हुए व्यक्ति के लिए पश्चात्ताप करते हुए शोक के ही वश में पड़ जाता है ॥ १३ ॥

अपने कर्मानुसार अन्य भी मर कर जाने वाले मनुष्यों और मृत्यु के वश में पड़कर यहाँ छटपटाते हुए प्राणियों को देखो ॥ १४ ॥

मनुष्य जिस-जिस बात को अच्छा समझता है; वह उससे भिन्न हो जाती है। इस प्रकार के वियोग और लोक के स्वभाव को देखो ॥ १५ ॥

यदि मनुष्य सौ वर्ष या उससे अधिक जीवित रहे तो भी वह भाई-बन्धुओं से अलग हो जाता है, और यहाँ जीवन को छोड़ देता है ॥ १६ ॥

इसलिए अर्हत् के उपदेश को सुनकर विलाप करना छोड़ मरे हुए प्रेत्य व्यक्ति को देखकर सोचे कि अब वह मुझे फिर नहीं मिल सकता ॥ १७ ॥

जिस प्रकार आग लगे घर को पानी से बुझाये, ऐसे ही धीर, प्रज्ञावान्, बुद्धिमान् और कुशल नर उत्पन्न शोक को शीघ्र ही उसी तरह नष्ट कर देता है जैसे कि वायु रूई को उड़ा ले जाय ॥ १८ ॥

अपना सुख चाहने वाला मनुष्य शल्य रूपी रोना, विलाप करना और मानसिक दुःख को निकाल दे ॥ १९ ॥

जो शल्य रहित है, अनासक्त है और चित्त-शान्ति को प्राप्त है, वह सब शोक से परे हो, शोक-रहित हो शान्त होता है ॥ २० ॥

सल्लसुत्त समाप्त।

९—वासेट्ठसुत्त[1] (३, ९)

[वर्णव्यवस्था-खंडन]

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् इच्छानंगल में इच्छानंगल के वन-खण्ड में विहार करते थे।

उस समय बहुत से अभिज्ञात-अभिज्ञात (=प्रसिद्ध-प्रसिद्ध) ब्राह्मण महाशाल (=महाधनी) जैसे कि—चंकि ब्राह्मण, तारुक्ख (=तारुक्ष) ब्राह्मण, जानुस्सोणि ब्राह्मण, तोदेय्य ब्राह्मण, तथा दूसरे अभिज्ञात-अभिज्ञात ब्राह्मण महाशाल, इच्छानंगल में वास करते थे।

---

१. यह सुत्त मज्झिम निकाय २, ५, ८ में भी आया है।

ब्राह्मणो होती"ति। भारद्वाजो माणवो एवमाह—"यतो खो उभतो सुजातो होति मातितो च पितितो च संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपकुट्ठो जातिवादेन, एत्तावता खो ब्राह्मणो होती"ति। वासेट्ठो माणवो एवमाह—"यतो खो भो सीलवा च होति वतसम्पन्नो[1] च एत्तावता खो ब्राह्मणो होती"ति। नेव खो असक्खि भारद्वाजो माणवो वासेट्ठं माणवं सञ्ञपेतुं, न पन असक्खि वासेट्ठो माणवो भारद्वाजं माणवं सञ्ञपेतुं। अथ खो वासेट्ठो माणवो भारद्वाजं माणवं आमन्तेसि—"अयं खो, भारद्वाज, समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गलवनसण्डे, तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्ति-सद्दो अब्भुग्गतो—इतिपि सो भगवा...पे०...बुद्धो भगवा'ति; आयाम, भो भारद्वाज, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमिस्साम, उपसङ्कमित्वा समणं गोतमं एतमत्थं पुच्छिस्साम; यथा नो समणो गोतमो ब्याक-रिस्सति तथा नं धारेस्सामा"ति। "एवं भो"ति खो भारद्वाजो माणवो वासेट्ठस्स माणवस्स पच्चस्सोसि। अथ खो वासेट्ठभारद्वाजा माणवा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसी-दिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो वासेट्ठो माणवो भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

"अनुञ्ञातपटिञ्ञाता,[2] तेविज्जा मयमस्मुभो।
अहं पोक्खरसातिस्स, तारुक्खस्सायं माणवो॥ १॥
तेविज्जानं यदक्खातं, तत्र केवलिनोस्मसे।
पदकस्मा वेय्याकरणा, जप्पे आचरियसादिसा॥ २॥
तेसं नो जातिवादस्मिं, विवादो अत्थि गोतम।
जातिया ब्राह्मणो होति, भारद्वाजो'ति[3] भासति।
अहं च कम्मना ब्रूमि, एवं जानाहि चक्खुम॥ ३॥

---

१. वत्तसम्पन्नो— सी० स्या०। २. अनुञ्ञातपतिञ्ञाता—सी०। ३. इति—म०।

तब वाशिष्ट और भारद्वाज दो माणवों (=छात्रों) की, जंघाविहार के लिए टहलते घूमते वक्त यह बात बीच में चल पड़ी—'ब्राह्मण कैसे होता है हे ?' ।

भारद्वाज माणव ने कहा—"जब (पुरुष) दोनों ओर से माता से भी पिता से भी सुजात होता है; (माता-पिता) दोनों ओर के पितामहों की सात पीढ़ी तक विशुद्ध वंशवाले, जातिवाद से अ-क्षिप्त=अ-निंदित हों—इतने से हे ! ब्राह्मण होता है ।"

वाशिष्ट माणव ने यह कहा—"जब (आदमी) शीलवान् और व्रत-सम्पन्न होता है, इतने से हे ! ब्राह्मण होता है ।"

भारद्वाज माणव वाशिष्ट माणव को नहीं समझा सका, वाशिष्ट माणव भारद्वाज माणव को नहीं समझा सका ।

तब वाशिष्ट माणव ने भारद्वाज माणव को सम्बोधित किया—

"यह शाक्यकुल से प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम इच्छानंगल के वन-खण्ड में विहार करते हैं । उन आप गौतम का ऐसा कल्याण कीर्ति शब्द उठा हुआ है—'वे भगवान्....[1] बुद्ध भगवान् हैं' । चलो, हे भारद्वाज ! जहाँ श्रमण गौतम हैं, वहाँ चलें । चल कर श्रमण गौतम से इस बात को पूछें; जैसा श्रमण गौतम बतलायेंगे, वैसा धारण करेंगे ।"

"अच्छा, हे !"—(कह) भारद्वाज माणव ने वाशिष्ट माणव को उत्तर दिया ।

तब वाशिष्ट और भारद्वाज माणव जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान् के साथ....सम्मोदन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे वाशिष्ट माणव ने भगवान् से गाथाओं में कहा—

"हे ! हम अनुज्ञात-प्रविज्ञात[2] त्रैविद्य[3] हैं ।
मैं पौष्करसातिका और यह तारुक्ष के माणवक[4] हैं । (१) ।।
त्रैविद्यों का आख्यान[5] है, उसमें हम केवली[6] हैं ।
पद, व्याकरण (और) जल्प[7] में हम (अपने) आचार्य के समान हैं ।।२।।
गौतम ! ऐसे हम (दोनों) का जाति-वाद के विषय में विवाद है ।
भारद्वाज कहता है—'जाति[8] से ब्राह्मण होता है' ।। ३ ।।

---

१. देखो सेलसुत्त ३, ७ । २. प्रसिद्ध । ३. तीनों वेदों के ज्ञाता । ४. विद्यार्थी । ५. व्याख्यान, पाठ्य विषय । ६. अद्वितीय । ७. वाद । ८. जन्म ।

ते न सक्कोम सञ्ञत्तु[1], अञ्ञमञ्ञं मयं उभो ।
भगवन्तं[2] पुट्ठमागम्म[3], सम्बुद्धं इति विस्सुतं ॥ ४ ॥

चन्दं यथा खयातीतं, पेच्च पञ्जलिका जना ।
वन्दमाना नमस्सन्ति, एवं लोकस्मिं गोतमं ॥ ५ ॥
चक्खुं लोके समुप्पन्नं, मयं पुच्छाम गोतमं ।

जातिया ब्राह्मणो होति, उदाहु भवति कम्मना ।
अजानतं नो पब्रूहि, यथा जानेमु ब्राह्मणं" ॥ ६ ॥
तेसं वो'हं व्यक्खिस्सं, (वासेट्ठाति भगवा) अनुपुब्बं यथातथं
जातिविभङ्गं पाणानं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ ७ ॥

तिणरुक्खे'पि जानाथ, न चापि पटिजानरे ।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ ८ ॥

ततो कीटे पतङ्गे च, याव कुन्थकिपिल्लिके ।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ ९ ॥

चतुप्पदे'पि[4] जानाथ, खुद्दके च महल्लके ।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ १० ॥

पादूदरे'पि जानाथ, उरगे दीघपिट्ठिके ।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ ११ ॥

ततो मच्छे'पि जानाथ, उदके वारि गोचरे ।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ १२ ॥
ततो पक्खी'पि जानाथ, पत्तयाने विहङ्गमे ।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्ञमञ्ञा हि जातियो ॥ १३ ॥
यथा एतासु जातीसु, लिङ्गं जातिमयं पुथु ।
एवं नत्थि मनुस्सेसु, लिङ्गं जातिमयं पुथु ॥ १४ ॥
न केसेहि न सीसेन, न कण्णेहि न अक्खिहि ।
न मुखेन न नासाय, न ओट्ठेहि भमूहि वा ॥ १५ ॥

---

१. सञ्ञापेतुं—म०; सञ्ञपेतुं—सी० । २. भवन्तं—म० । ३. पुट्ठुमागम्हा—म०
४. पक्खी—सी० ।

चक्षुष्मन् ! मैं कर्म से कहता हूँ, ऐसा (आप) जानें।
हम दोनों एक दूसरे को समझा नहीं सकते।
(तव) सम्वुद्ध करके विश्रुत भगवान् के पास आये हैं ॥ ४ ॥
अक्षय चन्द्रमा को जैसे लोग हाथ जोड़,
वन्दना करके नमस्कार करते हैं, ऐसे ही लोक में गौतम को (भी) ॥५॥
लोक के, चक्षु-(जैसे)-उत्पन्न (आप) गौतम से हम पूछते हैं—
'जन्म से ब्राह्मण होता है, या कर्म से' ?
हम अजानों को वतावें, जिसमें हम ब्राह्मण को जानें' ॥ ६ ॥
(भगवान्—"वाशिष्ट !)—
सो तुम्हें मैं क्रमशः यथार्थतः कहता हूँ।
प्राणियों की जातियों में एक दूसरे से जाति का भेद है ॥ ७ ॥
तृण और वृक्ष में भी; जानते हो (इसके लिये) वह प्रतिज्ञा नहीं करते,
जातिका लिंग है; उनमें जातियाँ एक दूसरे से (भिन्न) हैं ॥ ८ ॥
फिर कीट, पतंग से चींटी तक
जातिका लिंग है; उनमें...॥ ९ ॥
छोटे वड़ चौपायों में भी तुम जानते हो,
जातिका लिंग है; उनमें...॥ १० ॥
लम्बी पीठवाले पादोदर[1] साँप को भी जानते हो,
जाति का लिंग हैं....॥ ११ ॥
फिर जलचर पानी की मछलियों को भी जानते हो,
जाति का लिंग है...॥ १२ ॥
फिर आकाशचारी पत्रयान[2] पक्षियों को भी जानते हो,
जाति का लिंग है....॥ १३ ॥
जैसा इन जातियों में जाति का अलग-अलग लिंग है।
इस प्रकार का जाति-लिंग मनुष्यों में अलग नहीं है ॥ १४ ॥
न केशों में, न सिर में, न कान में, न आँख में।
न मुख में, न नासिका में, न ओठ और भौं में।
न ग्रीवा में, न कंधे में, न पीठ में, न पेट में ॥ १५ ॥

---

१. उदर है पादका काम देता, जिसका। २. पंख ही जिनका यान (=सवारी)है।

न गीवाय न अंसेहि, न उदरेन न पिट्ठिया ।
न सोणिया न उरसा, न सम्बाधे[1] न मेथुने[2] ॥ १६ ॥
न हत्थेहि न पादेहि, नाङ्गुलीहि नखेहि वा ।
न जङ्घाहि न ऊरूहि, न वण्णेन सरेन वा ।
लिङ्गं जातिमयं नेव, यथा अञ्ञासु जातिसु ॥ १७ ॥
पच्चत्तं च[3] सरीरेसु[4], मनुस्सेस्वेतं न विज्जति ।
वोकारं च मनुस्सेसु, समञ्ञाय पवुच्चति ॥ १८ ॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, गोरक्खं उपजीवति ।
एवं वासेट्ठ जानाहि, कस्सको सो न ब्राह्मणो ॥ १९ ॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, पुथु सिप्पेन जीवति ।
एवं वासेट्ठ जानाहि, सिप्पिको सो न ब्राह्मणो ॥ २० ॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, वोहारं उपजीवति ।
एवं वासेट्ठ जानाहि, वाणिजो सो न ब्राह्मणो ॥ २१ ॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, परपेस्सेन जीवति ।
एवं वासेट्ठ जानाहि, पेस्सिको सो न ब्राह्मणो ॥ २२ ॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, अदिन्नं उपजीवति ।
एवं वासेट्ठ जानाहि, चोरो एसो न ब्राह्मणो ॥ २३ ॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, इस्सत्थं उपजीवति ।
एवं वासेट्ठ जानाहि, योधाजीवो न ब्राह्मणो ॥ २४ ॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, पोरोहिच्चेन[5] जीवति ।
एवं वासेट्ठ जानाहि, याजको[6] सो न ब्राह्मणो ॥ २५ ॥
यो हि कोचि मनुस्सेसु, गामं रट्ठं च भुञ्जति ।
एवं वासेट्ठ जानाहि, राजा एसो न ब्राह्मणो ॥ २६ ॥
न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मत्तिसम्भवं ।
भोवादि नाम सो होति, सच्चे[7] होति सकिञ्चनो ।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २७ ॥

---

१. सम्बाधा—स्या०, क० । २. मेथुना—स्या०, क० । ३-४. ससंरीरेसु—सी०, रो० ।
५. पुरोहिच्चेन—सी० । ६. याचको—स्या० । ७. स वे—सी०, स्या० ।

सुत्तनिपात

न श्रोणी में, न गोप्यस्थान में, न मैथुन में।
न हाथ में, न पैर में, न अंगुली और नख में ॥ १६ ॥
न जंघा में, न उरू में, न वर्ण या स्वर में।
जैसा कि अन्य जातियों में है, (वैसा) जाति का कोई (पृथक्) लिंग नहीं ॥ १७ ॥
मनुष्यों के शरीर में यह (भेदक लिंग) नहीं मिलता।
मनुष्यों में भेद (सिर्फ) संज्ञा में है ॥ १८ ॥
मनुष्यों में जो गोरक्षा से जीविका करता है।
वाशिष्ट ! ऐसे को कृषक जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ १९ ॥
मनुष्यों में जो किसी शिल्प से जीविका करता है।
वाशिष्ट ! ऐसे को शिल्पी जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ २० ॥
मनुष्यों में जो व्यापार से जीविका करता है।
वाशिष्ट ! ऐसे को बनिया जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ २१ ॥
मनुष्यों में जो पर-प्रेषण[1] से जीविका करता है।
वाशिष्ट ! ऐसे को प्रेष्यक[2] जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ २२ ॥
मनुष्यों में जो अदत्तादान से जीता है।
वाशिष्ट ! ऐसे को चोर जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ २३ ॥
मनुष्यों में जो इषु-अस्त्र से जीता है।
वाशिष्ट ! ऐसे को योधाजीवी[3] जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ २४ ॥
मनुष्यों में जो पुरोहिती से जीता है।
वाशिष्ट ! ऐसे को याजक जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ २५ ॥
मनुष्यों में जो ग्राम राष्ट्र का उपभोग करता है।
वाशिष्ट ! ऐसे को राजा जानो, ब्राह्मण नहीं ॥ २६ ॥
[4]माता और योनि से उत्पन्न होने के कारण मैं ब्राह्मण नहीं कहता।
वह 'भो-वादी'[5] है, वह (तो) संग्रही है।
मैं ब्राह्मण उसे कहता हूँ, जो अपरिग्रही = न लेने वाला है ॥ २७ ॥

१. पठवनिया का काम। २. पठवनिया (=मालिक के भेजे अनुसार काम करने वाला)। ३. सिपाही। ४. यहाँ से "जो पूर्व जन्म को जानता है..." तक धम्मपद ३९३-४२३ (२६; १४,४१) में आया है। ५. उस समय ब्राह्मण को हा "भो" कहकर सम्बोधित करते थे।

सब्बसंयोजनं छेत्वा, यो वे न परितस्सति ।
सङ्गातिगं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २८ ॥

छेत्वा नन्धिं वरत्तं च, सन्दानं सहनुक्कमं ।
उक्खित्तपळिघं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ २९ ॥

अक्कोसं बधबन्धं च, अदुट्ठो यो तितिक्खति ।
खन्तीबलं बलानीकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३० ॥

अक्कोधनं वतवन्तं सीलवन्तं अनुस्सदं ।
दन्तं अन्तिमसारीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३१ ॥

वारि पोक्खरपत्तेव, आरग्गेरिव सासपो ।
यो न लिप्पति[1] कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३२ ॥

यो दुक्खस्स पजानाति, इधेव खयमत्तनो ।
पन्नभारं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३३ ॥

गम्भीरपञ्ञं मेधाविं, मग्गामग्गस्स कोविदं ।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३४ ॥

असंसट्ठं गहट्ठेहि, अनागारेहि चूभयं ।
अनोकसारिं अप्पिच्छं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३५ ॥

निधाय दण्डं भूतेसु, तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३६ ॥

अविरुद्धं विरुद्धेसु, अत्तदण्डेसु निब्बुतं ।
सादानेसु अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३७ ॥

यस्स रागो च दोसो च, मानो मक्खो च पातितो ।
सासपोरिव आरग्गा, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३८ ॥

अकक्कसं विञ्ञापनिं, गिरं सच्चं उदीरये ।
याय नाभिसजे कञ्चि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ३९ ॥

१. लिम्पति—म० ।

जो सारे संयोजनों (=बन्धनों) को काटकर, भय नहीं खाता।

जो संग और आसक्ति से विरत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २८ ॥

नन्दी (=क्रोध), वरत्रा (=तृष्णा रूपी रस्सी), सन्दान (=६२ प्रकार के मतवाद-रूपी पगहे), और हनुक्रम (=मुँह पर बाँधने के जावे) को काट एवं परिघ (=जूए) को फेंक जो वुद्ध (=ज्ञानी) हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २९ ॥

जो विना दूषित (चित्त) किये गाली, बध और वन्धन को सहन करता है, क्षमा वल ही जिसके वल (=सेना) का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३० ॥

जो अक्रोधी, व्रती, शीलवान्, बहुश्रुत, संयमी (=दान्त) और अन्तिम शरीर वाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३१ ॥

कमल के पत्ते पर जल, और आरे के नोंक पर सरसों की भाँति जो भोगों में लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३२ ॥

जो यहीं (=इसी जन्म में) अपने दु:खों के विनाश को जानता है, जिसने अपने वोझ को उतार फेंका और जो असक्तिरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३३ ॥

जो गम्भीर प्रज्ञावला, मेधावी, मार्ग-अमार्ग का ज्ञाता, उत्तम पदार्थ (=सत्य) को पाये है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३४ ॥

घरवाले (=गृहस्थ) और बेघरवाले दोनों ही में जो लिप्त नहीं होता, जो बिना ठिकाने के घूमता तथा बेचाह है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३५ ॥

चर-अचर (सभी) प्राणियों में प्रहारित हो, जो न मारता है, न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३६ ॥

जो विरोधियों के बीच विरोध-रहित रहता है, जो दंडधारियों के बीच (दण्ड-) रहित है, संग्राहियों में जो संग्रहरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥३७॥

आरे के ऊपर सरसों की भाँति, जिसके (चित्त से) राग, द्वेष, मान, डाह फेंक दिये गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३८ ॥

(जो इस प्रकार की) अकर्कश, आदरयुक्त (तथा) सच्ची वाणी को बोले कि जिससे कुछ भी पीड़ा न होवे, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३९ ॥

यो[2] च[3] दीघं व रस्सं वा, अणु थूलं सुभासुभं ।
लोके अदिन्नं नादियति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४० ॥

आसा यस्स न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परम्हि च ।
निरासयं[4] विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४१ ॥

यस्सालया न विज्जन्ति, अञ्ञाय अकथंकथी ।
अमतोगधं अनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४२ ॥

यो'ध पुञ्ञं च पापं च, उभो सङ्गं उपच्चगा ।
असोकं विरजं सुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४३ ॥

चन्दं'व विमलं सुद्धं, विप्पसन्नमनाविलं ।
नन्दीभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४४ ॥

यो इमं पलिपथं दुग्गं, संसारं मोहमच्चगा ।
तिण्णो पारगतो झायी, अनेजो अकथंकथी ।
अनुपादाय निब्बुतो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४५ ॥

यो'ध कामे पहत्वान, अनागारो परिब्बजे ।
कामभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४६ ॥

यो'ध तण्हं पहत्वान, अनागारो परिब्बजे ।
तण्हाभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४७ ॥

हित्वा मानुसकं योगं, दिब्बं योगं उपच्चगा ।
सब्बयोगविसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४८ ॥

हित्वा रतिं च अरतिं च, सीतिभूतं निरूपधिं ।
सब्बलोकाभिभुं वीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ४९ ॥

चुतिं यो वेदि सत्तानं, उपपत्तिं च सब्बसो ।
असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५० ॥

१-२. योध—म० ।
३. निरासासं—म० ।

(चीज) चाहे दीर्घ हो या ह्रस्व, मोटी हो या पतली, शुभ हो या अशुभ, जो संसार में (किसी भी) बिना दी चीज को नहीं लेता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४० ॥

इस लोक और परलोक के विषय में जिसकी आशायें (=चाह) नहीं रह गई हैं, जो आशारहित और आसक्तिरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४१ ॥

जिसको आलय (=तृष्णा) नहीं है, जो भली प्रकार जानकर अकथ (-पद) का कहने वाला है, जिसने गाढ़े अमृत को पा लिया; उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४२ ॥

जिसने यहाँ पुण्य और पाप दोनों की आसक्ति को छोड़ दिया, जो शोक रहित, निर्मल, (और) शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४३ ॥

जो चन्द्रमा की भाँति विमल, शुद्ध, स्वच्छ=अनाविल है, (तथा जिसकी) सभी जन्मों की तृष्णा नष्ट हो गयी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४४ ॥

जिसने इस दुर्गम संसार, (=जन्म-मरण) के चक्कर में डालने वाले मोह (रूपी) उलटे मार्ग को त्याग दिया, जो (संसार से) पारंगत, ध्यानी तथा तीर्ण (=तर गया) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४५ ॥

जो यहाँ भोगों को छोड़, बेघर हो प्रव्रजित (=संन्यासी) हो गया है, जिसके भोग और जन्म नष्ट हो गये, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४६ ॥

जो यहाँ तृष्णा को छोड़, बेघर बन प्रव्रजित है, जिसकी तृष्णा और (पुनर्-) जन्म नष्ट हो गये, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४७ ॥

मानुष (-भोगों के) बन्धन को छोड़ दिव्य (भोगों के) बन्धन को भी (जिसने) त्याग दिया, सारे ही बन्धनों में जो आसक्त नहीं है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४८ ॥

रति और अरति (=उदासी) को छोड़, जो शीतल-स्वभाव (तथा) क्लेशरहित है, (जो ऐसा) सर्वलोकविजयी, वीर है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४९ ॥

जो प्राणियों की च्युति (=मृत्यु) और उत्पत्ति को भली प्रकार जानता है, (जो) आसक्ति-रहित सुगत (=सुन्दर गति को प्राप्त) और बुद्ध (=ज्ञानी) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ५० ॥

यस्स गतिं न जानन्ति, देवा गन्धब्बमानुसा ।
खीणासवं अरहन्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५१ ॥
यस्स पुरे च पच्छा च, मज्झे च नत्थि किञ्चनं ।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५२ ॥
उसभं पवरं वीरं, महेसिं विजिताविनं ।
अनेजं नहातकं[1] बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५३ ॥
पुब्बे निवासं यो वेदि, सग्गापायं च पस्सति ।
अथो जातिक्खयं पत्तो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५४ ॥
समञ्ञा हेसा लोकस्मिं, नामगोत्तं पकप्पितं ।
सम्मुच्चा समुदागतं, तत्थ तत्थ पकप्पितं ॥ ५५ ॥
दीघरत्तमनुसयितं, दिट्ठिगतमजानतं ।
अजानन्ता नो[2] पब्रूवन्ति, जातिया होति ब्राह्मणो ॥ ५६ ॥

न जच्चा ब्राह्मणो होति, न जच्चा होति अब्राह्मणो ।
कम्मना ब्राह्मणो होति, कम्मना होति अब्राह्मणो ॥ ५७ ॥

कस्सको कम्मना होति, सिप्पिको होति कम्मना ।
वाणिजो कम्मना होति, पेस्सिको होति कम्मना ॥ ५८ ॥

चोरो'पि कम्मना होति, योधाजीवो'पि कम्मना ।
याजको कम्मना होति, राजा'पि होति कम्मना ॥ ५९ ॥

एवमेतं यथाभूतं, कम्मं पस्सन्ति पण्डिता ।
पटिच्चसमुप्पाददसा[3], कम्मविपाककोविदा ॥ ६० ॥

कम्मना वत्तती लोको, कम्मना वत्तती पजा ।
कम्मनिबन्धना सत्ता, रथस्साणो'व यायतो ॥ ६१ ॥

तपेन ब्रह्मचरियेन, संयमेन दमेन च ।
एतेन ब्राह्मणो होति, एतं ब्राह्मणमुत्तमं ॥ ६२ ॥

---

१. न्हातकं—म० ।

२. अयं पाठो सी० पोत्थके न दिस्सति ।

३. पटिच्चसमुप्पाददस्सा—म० ।

जिसकी गति (=पहुँच) को देवता, गन्धर्व और मनुष्य नहीं जानते, क्षीणाश्रव (=रागादिरहित) और अर्हत् है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ५१ ॥

जिसके पूर्व और पश्चात् और मध्य में कुछ नहीं है, जो परिग्रह-रहित= आदान-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ५२ ॥

(जो) ऋषभ (=श्रेष्ठ), प्रवर, महर्षि, विजेता, अकम्प्य, स्नातक और बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ५३ ॥

जो पूर्व जन्म को जानता है, स्वर्ग और कुगति को देखता है।
और जिसका (पुनर्-) जन्म क्षीण हो गया, जो अभिज्ञा-परायण[1] मुनि है।
सारे कृत्य जिसके समाप्त हो गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ५४ ॥
लोक में यह सज्ञायें हैं, (यह) कल्पित नाम-गोत्र हैं।
वहाँ वहाँ कल्पित (करके) लोक-व्यवहार से चला आया है ॥ ५५ ॥
अज्ञों की धारणा में चिर काल से (यह) घुसा हुआ है।
जानने वाले नहीं कहते—'ब्राह्मण जन्म से होता है' ॥ ५६ ॥
जन्म से न ब्राह्मण होता है, न जन्म से अ-ब्राह्मण।
कर्म से ब्राह्मण होता है, (और) कर्म से अ-ब्राह्मण ॥ ५७ ॥
कर्म से कृषक होता है (और) कर्म से शिल्पी।
कर्म से वनिया होता है, (और) कर्म से प्रेष्यक ॥ ५८ ॥
कर्म से चोर होता है, (और) योधाजीवी भी कर्म से।
कर्म से याजक होता है, (और) राजा भी कर्म से ॥ ५९ ॥
[2]प्रतीत्य-समुत्पाद-दर्शी (और) कर्म-विपाक-कोविद,
[प]ंडित (जन) इस प्रकार कर्म को यथार्थ से जानते हैं ॥ ६० ॥
लोक कर्म से चल रहा है, प्रजा कर्म से चल रही है।
चलते हुए रथ के (चक्के की) आणी की भाँति प्राणी कर्म में बँधे हैं ॥ ६१ ॥
तप, ब्रह्मचर्य, संयम और दम,
इनसे ब्राह्मण होता है, यही उत्तम ब्राह्मण हैं ॥ ६२ ॥

---

१. अभिज्ञा (= दिव्य शक्तियाँ) छः हैं।

२. कार्य कारण नियमोंसे सभी चीजें उत्पन्न हैं, यह सिद्धान्त प्रतीत्य-समुत्पाद कहा जाता है।

तीहि विज्जाहि सम्पन्नो, सन्तो खीणपुनब्भवो ।
एवं वासेट्ठ जानाहि, ब्रह्मा सक्को विजानत'न्ति ॥ ६३ ॥

एवं वुत्ते वासेट्ठभारद्वाजा माणवा भगवन्तं एतदवोचुं—"अभिक्कन्तं भो गोतम····पे०····एते मयं भगवन्तं गोतमं सरणं गच्छाम धम्मञ्च भिक्खुसङ्घञ्च, उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते[1] सरणं गते"ति ।

वासेट्ठसुत्तं निट्ठितं ।

१०—कोकालिक-सुत्तं (३, १०)

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे । अथ खो कोकालिको[2] भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच— "पापिच्छा, भन्ते, सारिपुत्तमोग्गल्लाना, पापिकानं इच्छानं वसं गता"ति । एवं वुत्ते भगवा कोकालिकं भिक्खुं एतदवोच—"मा हेवं, कोकालिक, मा हेवं, कोकालिक; पसादेहि, कोकालिक सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं, पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना"ति । दुतियम्पि खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"किञ्चापि मे, भन्ते, भगवा सद्धायिको, पच्चयिको, अथ खो पापिच्छा'व सारिपुत्तमोग्गल्लाना, पापिकानं इच्छानं वसं गता"ति । दुतियम्पि खो भगवा कोकालिकं भिक्खुं एतदवोच—"मा हेवं, कोकालिक, मा हेवं, कोकालिक; पसादेहि, कोकालिक, सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं, पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना"ति । ततियम्पि खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"किञ्चापि मे, भन्ते, भगवा सद्धायिको पच्चयिको, अथ

१. पाणुपेतं—क० । २. कोकालियो—म० ।

तीन विद्याओं से युक्त, शान्त (और) पुनर्जन्म-रहित,
वाशिष्ट ! ऐसों को (तुम) विज्ञों के ब्रह्मा (और) शक्र जानो ॥ ६३ ॥

ऐसा कहने पर वाशिष्ट और भारद्वाज माणवकों ने भगवान् से यह कहा—"आश्चर्य ! हे गौतम ! आश्चर्य !! हे गौतम ! जैसे औंधे को सीधाकर दे ····[1]यह हम आप गौतम की शरण जाते हैं, धर्म और भिक्षु-संघ की भी । आप गौतम आज से हमें अंजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें ।"

वासेट्ठसुत्त समाप्त ।

१०—कोकालिकसुत्त (३, १०)

[अग्रश्रावक आयुष्मान् सारिपुत्र और आयुष्मान् मौद्गल्याय को निन्दाकर कोकालिक नरक में उत्पन्न हुआ । सन्तों की निन्दा करना महापाप है ।]

ऐसा मैंने सुना । एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे । तब कोकालिक भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे कोकालिक भिक्षु ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन बुरे विचार वाले हैं, बुरी इच्छाओं के वशीभूत हैं ।"

ऐसा कहने पर भगवान् ने कोकालिक भिक्षु को यह कहा—कोकालिक ! ऐसा मत कहो, कोकालिक ! ऐसा मत कहो । कोकालिक ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन पर अपना चित्त प्रसन्न करो । सारिपुत्र और मौद्गल्यायन उत्तम हैं ।"

दूसरी बार भी कोकालिक भिक्षु नें भगवान् से यह कहा—"भन्ते ! यद्यपि मैं भगवान् पर श्रद्धा रखता हूँ और प्रसन्न हूँ, फिर भी सारिपुत्र और मौद्गल्यायन बुरे विचार वाले हैं, बुरी इच्छाओं के वशीभूत हैं ।"

दूसरी बार भी भगवान् ने कोकालिक भिक्षु से यह कहा—"कोकालिक ! ऐसा मत कहो । कोकालिक ! ऐसा मत कहो । कोकालिक ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन पर अपना चित्त प्रसन्न करो । सारिपुत्र और मौद्गल्यायन उत्तम हैं ।"

---

१. देखो, कसिभारद्वाजसुत्त १, ४ ।

खो पापिच्छा'व सारिपुत्तमोग्गल्लाना, पापिकानं इच्छानं वसंगता"ति। ततियम्पि खो भगवा कोकालिकं भिक्खुं एतदवोच--"मा हेवं कोकालिक, मा हेवं कोकालिक, पसादेहि, कोकालिक, सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं, पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लाना"ति। अथ खो कोकालिको भिक्खु उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अचिरपक्कन्तस्स च कोकालिकस्स भिक्खुनो सासपमत्तीहि पिलकाहि सब्बो कायो फुट्ठो[1] अहोसि, सासपमत्तियो हुत्वा मुग्गमत्तियो अहेसुं, मुग्गमत्तियो हुत्वा कळायमत्तियो अहेसुं, कळायमत्तियो हुत्वा कोलट्ठिमत्तियो अहेसुं, कोलट्ठिमत्तियो हुत्वा कोलमत्तियो अहेसुं, कोलमत्तियो हुत्वा आमलकमत्तियो अहेसुं, आमलकमत्तियो हुत्वा वेळुवसलाटुकामत्तियो अहेसुं, वेळुवसलाटुकामत्तियो हुत्वा बिल्लमत्तियो अहेसुं, बिल्लमत्तियो हुत्वा पभिज्जिसु, पुब्बं च लोहितं च पग्घरिंसु। अथ खो कोकालिको भिक्खु तेनेवाबाधेन कालं अकासि। कालकतो च कोकालिको भिक्खु पदुमनिरयं[2] उपपज्जि सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा।

अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ब्रह्मा सहम्पति भगवन्तं एतदवोच—"कोकालिको, भन्ते, भिक्खु कालकतो; कालकतो च, भन्ते, कोकालिको भिक्खु पदुमनिरयं उपपन्नो सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा"ति। इदं अवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायि।

अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन भिक्खू आमन्तेसि—"इमं, भिक्खवे, रत्ति ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया ...पे०... आघातेत्वा"ति। इदं अवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी"ति। एवं वुत्ते अञ्ञतरो भिक्खु

---

१. फुटो—सी०, म०। २. पदुमं निरयं—म०।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

सुत्तनिपातो

१. उरगवग्गो

१. उरगसुत्तं (१,१)

यो उप्पतितं विनेति कोधं, विसतं[1] सप्पविसं'व ओसधेहि[2] ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं[3] पुराणं ॥ १ ॥

यो रागमुदच्छिदा असेसं, भिसपुप्फं'व सरोरुहं[4] विगय्ह ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ २ ॥

यो तण्हमुदच्छिदा असेसं, सरितं सीघसरं विसोसयित्वा ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ३ ॥

यो मानमुदच्छिदा असेसं, नळसेतुं'व सुदुब्बलं महोघो ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ४ ॥

यो नाज्झगमा भवेसु सारं, विचिनं पुप्फमिव उदुम्बरेसु ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ५ ॥

यस्स' न्तरतो न सन्ति कोपा, इति भवाभवतं च वीतिवत्तो ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ६ ॥

यस्स वितक्का विधूपिता, अज्झत्तं सुविकप्पिता असेसा ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ७ ॥

यो नाच्चसारी न पच्चसारी, सब्बं अच्चगमा इमं पपञ्चं ।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ८ ॥

---

१. विसटं—म० । २. ओसधेभि—म० । ३. जिण्णमिवत्तचं—म० । ४. सरेरुहं— क०

तीसरी बार भी कोकालिक भिक्षु ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते ! यद्यपि मैं भगवान् पर श्रद्धा रखता हूँ और प्रसन्न हूँ, फिर भी सारिपुत्र और मौद्गल्यायन बुरे विचार वाले हैं, बुरी इच्छाओं के वशीभूत हैं।"

तीसरी बार भी भगवान् ने कोकालिक भिक्षु से यह कहा—"कोकालिक ! ऐसा मत कहो। कोकालिक ! ऐसा मत कहो। कोकालिक ! सारिपुत्र और मौद गल्यायन पर अपना चित्त प्रसन्न करो। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन उत्तम हैं।"

तब कोकालिक भिक्षु आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम कर प्रदक्षिणा कर चला गया।

कोकालिक भिक्षु के जाने के थोड़ी देर बाद ही सरसों के बराबर फुंसियों से उसका सारा शरीर भर गया। सरसों के बराबर होकर मूँग के बराबर हो गईं। मूँग के बराबर होकर मटर के बराबर हो गईं। मटर के बराबर होकर बेर की गुठली के बराबर हो गईं। बेर की गुठली के बराबर होकर बेर के बराबर हो गईं। बेर के बराबर होकर आँवला के बराबर हो गईं। आँवला के बराबर होकर छोटे बेल के बराबर हो गईं। छोटे बेल के बराबर होकर बेल के बराबर हो गईं। बेल के बराबर होकर फूट गईं। पीब और लोहू बह चले। तब कोकालिक भिक्षु उसी रोग से मर गया और मर कर कोकालिक भिक्षु सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन के प्रति द्वेष-चित्त करके पद्म नरक में उत्पन्न हुआ।

तब सहम्पति ब्रह्मा रात बीतने पर अपनी कान्ति से सम्पूर्ण जेतवन को प्रकाशित करके जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुए सहम्पति ब्रह्मा ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते ! कोकालिक भिक्षु मर गया और भन्ते ! मर कर कोकालिक भिक्षु सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति द्वेष-चित्त करके पद्म नरक में उत्पन्न हुआ है।" सहम्पति ब्रह्मा ने यह कहा। यह कह कर भगवान् को प्रणाम कर, प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्ध्यान हो गया।

तब भगवान् ने उस रात्रि के बीतने पर भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"भिक्षुओ ! आज की रात सहम्पति ब्रह्मा रात बीतने पर····द्वेष-चित्त करके पद्म नरक में उत्पन्न हुआ है।" सहम्पति ब्रह्मा ने यह कहा। इसे कह कर मुझे प्रणाम कर, प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्ध्यान हो गया।"

भगवन्तं एतदवोच—"कीव दीघं नु खो, भन्ते, पदुमे निरये आयुप्पमाण"न्ति ? "दीघं खो, भिक्खु, पदुमे निरये आयुप्पमाणं, तं न सुकरं सङ्खातुं एत्तकानि वस्सानीति वा, एत्तकानि वस्ससतानीति वा, एत्तकानि वस्ससतसहस्सानीति वा"ति। "सक्का पन, भन्ते, उपमा कातु"न्ति ? "सक्का भिक्खू"ति भगवा अवोच—"सेय्यथापि, भिक्खु, वीसतिखारिको कोसलको तिलवाहो; ततो पुरिसो वस्ससतस्स अच्चयेन एकं एकं तिलं उद्धरेय्य, खिप्पतरं खो सो, भिक्खु, वीसतिखारिको कोसलको तिलवाहो इमिना उपक्कमेन परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य, न त्वेव एको अब्बुदो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति अब्बुदा निरया एवं एको निरब्बुदो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति निरब्बुदा निरया एवं एको अबबो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति अबबा निरया एवं एको अहहो निरयो। सेय्यथापि भिक्खु, वीसति अहहा निरया एवं एको अटटो निरयो। सेय्यथापि भिक्खु, वीसति अटटा निरया एवं एको कुमुदो निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु वीसति कुमुदा निरया एवं एको सोगन्धिको निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति सोगन्धिका निरया एवं एको उप्पलको निरयो। सेय्यथापि, भिक्खु, वीसति उप्पलका निरया एव एको पुण्डरिको निरयो। सेय्यथापि भिक्खु, वीसति पुण्डरिका निरया एवं एको पदुमो निरयो। पदुमं खो पन, भिक्खु, निरयं कोकालिको भिक्खु उपपन्नो सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा"ति। इदं अवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

पुरिसस्स हि जातस्स, कुठारी[1] जायते मुखे।
याय छिन्दति अत्तानं, बालो दुब्भासितं भणं॥१॥
यो निन्दियं पसंसति, तं वा निन्दति यो पसंसियो।
विचिनाति मुखेन सो कलिं, कलिना तेन सुखं न विन्दति॥२॥

१. कुधारी—क०।

ऐसा कहने पर किसी भिक्षु ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते ! पद्म नरक की आयु कितनी लम्बी होती है ?"

"भिक्षु ! पद्म नरक की आयु लम्बी होती है। उसकी गणना कर सकना सहज नहीं है कि इतने वर्ष, इतने सौ वर्ष, अथवा इतने लाख वर्ष ?"

"भन्ते ! उपमा दे सकते हैं ?"

"भिक्षु ! सकते हैं। भगवान् ने कहा—जैसे भिक्षु ! बीस खारी[1] तिल अटने वाली कोसल की जो गाड़ी है, एक पुरुष एक हजार वर्ष बीतने पर उसमें से एक तिल निकाल दे, इस क्रम से कालान्तर में बीस खारी तिल से भरी वह गाड़ी खाली हो जायेगी, समाप्त हो जायेगी, किन्तु अर्बुद नरक के जीवन काल की आयु नहीं। भिक्षु ! अर्बुद नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है निरर्बुद नरक का एक जीवन-काल। भिक्षु ! अबब नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है अहह नरक का एक जीवन-काल। भिक्षु ! अहह नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है अटट नरक का एक जीवन-काल। भिक्षु ! अटट नरक के बीस जीवनों के बराबर है कुमुद नरक का एक जीवन-काल। भिक्षु ! कुमुद नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है सोगन्धिक नरक का एक जीवन-काल। भिक्षु ! सोगन्धिक नरक के बीस जीवनों के बराबर है उत्पल नरक का एक जीवन-काल। उत्पल नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है पुण्डरीक नरक का एक जीवन-काल। पुण्डरीक नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है पद्म नरक का एक जीवन-काल। भिक्षु ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति द्वेष-चित्त करके कोकालिक भिक्षु पद्म नरक में उत्पन्न हुआ है।" भगवान् ने यह कहा। सुगत ने यह कह कर, शास्ता ने यह कहा—

"इस संसार में उत्पन्न होने वाले पुरुष के मुख में कुठारी उत्पन्न होती है। मूर्ख बुरी बात बोलता हुआ उससे ही अपने को काट डालता है ॥ १ ॥

जो निन्दनीय की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसनीय की निन्दा करता है, वह मुख से पाप करता है और उस पाप के कारण वह सुख को प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥

---

१. एक प्राचीन माप। "चार मन की खारी होती है"—अट्ठकथा।

अप्पमत्तो अयं कलि,
यो अक्खेसु धनपराजयो, सब्बस्सापि सहापि अत्तना।
अयमेव महत्तरो[1] कलि, यो सुगतेसु मनं पदोसये ॥३॥

सतं सहस्सानं निरब्बुदानं, छत्तिंस च पञ्च च अब्बुदानि[2]।
यं अरियगरही निरयं उपेति, वाचं मनं च पणिधाय पापकं ॥४॥

अभूतवादी निरयं उपेति, यो वा'पि कत्वा न करोमीति चाह।
उभो'पि ते पेच्च समा भवन्ति, निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥५॥

यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति, सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं, सुखुमो रजो पटिवातं'व खित्तो ॥६॥

यो लोभगुणे अनुयुत्तो, सो वचसा परिभासति अञ्ञे।
अस्सद्धो कदरियो अवदञ्ञू, मच्छरी पेसुणियस्मिं अनुयुत्तो ॥ ७ ॥

मुखदुग्ग विभूतमनरियं, भूनहु[3] पापक दुक्कतकारि।
पुरिसन्तकलि अवजात, मा बहु भाणिध नेरयिको'सि ॥ ८ ॥

रजमाकिरसि अहिताय, सन्ते गरहसि किब्बिसकारी।
बहूनि च दुच्चरितानि चरित्वा, गच्छिसि[4] खो पपतं चिररत्तं ॥ ९ ॥

न हि नस्सति कस्सचि कम्मं, एति हतं लभतेव सुवामि।
दुक्खं मन्दो परलोके, अत्तनि पस्सति किब्बिसकारी ॥१०॥

अयोसङ्कुसमाहतट्ठानं, तिण्हधारमयसूलमुपेति।
अथ तत्तअयोगुळसन्निभं, भोजनमत्थि तथा पतिरूपं ॥११॥
न हि वग्गु वदन्ति वदन्ता, नाभिजवन्ति न ताणमुपेन्ति।
अङ्गारे सन्थते सेन्ति[5], अग्गिनिसमं जलितं पविसन्ति ॥१२॥
जालेन च ओनहियाना, तत्थ हनन्ति अयोमयकूटेहि[6]।
अन्धं'व, तिमिसमायन्ति, तं विततं हि यथा महिकायो ॥१३॥

---

१. महन्ततरो—सी० २. अब्बुदानं—क०।
३. भुनहत—स्या०, क०। ४. गच्छसि—म०।
५. सयन्ति—म०। ६. अयोमयकुटेभि—म०।

जो जुए में अपने को और अपने सर्वस्व धन को पराजित हो जाता है, वह बहुत थोड़ी-हानि है, यही सबसे बड़ी हानि है जो कि तथागत के प्रति मन को दूषित करना है ॥ ३ ॥

आर्य पुरुष की निन्दा करने वाला अपने मन और वचन को पाप में लगाकर उस नरक में उत्पन्न होता है जहां की आयु एक लाख निरबुंद और एकतालीस अबुंद है ॥ ४ ॥

असत्यवादी नरक को जाता है और जो कोई काम करके कहता है कि मैंने ऐसा नहीं किया वह भी । हीन कर्म करने वाले वे दोनों मनुष्य परलोक में समान होते हैं ॥ ५ ॥

जो दोष रहित, शुद्ध, निर्मल पुरुष को दोष लगाता है, उसका पाप उल्टी हवा में फेंकी सूक्ष्म धूल की तरह उसी मूर्ख पर पड़ता है ॥ ६ ॥

जो श्रद्धा रहित है, जो दूसरों को दान देना नहीं सह सकता, जो किसी की बात नहीं सुनता, कंजूस है, चुगलखोरी में लगा है और लोभ में पड़ा है, वह वचन से दूसरों की निन्दा करता है ॥७॥

दुर्वच, झूठ बोलने वाले, अनार्य, वृद्धि-नाशक, पापी, बुरे कर्म करने वाले, अधम पुरुष और नीच नरक में जाने वाले तुम यहाँ बहुत मत बोलो ॥ ८ ॥

तुम पापकारी सन्तों की निन्दा करके अपने अहित का कर्म करते हो । अनेक वुराइयों को करके वहुत समय के लिये गड्ढे में गिरोगे ॥ ९ ॥

किसी का कर्म नष्ट नहीं होता । कर्ता उसे प्राप्त करता ही है । पापकारी मूर्ख अपने को परलोक में दुःख में पड़ा पाता है ॥ १० ॥

वह लोहे के काँटों और तीक्ष्ण धार वाली लोहे की बर्छियों से सताये जाने वाले नरक में गिरता है । वहां तपे लोहे के गोले के समान उसके अनुरूप भोजन है ॥ ११ ॥

नरकपाल उनसे मीठी बातें नहीं करते । वे प्रसन्न मुख से रक्षार्थ उनके पास नहीं आते । वे बिछे हुए अंगार पर सोते हैं और भभकती हुई आग में प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥

नरकपाल जाल से वन्द करके लोहे के हथौड़ों से उनको कूटते हैं । वे घोर अन्धकार में पड़ते हैं जो विस्तृत पृथ्वी की तरह फैला है ॥ १३ ॥

अथ लोहमयं पन कुम्भिं, अग्गिनिसमं जलितं पविसन्ति ।
पच्चन्ति हि तासु चिररत्तं, अग्गिनिसमासु समुप्पिलवासो[1] ॥१४॥

अथ पुब्बलोहितमिस्से, तत्थ किं पच्चति किब्बिसकारी ।
यं यं दिसतं[2] अधिसेति, तत्थ किलिस्सति सम्फुसमानो ॥१५॥

पुलवावसथे सलिलस्मिं, तत्थ किं पच्चति किब्बिसकारी ।
गन्तुं न हि तीरमपत्थि, सब्बसमा हि समन्तकपल्ला ॥१६॥

असिपत्तवनं पन तिण्हं, तं पविसन्ति समच्छिदगत्ता[3] ।
जिव्हं बळिसेन गहेत्वा, आरचया रचया विहनन्ति ॥१७॥

अथ वेतरणिं पन दुग्गं, तिण्हधारं खुरधारमुपेति ।
तत्थ मन्दा पपतन्ति, पापकरा पापानि करित्वा ॥१८॥

खादन्ति हि तत्थ रुदन्ते, सामा सबला काकोलगणा च ।
सोणा सिगाला[4] पटिगिज्झा[5], कुलला वायसा च वितुदन्ति ॥१९॥

किच्छा वतायं इध वुत्ति, यं जनो पस्सति[6] किब्बिसकारी ।
तस्मा इध जीवितसेसे, किच्चकरो सिया नरो न[7] च पमज्जे[8] ॥२०॥

ते गणिता विदूहि तिलवाहा, ये पदुमे निरये उपनीता ।
नहुतानि हि कोटियो पञ्च भवन्ति, द्वादस कोटिसतानि पुनञ्ञा[9] ॥२१॥

यावदुक्खा[10] निरया इध वुत्ता, तत्थपि ताव चिरं वसितब्बं ।
तस्मा सुचिपेसलसाधुगुणेसु, वाचं मनं सततं[11] परिरक्खे'ति ॥२२॥

कोकालिक-सुत्तं निट्ठितं ।

११. नाळक-सुत्तं (३, ११)

आनन्दजाते तिदसगणे पतीते, सक्कञ्च इन्दं सुचिवसने च देवे ।
दुस्सं गहेत्वा अतिरिव थोमयन्ते, असितो इसि अद्दस दिवाविहारे ॥१॥

१. समुप्पिलवाते—म० । २. दिसकं—म० । ३. समुच्छिदगत्ता—म० । ४. सिंगला—म० । ५. पटिगिद्धा—म०; सी० । ६. फुसति—म० । ७-८. चप्पमज्जे—म० । ९. पनञ्ञे—क० । १०. दुखा—म०; दुक्ख—रो०, क० । ११. पकतं—स्या० ।

तब वे आग के समान जलती लोहे की कड़ाही में गिरते हैं, और आग के समान उसमें चिरकाल तक ऊपर नीचे आते जाते पचते रहते हैं ॥ १४ ॥

तब पीव और लोहू से लथपथ हो पापकारी किस प्रकार पचता है। जहाँ जहाँ वह लेटता है, वहाँ-वहाँ उनसे लथपथ हो मलिन हो जाता है ॥ १५ ॥

पापकारी कीड़ों से भरे पानी में किस प्रकार पचता है वह कहीं तीर को नहीं पा सकता, क्योंकि चारों ओर कड़ाह हैं ॥ १६ ॥

घायल शरीर हो वे तीक्ष्ण असिपत्र वन में प्रवेश करते हैं। नरकपाल उनकी जीभ को काँटों से पकड़ कर उनका वध करते हैं ॥ १७ ॥

तब वे छूरे की धार के समान तीक्ष्ण धारा वाली दुस्तर वैतरणी नदी में गिरते हैं। मूर्ख पापकारी पाप कर उसी में गिरते हैं ॥ १८ ॥

वहाँ काले और चितकबरे कौवे उन्हें खा जाते हैं। कुत्ते, गीदड़, गृध्र, चील और कौवे चाव के साथ उन्हें नोंचते हैं ॥ १९ ॥

पापकारी मनुष्य नरक में जिस जीवन का अनुभव करता है, वह दुःखमय है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने शेष जीवन में अच्छे कर्म करे और प्रमाद न करे ॥ २० ॥

पद्म नरक में जो उत्पन्न होते हैं उनकी आयु पण्डितों की गिनती के अनुसार तिल के भार (एक-एक कर) गिने जाने की तरह लम्बी है, जो पाँच नरक कोटि और बारह सौ कोटि के बराबर है ॥ २१ ॥

यहाँ जितने भी नरक-दुःख बताये गये हैं उसे इन सबको चिरकाल तक भोगना पड़ता है। इसलिए पवित्र, उत्तम साधुओं के प्रति अपना मन और वचन सदा संयत रखे ॥ २२ ॥

कोकालिकसुत्त समाप्त।

११—नाळकसुत्त (३, ११)

[असित ऋषि के भांजे नाळक को भगवान् बुद्ध का उपदेश।]

असित ऋषि ने (तुषित देवलोक में) दिन के विहार के लिए जाकर देखा कि सभी देवता आनन्दित हैं, प्रसन्न हैं। देवता और इन्द्र सत्कार पूर्वक शुद्ध वस्त्र धारण किए हुए हैं तथा वस्त्र लेकर[1] अत्यधिक स्तुति कर रहे हैं ॥ १ ॥

---

१. वस्त्र उछालते हुए—अट्ठकथा।

दिस्वान देवे मुदितमने उदग्गे, चित्ति करित्वान[1] इदमवोच[2] तत्थ ।
"किं देवसङ्घो अतिरिव कल्यरूपो, दुस्सं गहेत्वा भमयथ[3] किं पटिच्च ।२

यदा'पि आसि असुरेहि सङ्गमो, जयो सुरानं असुरा पराजिता ।
तदा'पि नेतादिसो लोमहंसनो, किं अब्भुतं दट्ठु मरू पमोदिता ॥३॥

सेलेन्ति गायन्ति च वादयन्ति च, भुजानि पोठेन्ति[4] च नच्चयन्ति च ।
पुच्छामि वोहं मेरुमुद्धवासिने[5], धुनाथ मे संसयं खिप्प मारिसा" ॥४॥

"सो बोधिसत्तो रतनवरो अतुल्यो, मनुस्सलोके हितसुखताय[6] जातो ।
सक्यानं गामे जनपदे लुम्बिनेय्ये, तेन'म्ह तुट्ठा अतिरिव कल्यरूपा ॥५॥

सो सब्बसत्तुत्तमो अग्गपुग्गलो, नरासभो सब्बपजानं उत्तमो ।
वत्तेस्सति चक्कं इसिह्वये वने, नदं'व सीहो बलवा मिगाभिभू" ॥६॥

तं सद्दं सुत्वा तुरितमवंसरी सो, सुद्धोदनस्स तद भवनमुपागमि[7] ।
निसज्ज तत्थ इदमवोचासि सक्ये, "कुहिं कुमारो अहमहि दट्ठु कामो" ॥७

ततो कुमारं जलितमिव सुवण्णं, उक्कामुखे'व सुकुसलसम्पहट्ठं ।
दद्दल्लमानं सिरिया अनोमवण्णं, दस्सेसुं पुत्तं असितह्वयस्स सक्या ।८।

दिस्वा कुमारं सिखिमिव पज्जलन्तं, तारासभं'व नभसिगमं विसुद्धं ।
सुरियं तपन्तं सरदरिव'ब्भमुत्तं, आनन्दजातो विपुलमलत्थ पीतिं ।९।

अनेकसाखञ्च सहस्समण्डलं, छत्तं मरू धारयुं अन्तलिक्खे ।
सुवण्णदण्डा वीतिपतन्ति चामरा, न दिस्सरे चामरछत्तगाहका ॥१०॥

दिस्वा जटी कण्हसिरिह्वयो इसि, सुवण्णनिक्खं विय पण्डुकम्बले ।
सेतञ्च छत्तं धारयन्तं[8] मुद्धनि, उदग्गचित्तो सुमनो पटिग्गहे ॥११॥

---

१. करित्वा– सी० । २. इधमवोचासि–सी० । ३. रमयथ–म०, स्या० । ४. फोटेन्ति—म०, पोथेन्ति–क० । ५. मेरुमुद्धवासिनी—सी० । ६. हितसुखत्थाय—म० । ७. भवनं उपविसि—म० । ८. धरियन्ति—म०; धारियन्ति–स्या० ।

देवताओं को प्रसन्न और हर्षित मन देखकर विचार कर (असित ऋषि ने) वहाँ यह कहा—"किस कारण देवगण अत्यन्त प्रसन्न हो वस्त्र लेकर घूम रहा है ? क्या कारण है ? ॥ २ ॥

जिस समय असुरों से युद्ध हुआ था, देवताओं की विजय हुई थी और असुर पराजित हुए थे, उस समय भी ऐसा रोमांचकारी आनन्द नहीं मनाया गया था, किस अद्भुत बात को देखने के लिए देवता प्रमुदित हैं ? ॥ ३ ॥

देवता चिल्लाते हैं, गाते हैं, बजाते हैं, भुजाओं को फड़काते हैं और नाचते हैं। मैं मेरु शिखर पर रहने वाले आप लोगों से पूछता हूँ, मार्ष ! मेरे संशय को शीघ्र दूर करें ॥ ४ ॥

"वह अतुलनीय, श्रेष्ठ-रत्न, बोधिसत्व मनुष्यों के हित सुख के लिए मनुष्य लोक में शाक्य जनपद के लुम्बिनी ग्राम में उत्पन्न हुए हैं, इसीलिए हम लोग अत्यधिक तुष्ट और प्रसन्न हैं ॥ ५ ॥

वह सब प्राणियों में उत्तम, श्रेष्ठ-व्यक्ति, सब मनुष्यों में श्रेष्ठ, सारी प्रजा में उत्तम जिस प्रकार बलवान् मृगराज सिंह गर्जना करता है उसी प्रकार ऋषि-वन (=ऋषिपतन) में (धर्म–) चक्र का प्रवर्तन करेंगे ॥ ६ ॥

उस बात को सुनकर वह (असित ऋषि) शीघ्र शुद्धोदन के भवन में आए। वहाँ बैठकर शाक्यों से यह कहे—"कुमार कहाँ हैं ? मैं भी देखना चाहता हूँ ॥७॥

तब सुन्दर ढंग से निर्मित, चमकदार, स्वर्ण के समान कान्ति से दमकते हुए उत्तम रूपवान् पुत्र को शाक्यों ने असित ऋषि को दिखलाया ॥ ८ ॥

जलती आग, आकाश में निर्मल चन्द्रमा और मेघ रहित शरद में सूर्य के समान तपते हुए कुमार को देखकर ऋषि आनन्दित हो गए और उन्हें विपुल प्रीति उत्पन्न हो आई ॥ ९ ॥

आकाश में देवताओं ने अनेक शाखा और सहस्र मण्डल वाले छत्र को धारण किया, स्वर्ण दण्ड लगे चामर (=चँवर) डुलाये, किन्तु चामर और छत्र को धारण करने वाले दिखाई नहीं दे रहे थे ॥ १० ॥

जटाधारी असित नामक ऋषि ने पीतवर्ण कम्बल में रखी स्वर्ण मुद्रा के समान सुन्दर, ऊपर श्वेत छत्रधारी कुमार को देख हर्षित और प्रमुदित मन हो उन्हें ग्रहण किया ॥ ११ ॥

पटिग्गहेत्वा पन सक्यपुङ्गवं, जिगिंसको[1] लक्खणमन्तपारगू।
पसन्नचित्तो गिरमब्भुदीरयि, अनुत्तरायं द्विपदानमुत्तमो[2] ॥१२॥
अथ'त्तनो गमनमनुस्सरन्तो, अकल्यरूपो गळयति अस्सुकानि।
दिस्वान सक्या इसिमवोचुं रुदन्तं,नो चे कुमारे भविस्सति अन्तरायो १३
दिस्वान सक्ये इसिमवोच अकल्ये,"नाहं कुमारे अहितमनुस्सरामि।
न चापि'मस्स भविस्सति अन्तरायो,न ओरकायं अधिमनसा[3]भवाथ॥१४
"सम्बोधियग्गं फुसिस्सतायं कुमारो,सो धम्मचक्कं परमविसुद्धदस्सी।
वत्तेस्सतायं बहुजनहितानुकम्पी,वित्थारिकस्स भविस्सति ब्रह्मचरियं॥१५
"ममञ्चायु न चिरमिधावसेसो,अथ'न्तरा मे भविस्सति कालकिरिया।
सो'हं न सुस्सं[4]असमधुरस्स धम्मं,तेन'म्हि अट्टो व्यसनगतो अघावी" १६
सो साकियानं विपुलं जनेत्व पीतिं, अन्तेपुरम्हा निगमा[5] ब्रह्मचारी।
सो भागिनेय्यं सयमनुकम्पमानो, समादपेसि असमधुरस्स धम्मे ॥१७
"बुद्धो'ति घोसं यद[6]परतो सुणासि, सम्बोधिपत्तो विचरति धम्ममग्गं।
गन्त्वान तत्थ समयं[7] परिपुच्छियानो[8],
चरस्सु तस्मिं भगवति ब्रह्मचरियं" ॥१८॥
तेनानुसिट्ठो हितमनसेन[9] तादिना, अनागते परमविसुद्धदस्सिना।
सो नालको उपचितपुञ्ञसञ्चयो,
जिनं पतिक्खं परिवसि रक्खितिन्द्रियो ॥१९॥
सुत्वान घोसं जिनवरचक्कवत्तने, गन्त्वान दिस्वा इसिनिसभं पसन्नो।
मोनेय्यसेट्ठं मुनिपवरं अपुच्छि,समागते असितव्हयस्स सासने'ति॥२०॥

वत्थुगाथा निट्ठिता।

अञ्ञातमेतं वचनं, असितस्स यथातथं।
तं तं गोतम पुच्छाम, सब्बधम्मान पारगुं ॥ २१ ॥
अनगारियुपेतस्स, भिक्खाचरियं जिगिंसतो।
मुनि पब्रूहि मे पुट्ठो, मोनेय्यं उत्तमं पदं ॥ २२ ॥

---

१. जिगीसको—म०। २. द्विपदानमुत्तमो—म०। ३. अधिमनसा—म०। ४. सोस्सं—म०। ५. निग्गमा—म०; निरगमा—स्या०। ६. यदि—स्या०, क०। ७. सयं—सी०। ८. परिपुच्छमानो—म०। ९. हितमनेन—म०, स्या०।

उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को नमस्कार है

सुत्तनिपात

१. उरग-वग्ग

१—उरगसुत्त (१, १)

[इस सुत्त में निर्वाण-प्राप्त भिक्षुओं के गुणों का वर्णन है; जिसमें सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति उनके इस लोक और परलोक को त्यागने की बात कही गई है।]

जिस प्रकार शरीर में व्याप्त सर्प के विष को औषधि द्वारा शान्त कर दे, उसी प्रकार जो भिक्षु उत्पन्न हुए क्रोध को शान्त कर देता है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥ १ ॥

जिस प्रकार तालाब में प्रवेश कर कमल के पुष्प को तोड़े, उसी प्रकार जिस भिक्षु ने सम्पूर्ण राग को नष्ट कर दिया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥ २ ॥

जिस प्रकार तेज बहने वाली नदी को सुखा दे, उसी प्रकार जिस भिक्षु ने सम्पूर्ण अभिमान को उखाड़ फेंका है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार बहुत ही कमजोर नरकट के पुल को बड़ी बाढ़ बहा ले जाय, उसी प्रकार जिस भिक्षु ने सम्पूर्ण अभिमान को उखाड़ फेंका है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥ ४ ॥

जिस प्रकार गूलर के वृक्ष में पुष्प खोजने पर भी न पावे, उसी प्रकार जिस भिक्षु ने संसार में किसी प्रकार के सार (=तत्व) को नहीं पाया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥५॥

जिस भिक्षु के भीतर क्रोध नहीं है और जो पुण्य-पाप से रहित हो गया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥६॥

जिस भिक्षु के वितर्क नष्ट हो गये है और जिसका चित्त पूर्ण रूप से संयत हो गया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥७॥

जो भिक्षु न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जिसने सारे सांसारिक प्रपंचों को पार कर लिया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥८॥

उत्तम शाक्य कुमार को ग्रहण कर, लक्षण शास्त्र और वेद-पारंगत जिज्ञासु ऋषि ने प्रसन्न मन से यह बात कही—"यह सर्वोत्तम हैं ! मनुष्यों में उत्तम हैं !" ॥ १२ ॥

तब अपने (परलोक-) गमन का स्मरण करते हुए उनके नेत्रों से आँसू पघरने लगे । शाक्यों ने ऋषि को रोता हुआ देख कहा—"क्या कुमार के लिए कोई विघ्न तो नहीं होगा ?" ॥ १३ ॥

ऋषि ने शाक्यों को दुःखित देखकर कहा—"मैं कुमार का कोई अहित नहीं देखता और न उनका कोई विघ्न होगा । यह साधारण मनुष्य नहीं हैं ।" आप लोग प्रसन्न हों ॥ १४ ॥

उत्तम, विशुद्धदर्शी यह कुमार सम्बोधि को प्राप्त करेंगे और बहुजन के प्रति अनुकम्पा कर उनके हित के लिए धर्मचक्र का प्रवर्तन करेंगे, उनका ब्रह्मचर्य फैलेगा ॥ १५ ॥

यहाँ मेरी आयु अधिक शेष नहीं है । इस बीच में ही मेरी मृत्यु हो जायेगी, सो मैं असदृश्य पराक्रमी के धर्म को नहीं सुन पाऊँगा, इसीलिए मैं आतुर हूँ, कष्ट में हूँ और दुःखित हूँ ॥ १६ ॥

शाक्यों को विपुल आनन्द देकर वह ब्रह्मचारी अन्तःपुर से निकले । उन्होंने अपने भांजे पर अनुकम्पा करके उसे असदृश्य पराक्रमी के धर्म में लगाया ॥१७॥

"सम्बोधि प्राप्त, धर्म मार्ग का उपदेश देने वाले 'बुद्ध' का घोष, जब दूसरे से सुनना तो उनके पास जा, धर्म के विषय में पूछकर उन भगवान् के पास ब्रह्मचर्य का पालन करना ॥ १८ ॥

हितैषीभाव से स्थिर, उत्तम, विशुद्ध भविष्य-द्रष्टा से उपदिष्ट पुण्यवान् उन नालक ने जिन (=बुद्ध) की प्रतीक्षा में तपस्वी हो इन्द्रियों की रक्षा की ॥१९॥

धर्मचक्र-प्रवर्तन के समय बुद्ध का घोष सुनकर, पास जा, श्रेष्ठ ऋषि को देख धर्म के विषय में असित के सिखाये प्रश्नों को उत्तम प्रज्ञ से पूछा ॥ २० ॥

वस्तुगाथा समाप्त ।

नालक—मैंने यह बात असित (ऋषि) से यथार्थ रूप से जानी थी । सभी धर्मों के पारंगत हे गौतम ! मैं उसे आपसे पूछ रहा हूँ ॥ २१ ॥

बेघर हो भिक्षा पर जीने वाले मुझे प्रश्न करने पर उत्तम पद के विषय में मुनि बतलायें ॥ २२ ॥

मोनेय्यं ते उपञ्ञिस्सं (ति भगवा), दुक्करं दुरभिसम्भवं।
हन्द ते नं पवक्खामि, सन्थम्भस्सु दळ्हो भव ॥२३॥

समानभावं[1] कुब्बेथ, गामे अक्कुट्ठवन्दितं।
मनोपदोसं रक्खेय्य, सन्तो अनुण्णतो चरे ॥ २४ ॥

उच्चावचा निच्छरन्ति, दाये अग्गिसिखूपमा।
नारियो मुनिं पलोभेन्ति, तासु तं मा पलोभयुं ॥ २५ ॥

विरतो मेथुना धम्मा, हित्वा कामे परोवरे[2]।
अविरुद्धो असारत्तो, पाणेसु तसथावरे ॥ २६ ॥

यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये ॥ २७ ॥

हित्वा इच्छञ्च लोभञ्च, यत्थ सत्तो पुथुज्जनो।
चक्खुमा पटिपज्जेय्य, तरेय्य नरकं इमं ॥ २८ ॥

ऊनूदरो मिताहारो, अप्पिच्छस्स अलोलुपो।
स वे[3] इच्छाय निच्छातो, अनिच्छो होति निब्बुतो ॥ २९ ॥

स पिण्डचारं चरित्वा, वनन्तमभिहारये।
उपट्ठितो रुक्खमूलस्मिं, आसनूपगतो मुनि ॥ ३० ॥

स झानपसुतो धीरो, वनन्ते रमितो सिया।
झायेथ रुक्खमूलस्मिं, अत्तानं अभितोसयं ॥ ३१ ॥

ततो रत्या विवसने[4], गामन्तमभिहारये।
अव्हानं नाभिनन्देय्य, अभिहारञ्चगामतो ॥ ३२ ॥

न मुनि गाममागम्म, कुलेसु सहसा चरे।
घासेसनं छिन्नकथो, न वाचं पयुतं भणे ॥ ३३ ॥

अलत्थं यदिदं साधु, नालत्थं कुसलं इति।
उभयेनेव सो तादी, रुक्खं'व[5] उपनिवत्तति[6] ॥ ३४ ॥

---

१. समानभागं—म०। २. परो धरे—म०; वरावरे—स्या०। ३. चे—सी०; सदा—म०।
४. विवसाने—म०। ५-६. रुक्खं वुपनिवत्तति—म०; रुक्खं व उपातिवत्तति—स्या०।

भगवान्—दुष्कर और कठिनता से प्राप्त ज्ञान मार्ग की मैं व्याख्या करूँगा। मैं अब उसके विषय में तुम्हें बताऊँगा, इसलिए तुम स्थिर चित्त और दृढ़ हो जाओ ॥ २३ ॥

ग्राम में जो वन्दना करते हैं या जो निन्दा करते हैं, उनके प्रति समान भाव रखे, मन को दूषित न होने दे, शान्त और विनीत होकर विचरण करे ॥ २४ ॥

दावाग्नि की ज्वाला के समान नाना प्रकार के आलम्बन (=आकर्षण) उपस्थित होते हैं। स्त्रियां मुनि को प्रलोभित करती हैं। उनके प्रति तुम प्रलोभित मत हो ॥ २५ ॥

मैथुन धर्म से विरत हो अच्छे-बुरे काम-भोगों को त्यागकर स्थावर और जंगम प्राणियों के प्रति विरोधभाव या आसक्ति रहित होवे ॥ २६ ॥

जैसा मैं हूँ, वैसे ये प्राणी भी हैं। जैसे ये प्राणी हैं, वैसा मैं हूँ। इस प्रकार अपने समान समझकर न तो किसी का वध करे और न कराये ॥ २७ ॥

जिस इच्छा और लोभ में पृथक् जन प्राणी आसक्त रहता है उसे त्यागकर चक्षुष्मान् विचरण करे और इस नरक को पारकर जाय ॥ २८ ॥

जो पेटू नहीं होता, मात्रा से भोजन करता है, अल्पेच्छ और लोभ रहित होता है, वहीं इच्छा से रहित सन्तोषी व्यक्ति शान्त होता है ॥ २९ ॥

भिक्षा करके वह मुनि वन में जाय और पेड़ के नीचे जा आसन लगा कर बैठे ॥ ३० ॥

वन में रहते हुए वह धीर ध्यान तत्पर होवे, अपने को सन्तोष प्रदान कर पेड़ के नीचे ध्यान करे ॥ ३१ ॥

तब रात्रि के बीतने पर प्रातः भिक्षा के लिए गाँव में प्रवेश करे। वहाँ न तो किसी का निमंत्रण स्वीकार करे और न किसी के द्वारा गाँव से लाये गये भोजन को ॥ ३२ ॥

मुनि गाँव में आकर सहसा कुलों में विचरण न करे। चुपचाप रहकर भिक्षाटन करे, संकेत करने वाली कोई बात न बोले ॥ ३३ ॥

यदि कुछ मिल जाय तो उत्तम है और न मिले तो भी ठीक है। एक स्थान पर स्थित वृक्ष के समान वह दोनों ही अवस्थाओं में समान रहता है ॥ ३४ ॥

स पत्तपाणी विचरन्तो, अमूगो मूगसम्मतो।
अप्पं दानं न हीळेय्य,[1] दातारं नावजानिय ॥ ३५ ॥

उच्चावचा हि पटिपदा, समणेन पकासिता।
न पारं दिगुणं यन्ति, न इदं एकगुणं मुतं ॥ ३६ ॥

यस्स च विसता नत्थि, छिन्नसोतस्स भिक्खुनो।
किच्चाकिच्चप्पहीनस्स, परिळाहो न विज्जति ॥ ३७ ॥

मोनेय्यं ते उपञ्ञिस्सं (ति भगवा), खुरधारूपमो भवे।
जिव्हाय तालुमाहच्च, उदरे संयतो सिया ॥ ३८ ॥

अलीनचित्तो च सिया, न चापि बहु चिन्तये।
निरामगन्धो असितो, ब्रह्मचरियपरायणो ॥ ३९ ॥

एकासनस्स सिक्खेथ, समणूपासनस्स च।
एकत्तं मोनमक्खातं, एको च अभिरमिस्सति।
अथ भासिहि[2] दस दिसा ॥ ४० ॥

सुत्वा धीरानं निग्घोसं, झायीनं कामचागीनं।
ततो हिरिञ्च सद्धञ्च, भिय्यो कुब्बेथ मामको ॥ ४१ ॥

तं नदीहि विजानाथ, सोब्भेसु[3] पदरेसु च।
सणन्ता यन्ति कुस्सोब्भा, तुण्ही याति महोदधि ॥ ४२ ॥

यदूनकं तं सणति, यं पूरं सन्तमेव तं।
अड्ढकुम्भूपमो बालो, रहदो पूरो'व पण्डितो ॥ ४३ ॥

यं समणो बहु भासति, उपेतमत्थसंहितं।
जानं सो धम्मं देसेति, जानं सो बहु भासति ॥ ४४ ॥

यो च जानं संयतत्तो, जानं न बहु भासति।
स मुनी मोनमरहति, स मुनी मोनमज्झगा"ति ॥ ४५ ॥

नालकसुत्तं निट्ठितं।

---

१. हीळेय्य—म०। २. भाहिसि—म०। ३. कुसोब्भा—म०।

गूँगा न होते हुए भी गूँगे की भाँति हाथ में (भिक्षा) पात्र लेकर विचरण करते हुए अल्प दान कर अनादर न करे और न तो दाता की निन्दा करे ॥३५॥

श्रमण (=भगवान् बुद्ध) द्वारा अच्छे-बुरे मार्ग बतलाये गए हैं। लोग दो बार संसार-सागर के पार नहीं जाते और न तो इस पार को एक बारगी ही प्राप्त किया जा सकता है ॥ ३६ ॥

जिसमें तृष्णा नहीं है, जिस भिक्षु का (भव-) स्रोत नष्ट हो गया है, जो कृत्या-कृत्य से परे है, उसे किसी प्रकार का संताप नहीं होता ॥ ३७ ॥

मैं तुम्हें ज्ञानयोग (=मौनेय) को बताऊँगा। वह छूरे की धार के समान होता है। तालू से जीभ सटा कर पेट के प्रति संयमी बने ॥ ३८ ॥

आलस्य रहित चित्त वाला बने, बहुत चिन्तन न करे, क्लेश-रहित और अनासक्त हो ब्रह्मचर्य का पालन करे ॥ ३९ ॥

एक आसन पर रहने का अभ्यास करे और श्रमणों की संगति करे। एकान्त-वास मौनेय कहा जाता है। यदि अकेले विहार करेगा तो दसों दिशाओं को प्रकाशित करेगा ॥ ४० ॥

ध्यानी, विषय-वासना-त्यागी धीरों के घोष को सुनकर श्रद्धालु व्यक्ति (पाप कर्म करने में) लज्जा करे और (पुण्य कर्मों के करने में) श्रद्धा को अधिका-धिक बढ़ावे ॥ ४१ ॥

छोटी नदियों और नालों के मध्य उसे नदी समझे। छोटी नदी शोर करते बहती है, किन्तु सागर चुपचाप बहता है ॥ ४२ ॥

जिसमें कमी होती है वह शोर करता है, जो पूर्ण होता है, वह शान्त होता है। मूर्ख आधे भरे घड़े की तरह है, किन्तु पण्डित भरे हुए जलाशय की तरह ॥ ४३ ॥

जो श्रमण अर्थयुक्त बहुत बात बोलता है, वह जानते हुए धर्म का उपदेश देता है और जानते हुए ही बहुत बोलता है ॥ ४४ ॥

जो जानते हुए भी संयम के कारण जाने हुए (धर्म) को बहुत नहीं कहता है, वह मुनि मौनेय के योग्य है। उस मुनि ने मौनेय (=ज्ञान) को प्राप्त कर लिया है ॥ ४५ ॥

नालकसुत्त समाप्त।

१२. द्वयतानुपस्सना-सुत्तं (३, १२)

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। तेन खो पन समयेन भगवा तदहुपोसथे पण्णरसे पुण्णाय पुण्णमाय रत्तिया भिक्खुसङ्घपरिवुतो अब्भोकासे निसिन्नो होति। अथ खो भगवा तुण्हीभूतं तुण्हीभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"ये ते, भिक्खवे, कुसला धम्मा अरिया निय्यानिका सम्बोधगामिनो, तेसं, वो भिक्खवे, कुसलानं धम्मानं अरियानं निय्यानिकानं सम्बोधगामीनं का उपनिसा सवनायाति इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु, एवं अस्सु ते वचनीया—यावदेव द्वयतानं धम्मानं यथाभूतं ञाणायाति। किञ्च द्वयतं वदेथ? इदं दुक्खं, अयं दुक्खसमुदयो'ति–अयं एकानुपस्सना। अयं दुक्खनिरोधो, अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा'ति—अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्माद्वयतानुपस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं–दिट्ठेव धम्मे अञ्ञा, सति वा उपादिसेसे अनागामिता"ति। इदमवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"ये दुक्खं नप्पजानन्ति, अथो दुक्खस्स सम्भवं।
यत्थ च सब्बसो दुक्खं, असेसं उपरुज्झति।
तञ्च मग्गं न जानन्ति, दुक्खूपसमगामिनं॥ १॥
चेतोविमुत्तिहीना ते, अथो पञ्ञाविमुत्तिया।
अभब्बा ते अन्तकिरियाय, ते वे जातिजरूपगा॥ २॥
यत्थ च सब्बसो दुक्खं, असेसं उपरुज्झति।
ये च दुक्खं पजानन्ति, अथो दुक्खस्स सम्भवं।
तञ्च मग्गं पजानन्ति, दुक्खूपसमगामिनं॥ ३॥
चेतोविमुत्तिसम्पन्ना, अथो पञ्ञाविमुत्तिया।
भब्बा ते अन्तकिरियाय, न ते जातिजरूपगा"ति॥ ४॥

१२—द्वयतानुपस्सनासुत्त (३, १२)

[इस सुत्त में प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार दुःख की उत्पत्ति और निरोध को समझाया गया है ।]

ऐसा मैंने सुना । एक समय भगवान् श्रावस्ती के पूर्वाराम में मृगारमाता के प्रासाद में विहार कर रहे थे । उस समय भगवान् पूर्णमांसी की रात्रि में उपोसथ के लिये खुले मैदान में भिक्षु-संघ से घिरे हुए बैठे थे । तब भगवान् ने मौन भाव से बैठे भिक्षु संघ को देखकर भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! ये जो आर्य, उत्तम सम्बोधि की ओर ले जाने वाले धर्म हैं, भिक्षुओ ! इन आर्य, उत्तम सम्बोधि की ओर ले जाने वाले इन कल्याणकर धर्मों को सुनने से क्या लाभ है ?" ऐसा पूछने वाले हों तो उन्हें बताना चाहिए कि इससे दो धर्मों के यथार्थ ज्ञान का लाभ होता है । कौन से दो धर्मों को बताना चाहिए ? यह दुःख और दुःख का हेतु—एक अनुपश्यना (=विचरणीय बात) है, यह दुःख निरोध और दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग—दूसरी अनुपश्यना है । भिक्षुओ ! इन दो बातों का मनन करने वाला, अप्रमत्त, प्रयत्नशील, तत्पर भिक्षु दो फलों में से एक की कामना कर सकता है—इसी जन्म में पूर्ण ज्ञान या वासनाओं के शेष रहने पर अनागामी-भाव ।" भगवान् ने यह कहा । सुगत ने यह कह कर, फिर शास्ता ने यह कहा—

"जो दुःख को नहीं जानते हैं और दुःख की उत्पत्ति को भी, जहाँ सब प्रकार से सम्पूर्ण दुःख शान्त हो जाता है और दुःख ही शान्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को भी नहीं जानते हैं ॥ १ ॥

वे चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति से रहित हैं । वे दुःख का अन्त करने के अयोग्य हैं । वे ही जन्म-जरा में पड़े रहने वाले हैं ॥ २ ॥

जहाँ सब प्रकार से सम्पूर्ण दुःख निरुद्ध हो जाता है, दुःख, दुःख की उत्पत्ति और दुःख की शान्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को जो जानते हैं ॥ ३ ॥

वे चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति से युक्त हैं । वे दुःख का अन्त करने में समर्थ हैं । वे ही जन्म-जरा में नहीं पड़ने वाले हैं ॥ ४ ॥

"सिया अञ्ञेन'पि परियायेन सम्माद्वयतानुपस्सनाति इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु, 'सिया'तिस्सु वचनीया। कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं उपधिपच्चयाति–अयं एकानुपस्सना। उपधीनं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा....पे०....अनागामिता"ति अथापरं एतदवोच सत्था—

"उपधीनिदाना पभवन्ति दुक्खा, ये केचि लोकस्मिमनेकरूपा।
यो वे अविद्वा उपधिं करोति, पुनप्पुनं दुक्खमुपेति मन्दो।
तस्मा पजानं उपधिं न कयिरा, दुक्खस्स जातिप्पभवानुपस्सी"ति ॥५॥

"सिया अञ्ञेन'पि परियायेन सम्माद्वयतानुपस्सनाति इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु, 'सिया'तिस्स वचनीया। कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं अविज्जापच्चयाति–अयं एकानुपस्सना। अविज्जायत्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा....पे०....अनागामिता"ति अथापरं एतदवोच सत्था—

"जातिमरणसंसारं, ये वजन्ति पुनप्पुनं।
इत्थभावञ्ञथाभावं, अविज्जा येव सा गति ॥ ६ ॥
अविज्जा ह्यं[1] महामोहो, येनिदं संसितं चिरं।
विज्जागता च ये सत्ता, नागच्छन्ति[2] पुनब्भव"न्ति ॥७॥

"सिया अञ्ञेन'पि....पे०....कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं सङ्खारपच्चयाति–अयं एकानुपस्सना। सङ्खारानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा....पे०....अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं सङ्खारपच्चया।
सङ्खारानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥ ८ ॥

---

१. ह्ायं—म०। २. न ते गच्छन्ति—म०।

क्या कोई दूसरा क्रम भी है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?—ऐसा पूछने वालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है वह वासनाओं के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। वासनाओं की सम्पूर्ण निवृत्ति और निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है·····।···शास्ता ने फिर यह कहा—

जो लोक में अनेक प्रकार के दुःख हैं वे वासनाओं के, कारण उत्पन्न होते हैं। जो मूर्ख वासनाओं में पड़ा रहता है, वह मूढ़ बार-बार दुःख में पड़ता है। इसलिये दुःख की उत्पत्ति और हेतु को जानकर लोगों को वासनाओं में नहीं पड़ना चाहिए ॥ ५ ॥

क्या कोई दूसरा क्रम भी है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?—ऐसा पूछने वालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन-सा है ? जो कुछ दुःख होता है, वह सब अविद्या के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। अविद्या की ही सम्पूर्णतः निवृत्ति से, निरोध से, दुःख उत्पन्न नहीं होता—यह दूसरी अनुपश्यना है····।····। शास्ता ने फिर कहा—

जो लोग जन्म-मृत्यु रूपी संसार में बार-बार पड़ते हैं और इस लोक तथा परलोक में (चक्कर) काटते हैं। उनकी अविद्या ही उस गति का मूल है ॥६॥

यह अविद्या महामोह है। जिसके कारण चिरकाल से चक्कर काट रहे हैं। जो प्राणी विद्या को प्राप्त कर लिए हैं, वे पुनर्जन्म में नहीं पड़ते हैं ॥ ७ ॥

क्या कोई दूसरा क्रम भी है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है वह संस्कारों के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। संस्कारों के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख नहीं होता—यह दूसरी अनुपश्यना है।········।········। शास्ता ने फिर यह कहा—

जो कुछ दुःख होता है, वह सब संस्कारों के कारण ही होता है। संस्कारों के निरोध से दुःख उत्पन्न नहीं होता ॥ ८ ॥

एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं सङ्खारपच्चया।
सब्बसङ्खारसमथा, सञ्ञाय उपरोधना।
एवं दुक्खक्खयो होति, एवं ञत्वा यथातथं ॥९॥
सम्मद्दसा वेदगुनो, सम्मदञ्ञाय पण्डिता।
अभिभुय्य मारसंयोगं, नागच्छन्ति[1] पुनब्भव"न्ति ॥१०॥

"सिया अञ्ञेन'पि···पे०···कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं विञ्ञाणपच्चयाति–अयमेकानुपस्सना। विञ्ञाणस्स त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा···पे०···अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं विञ्ञाणपच्चया।
विञ्ञाणस्स निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥११॥
एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं विञ्ञाणपच्चया।
विञ्ञाणूपसमा भिक्खु, निच्छातो परिनिब्बुतो"ति ॥१२॥

"सिया अञ्ञेन'पि···पे०···कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं फस्सपच्चयाति–अयमेकानुपस्सना असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा ···पे०···अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"तेसं फस्सपरेतानं, भवसोतानुसारिनं।
कुम्मग्गपटिपन्नानं, आरा संयोजनक्खयो ॥१३॥
ये च फस्सं परिञ्ञाय, अञ्ञाय[2] उपसमे[3] रता।
ते वे फस्साभिसमया, निच्छाता परिनिब्बुता"ति ॥१४॥

"सिया अञ्ञेन'पि···पे०···कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं वेदनापच्चयाति-अयमेकानुपस्सना। वेदनानं त्वेव असेसविराग-निरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा···पे०···अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

१. न ते गच्छन्ति—म०। २–३. अञ्ञायुपसमे—सी०, म०।

यो नाच्चसारी न पच्चसारी, सब्बं वितथमिदं'ति ञत्वा[1] लोके।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ९ ॥

यो नाच्चसारी न पच्चसारी, सब्बं वितथमिदं'ति वीतलोभो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१०॥

यो नाच्चसारी न पच्चसारी, सब्बं वितथमिदं'ति वीतरागो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥११॥

यो नाच्चसारी न पच्चसारी, सब्बं वितथमिदं'ति वीतदोसो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१२॥

यो नाच्चसारी न पच्चसारी, सब्बं वितथमिदं'ति वीतमोहो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१३॥

यस्सानुसया न सन्ति केचि, मूला[2] अकुसला समूहतासे।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१४॥

यस्स दरथजा न सन्ति केचि, ओरं आगमनाय पच्चयासे।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१५॥

यस्स वनथजा न सन्ति केचि, विनिबन्धाय भवाय हेतुकप्पा।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१६॥

यो नीवरणे पहाय पञ्च, अनिघो तिण्णकथंकथो विसल्लो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१७॥

उरगसुत्तं निट्ठितं।

---

१. ञत्व—म०। २. मूला च—म०।

संस्कारों के कारण दुःख होता है—इस दुष्परिणाम को जानकर सब संस्कारों की शान्ति और संज्ञा के निरोध से दुःख का क्षय होता है—इसे यथार्थ रूप से जानकर ॥ ९ ॥

सम्यक्दर्शी, ज्ञानी, पण्डित जन भली प्रकार जानकर मार के संयोग को जीतकर[1] पुर्नजन्म में नहीं पड़ते हैं ॥ १० ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है, वह सब विज्ञान के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। विज्ञान के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख उत्पन्न नहीं होता—यह एक दूसरी अनुपश्यना है।····।···। शास्ता ने फिर यह कहा—

जो कुछ दुःख उत्पन्न होता है वह सब विज्ञान के कारण होता है। विज्ञान के निरोध से दुःख उत्पन्न नहीं होता ॥ ११ ॥

विज्ञान के कारण दुःख होता है—इस दुष्परिणाम को जानकर विज्ञान के निरोध से भिक्षु तृष्णा-रहित हो परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है ॥ १२ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब स्पर्श के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। स्पर्श के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है।····।····। शास्ता ने फिर यह कहा—

जो लोग स्पर्श में संलग्न हैं, वे संसार-स्रोत के अनुसार चलने वाले हैं; वे कुमार्ग पर चल रहे हैं, वे सांसारिक बन्धनों के क्षय से दूर हैं ॥ १३ ॥

जो स्पर्श को भली प्रकार जानकर ज्ञानपूर्वक उपशम (=निर्वाण) में रत हैं, वे स्पर्श के निरोध से तृष्णा-रहित हो परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये हैं ॥१४॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब वेदना के कारण उत्पन्न होता है—यह एक अनुपश्यना है। वेदना के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है।···।···। शास्ता ने फिर यह कहा—

---

१. तीनों लोकों को जानकर—अट्ठकथा।

"सुखं वा यदि वा दुक्खं, अदुक्खमसुखं सह ।
अज्झत्तञ्च बहिद्धा च, यं किञ्चि अत्थि वेदितं ॥१५॥
एतं[1] दुक्खन्ति ञत्वा, मोसधम्मं पलोकितं[2] ।
फुस्स फुस्स वयं पस्सं, एवं तत्थ विरज्जति[3] ।
वेदनानं खया भिक्खु, निच्छातो परिनिब्बुतो"ति ॥१६॥

"सिया अञ्ञेनपि···पे०···कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं तण्हापच्चयाति-अयमेकानुपस्सना । तण्हाय त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति-अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा···पे०···अनागामिता"ति । अथापरं एतदवोच सत्था—

"तण्हा दुतियो पुरिसो, दीघमद्धान संसरं ।
इत्थभावञ्ञथाभावं, संसारं नातिवत्तती ॥१७॥
एतं आदीनवं ञत्वा, तण्हा[4] दुक्खस्स सम्भवं ।
वीततण्हो अनादानो, सतो भिक्खु परिब्बजे"ति ॥१८॥

"सिया अञ्ञेनपि···पे०···कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं उपादानपच्चया'ति अयमेकानुपस्सना । उपादानानं[5] त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवो'ति···अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा···पे०···अनागामिता"ति । अथापरं एतदवोच सत्था—

"उपादानपच्चया भवो, भूतो दुक्खं निगच्छति ।
जातस्स मरणं होति, एसो दुक्खस्स सम्भवो ॥१९॥
तस्मा उपादानक्खया, सम्मदञ्ञाय पण्डिता ।
जातिक्खयं अभिञ्ञाय, नागच्छन्ति[6] पुनब्भव"न्ति ॥२०॥

"सिया अञ्ञेन'पि···पे०···कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं आरम्भपच्चया'ति अयमेकानुपस्सना । आरम्भानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवो'ति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा···पे०···अनागामिता"ति । अथापरं एतदवोच सत्था—

---

१. एवं—सी । २. पलोकिनं—म० । ३. विजानति—म० । ४. तण्हं—म० । ५. उपादानस्स—स्या०, क० । ६. न गच्छन्ति—म० ।

सुख, दुःख और उपेक्षा के रूप में जो कुछ भीतर और बाहर की वेदनायें हैं ॥ १५ ॥

जो उन्हें नश्वर और क्षणभंगुर देखकर—यह दुःख है, जानकर भली प्रकार उनके नष्ट होने को देख—इस प्रकार उनसे विरक्त हो जाता है, वह भिक्षु वेदनाओं के क्षय से तृष्णारहित हो परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है ॥ १६ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख होता है, वह सब तृष्णा के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। तृष्णा के सम्पूर्ण निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है।···।···। शास्ता ने फिर यह कहा—

तृष्णा के साथ पुरुष दीर्घकाल से इस लोक तथा परलोक में चक्कर काट रहा है और वह संसार को पार नहीं कर सकता ॥ १७ ॥

तृष्णा के ही कारण दुःख उत्पन्न होता है—इस दुष्परिणाम को जान भिक्षु को चाहिए कि वह तृष्णा-रहित और आसक्ति-रहित हो स्मृति के साथ विचरण करे ॥ १८ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है, वह सब उपादान के कारण उत्पन्न होता है—यह एक अनुपश्यना है। उपादान के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है।···।···। शास्ता ने फिर यहा कहा—

उपादान के कारण भव होता है और प्राणी दुःख को प्राप्त होता है, उत्पन्न हुए की मृत्यु होती है—यह दुःख की उत्पत्ति है ॥ १९ ॥

इसलिये उपादान के क्षय से पण्डित भली प्रकार जानकर हो, जन्म-क्षय को जान, पुर्नजन्म में नहीं पड़ते हैं ॥ २० ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब कर्मयुक्त प्रयत्न से उत्पन्न होता है—यह एक अनुपश्यना है। कर्मयुक्त प्रयत्न के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है। ····।····। शास्ता ने फिर यह कहा—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आरम्भपच्चया।
आरम्भानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥२१॥
एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं आरम्भपच्चया।
सब्बारम्भं पटिनिस्सज्ज, अनारम्भे विमुत्तिनो ॥२२॥
उच्छिन्नभवतण्हस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
वित्तिण्णो जातिसंसारो, नत्थि तस्स पुनब्भवो"ति ॥२३॥

"सिया अञ्ञेन'पि....पे०....कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आहारपच्चया'ति अयमेकानुपस्सना। अहारानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवो"ति अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा....पे०....अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आहारपच्चया।
आहारानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥२४॥
एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं आहारपच्चया।
सब्बाहारं परिञ्ञाय, सब्बाहारमनिस्सितो ॥२५॥
आरोग्यं सम्मदञ्ञाय, आसवानं परिक्खया।
सङ्खाय सेवी धम्मट्ठो, सङ्ख्यं[1]नोपेति वेदगू"ति ॥२६॥

"सिया अञ्ञेन'पि....पे०....कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं इञ्जितपच्चया'ति अयमेकानुपस्सना, इञ्जितानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवो'ति अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा....पे०....अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं इञ्जितपच्चया।
इञ्जितानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥ २७ ॥
एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं इञ्जितपच्चया।
तस्मा एजं वोस्सज्ज, सङ्खारे उपरुन्धिय।
अनेजो अनुपादानो, सतो भिक्खु परिब्बजे"ति ॥ २८ ॥

१. संख्यं-म०।

जो कुछ दुःख उत्पन्न होता है वह सब कर्मयुक्त प्रयत्न से उत्पन्न होता है। प्रयत्न के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥ २१ ॥

दुःख प्रयत्न के कारण होता है—इस दुष्परिणाम को जानकर सारे प्रयत्नों को त्याग कर कर्मयुक्त प्रयत्न-रहित हो विमुक्ति, भवतृष्णा के विनाश में शान्त-चित्त भिक्षु लगे और जन्म रूपी संसार को पार कर ले, फिर उसका पुनर्जन्म नहीं ॥ २२–२३ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?······· कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब आहार[1] के कारण होता है—यह है एक अनुपश्यना। आहारों के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है।····।···शास्ता ने फिर यह कहा—

जो कुछ दुःख उत्पन्न होता है वह सब आहार के कारण उत्पन्न होता है। आहार के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥ २४ ॥

आहार के कारण दुःख होता है—इस दुष्परिणाम को जानकर सभी आहारों से विरक्त होवे ॥ २५ ॥

चित्त-मलों (=आश्रवों) के क्षय से निर्वाण (=आरोग्य) को भली प्रकार जानकर धर्म में स्थित व्यक्ति ज्ञान पूर्वक आहार का सेवन करे। ऐसा व्यक्ति फिर जन्म नहीं ग्रहण करता ॥ २६ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है, वह सब चंचलता के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। चंचलताओं के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती है—यह दूसरी अनुपश्यना है।···।···। शास्ता ने फिर यह कहा—

जो कुछ दुःख उत्पन्न होता है, वह सब चंचलता के कारण उत्पन्न होता है। चंचलताओं के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥ २७ ॥

इसलिए इसे त्याग दे, संस्कारों का निरोध कर दे, तृष्णा और आसक्ति-रहित हो स्मृति के साथ भिक्षु विचरण करे ॥ २८ ॥

१. कर्मसम्प्रयुक्त आहार—अट्ठकथा।

"सिया अञ्ञेन'पि···पे०···कथञ्च सिया ? निस्सितस्स चलितं होति अयमेकानुपस्सना; अनिस्सितो न चलति अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा···पे०···अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"अनिस्सितो न चलति, निस्सितो च उपादियं।
इत्थभावञ्ञथाभावं, संसारं नातिवत्तति ॥ २९ ॥
एतं आदीनवं ञत्वा, निस्सयेसु महब्भयं।
अनिस्सितो अनुपादानो, सतो भिक्खु परिब्बजे"ति ॥ ३० ॥

"सिया अञ्ञेन'पि···पे०···कथञ्च सिया ? रूपेहि, भिक्खवे, आरुप्पा[1] सन्ततरा'ति अयमेकानुपस्सना। आरुप्पेहि[2] निरोधो सन्ततरो'ति अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा···पे०···अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"ये च रूपूपगा सत्ता, ये च आरुप्पवासिनो[3]।
निरोधं अप्पजानन्ता, आगन्तारो पुनब्भवं ॥ ३१ ॥
ये च रूपे परिञ्ञाय, अरूपेसु सुसण्ठिता[4]।
निरोधे ये विमुच्चन्ति, ते जना मच्चुहायिनो"ति ॥ ३२ ॥

"सिया अञ्ञेन'पि···पे०···कथञ्च सिया ? यं, भिक्खवे, सदेवकस्स लोकस्स समारकस्स सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय इदं सच्चन्ति उपनिज्झायितं, तदरियानं एतं मुसाति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुद्दिट्ठं-अयमेकानुपस्सना। यं, भिक्खवे, सदेवकस्स···पे०···सदेवमनुस्साय इदं मुसाति उपनिज्झायितं तदरियानं एतं सच्चन्ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुद्दिट्ठं-अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा···पे०···अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"अनत्तनि अत्तमानिं[5], पस्स लोकं सदेवकं।
निविट्ठं नामरूपस्मिं, इदं सच्चन्ति मञ्ञति ॥ ३३ ॥
येन येन हि मञ्ञन्ति, ततो तं होति अञ्ञथा।
तं हि तस्स मुसा होति, मोसधम्मं हि इत्तरं ॥ ३४ ॥

---

१. अरूपा—म०। २. अरूपेहि—म०। ३. अरूपट्ठायिनो—म०। ४. असण्ठिता—म०।
५. अत्तमानी—स्या०; अत्तमानं—रो०, क०।

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?···· कौन-सा है ? जो तृष्णा में लिप्त रहता है उसमें चंचलता आ जाती है—यह एक अनुपश्यना है। जो तृष्णा में निर्लिप्त रहता है उसमें चंचलता नहीं आती है—यह दूसरी अनुपश्यना है ।···· ।···· । शास्ता ने फिर यह कहा—

जो तृष्णा में लिप्त नहीं है उसमें चंचलता नहीं होती है, किन्तु तृष्णा में लिप्त रहने वाले को चंचलता होती है। वह इस लोक और परलोक में चक्कर काटने से मुक्त नहीं हो पाता ॥ २९ ॥

तृष्णा में लिप्त होने में महाभय है—इस दुष्परिणाम को जानकर तृष्णा में निर्लिप्त और अनासक्त हो स्मृति के साथ भिक्षु विचरण करे ॥ ३० ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?···कौन-सा हैं ? भिक्षुओ ! रूप-लोक से अरूप-लोक शान्ततर है—यह एक अनुपश्यना है। अरूप लोक से निर्वाण शान्ततर है—यह दूसरी अनुपश्यना है ।···· । ··· । शास्ता ने फिर यह कहा—

जो प्राणी रूप लोक में रहते हैं और जो अरूप लोक के निवासी हैं वे निरोध (=निर्वाण) को न जानते हुए पुनर्जन्म में पड़ते हैं ॥ ३१ ॥

और जो रूप को जानकर, अरूप में अनासक्त हैं, जो निर्वाण को प्राप्त विमुक्त हैं, वे लोग मृत्यु का अन्त कर देते हैं ॥ ३२ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?···· कौन-सा है ? भिक्षुओ ! देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे सत्य मान लिया है, आर्यों ने सम्यक् प्रज्ञा से उसे यथार्थतः असत्य समझ लिया है—यह एक अनुपश्यना है। देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे असत्य मान लिया है, आर्यों ने सम्यक् प्रज्ञा से उसे यथार्थतः सत्य समझ लिया है—यह दूसरी अनुपश्यना है ।····।····। शास्ता ने फिर यह कहा—

अनात्मा में आत्मा को मानने वाले देव सहित लोक को देखो। नाम और रूप में संलग्न प्राणी इसे सत्य मानता है ॥ ३३ ॥

जिसे जिस प्रकार का मानते हैं, वह उससे भिन्न होता है। यह उनकी धारणा मृषा (=असत्य) होती है। जो असत्य है, वह नश्वर है। ॥ ३४ ॥

अमोसधम्मं निब्बाणं, तदरिया सच्चतो विदू।
ते वे सच्चाभिसमया, निच्छाता परिनिब्बुता"ति ॥ ३५ ॥

"सिया अञ्ञेनपि परियायेन सम्माद्वयतानुपस्सनाति इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु, 'सिया'तिस्सु वचनीया। कथञ्च सिया? यं, भिक्खवे, सदेवकस्स····पे०····सदेवमनुस्साय इदं सुखन्ति उपनिज्झायितं तदमरियानं एतं दुक्खन्ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं—अथमेकानुपस्सना। यं, भिक्खवे, सदेवकस्स····पे०····सदेवमनुस्साय इदं दुक्खन्ति उपनिज्झायितं, तदमरियानं एतं सुखन्ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्माद्वयतानुपस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं–दिट्ठेव धम्मे अञ्ञा, सति वा उपादिसेसे अनागामिता'ति। इदमवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

रूपा सद्दा रसा गन्धा, फस्सा धम्मा च केवला।
इट्ठा कन्ता मनापा च, यावत्थीति वुच्चति ॥ ३६ ॥

सदेवकस्स लोकस्स, एते वो सुखसम्मता।
यत्थ चेते निरुज्झन्ति, तं तेसं[1] दुक्खसम्मतं ॥ ३७ ॥

सुखन्ति दिट्ठमरियेहि, सक्कायस्सुपरोधनं।
पच्चनीकं इदं होति, सब्बलोकेन पस्सतं ॥ ३८ ॥

यं परे सुखतो आहु, तदरिया आहु दुक्खतो।
यं परे दुक्खतो आहु, तदरिया सुखतो विदु।
पस्स धम्मं दुराजानं, सम्पमूल्हेत्थ[2] अविद्दसु[3] ॥ ३९ ॥

निवुतानं तमो होति, अन्धकारो अपस्सतं।
सतञ्च विवटं होति, आलोको पस्सतं इव।
सन्तिके न विजानन्ति, मगा धम्मस्स कोविदा ॥ ४० ॥

---

१. पेसं—म०। २-३ सम्पमूल्हेत्थ' विद्दसु—म०।

निर्वाण अनश्वर है। आर्यों ने उसे सत्य जान लिया है। सत्य को जानने वाले वे तृष्णा-रहित हो परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है? ....कौन-सा है? भिक्षुओ! देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे सुख मान लिया है, आर्यों ने सम्यक् प्रज्ञा से उसे यथार्थतः दुःख समझ लिया है-- यह एक अनुपश्यना है देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे दुःख मान लिया है, आर्यों ने उसे दुःख समझा है— यह दूसरी अनुपश्यना है। भिक्षुओ! इन दोनों बातों का मनन करने वाला अप्रमत्त, प्रयत्नशील, तत्पर भिक्षु दो फलों में से एक की कामना कर सकता है--इसी जन्म में पूर्ण ज्ञान या वासनाओं के शेष रहने पर अनागामिता। भगवान् ने यह कहा। सुगत ने यह कह कर फिर शास्ता ने यह कहा—

जितने भी इष्ट, प्रिय और मनाप रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श हैं, उन्हें देव सहित लोक ने सुख मान लिया है और जहाँ उनका निरोध होता है, उसे दुःख मान लिया है ॥ ३६-३७ ॥

पाँच स्कन्धों के निरोध को आर्यों ने सुख जान लिया है। सम्यक् दर्शकों का यह अनुभव सांसारिक अनुभव से भिन्न है ॥ ३८ ॥

जिसे दूसरे लोग सुख कहते हैं, उसे आर्य लोग दुःख कहते हैं। जिसे दूसरे लोग दुःख कहते हैं, उसे आर्य लोग सुख मानते हैं। जानने में दुष्कर इस धर्म को देखो। अज्ञ जन इस विषय में सर्वथा मूढ़ हैं ॥ ३९ ॥

(अविद्या से) ढँके हुए लोगों के लिए तम होता है और अज्ञों के लिए अन्धकारमय होता है। सत्पुरुषों के लिए वह प्रकाश देखने के समान खुला होता है। धर्म को न जानने वाले लोग पास रहने पर भी सत्य नहीं जानते हैं ॥४०॥

अट्ठकवग्गो

१. काम-सुत्तं (४, १)

कामं कामयमानस्स, तस्स चेतं समिज्झति ।
अद्धा पीतिमनो होति, लद्धा मच्चो यदिच्छति ॥ १ ॥
तस्स चे कामयमानस्स[1], छन्दजातस्स जन्तुनो ।
ते कामा परिहायन्ति, सल्लविद्धोव रुप्पति ॥ २ ॥
यो कामे परिवज्जेति, सप्पस्सेव पदा सिरो ।
सो[2] इमं[3] विसत्तिकं लोके, सतो समतिवत्तति ॥ ३ ॥
खेत्तं वत्थुं हिरञ्ञं वा, गवास्सं[4] दासपोरिसं ।
थियो बन्धु पुथू कामे, यो नरो अनुगिज्झति ॥ ४ ॥
अबलानं बलीयन्ति, मद्दन्ते नं परिस्सया ।
ततो नं दुक्खमन्वेति, नावं भिन्नमिवोदकं ॥ ५ ॥
तस्मा जन्तु सदा सतो, कामानि परिवज्जये ।
ते पहाय तरे ओघं, नावं सिञ्चित्व[5] पारगू'ति ॥ ६ ॥

कामसुत्तं निट्ठितं ।

२. गुहट्ठक-सुत्तं (४, २)

सत्तो गुहायं बहुनाभिछन्नो, तिट्ठं नरो मोहनस्मिं पगाळ्हो ।
दूरे विवेका हि तथाविधो सो, कामा हि लोके न हि सुप्पहाया ॥ १ ॥
इच्छानिदाना भवसातबद्धा, ते दुप्पमुञ्चा न हि अञ्ञमोक्खा ।
पच्छा पुरे वा'पि अपेक्खमाना, इमेव कामे पुरिमेव जप्पं ॥ २ ॥

१. कामयानस्स—म० । २-३. सोमं—म० । ४. गवस्सं—म० । ५. सित्वाव—म० ।

जो भिक्षु न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जिसने "संसार में सब कुछ निस्सार है"—ऐसा जान लिया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥९॥

जो भिक्षु न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जो "यह सम्पूर्ण निस्सार है"—ऐसा जानकर लोभ-रहित हो गया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥१०॥

जो भिक्षु न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जो "यह सम्पूर्ण निस्सार है"—ऐसा जानकर राग-रहित हो गया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥११॥

जो भिक्षु न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी जो "यह सम्पूर्ण निस्सार है" ऐसा जानकर द्वेष-रहित हो गया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥१२॥

जो भिक्षु न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी' जो "यह सम्पूर्ण निस्सार है"—ऐसा जानकर मोह-रहित हो गया है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥१३॥

जिस भिक्षु में किसी प्रकार की आसक्तियाँ नहीं हैं, अकुशल (=पाप=बुराइयाँ) के मूल (=जड़) नष्ट कर दिये गये हैं, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥ ४॥

जिस भिक्षु में पुनः संसार में उत्पन्न होने के लिए किसी प्रकार का कोई क्लेश (=आसक्ति) नहीं है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छ.ड़ देता है ॥१५॥

जिस भिक्षु में पुनः संसार-बन्धन में डालने के लिए किसी प्रकार की तृष्णा नहीं है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥१६॥

जिस भिक्षु ने पाँच नीवरणों[1] को त्याग दिया है, जो निष्पाप है, सन्देह-रहित है और जिसने सांसारिक आसक्ति रूपी कांटे को उखाड़ फेंका है, वह सर्प की केंचुली छोड़ने की भाँति इस लोक और परलोक को छोड़ देता है ॥१७॥

उरगसुत्त समाप्त ।

---

१. पाँच नीवरण—कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य कौकृत्य और विचिकित्सा—ये पाँच नीवरण हैं। जब तक ये रहते हैं, तब तक समाधि का लाभ नहीं हो सकता। इसी से इन्हें नीवरण (=ढक्कन) कहते हैं। वास्तव में ये चित्त के ढक्कन (=आवरण) हैं।

ऐसा कहने पर किसी भिक्षु ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते ! पद्म नरक की आयु कितनी लम्बी होती है ?"

"भिक्षु ! पद्म नरक की आयु लम्बी होती है। उसकी गणना कर सकना सहज नहीं है कि इतने वर्ष, इतने सौ वर्ष, अथवा इतने लाख वर्ष ?"

"भन्ते ! उपमा दे सकते हैं ?"

"भिक्षु ! सकते हैं। भगवान् ने कहा—जैसे भिक्षु ! बीस खारी[1] तिल अटने वाली कोसल की जो गाड़ी है, एक पुरुष एक हजार वर्ष बीतने पर उसमें से एक तिल निकाल दे, इस क्रम से कालान्तर में बीस खारी तिल से भरी वह गाड़ी खाली हो जायेगी, समाप्त हो जायेगी, किन्तु अर्बुद नरक के जीवन काल की आयु नहीं। भिक्षु ! अर्बुद नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है निरर्बुद नरक का एक जीवन-काल। भिक्षु ! अबब नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है अहह नरक का एक जीवन-काल। भिक्षु ! अहह नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है अटट नरक का एक जीवन-काल। भिक्षु ! अटट नरक के बीस जीवनों के बराबर है कुमुद नरक का एक जीवन-काल। भिक्षु ! कुमुद नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है सोगन्धिक नरक का एक जीवन-काल। भिक्षु ! सोगन्धिक नरक के बीस जीवनों के बराबर है उत्पल नरक का एक जीवन-काल। उत्पल नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है पुण्डरीक नरक का एक जीवन-काल। पुण्डरीक नरक के बीस जीवनों की आयु के बराबर है पद्म नरक का एक जीवन-काल। भिक्षु ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के प्रति द्वेष-चित्त करके कोकालिक भिक्षु पद्म नरक में उत्पन्न हुआ है।" भगवान् ने यह कहा। सुगत ने यह कह कर, शास्ता ने यह कहा—

"इस संसार में उत्पन्न होने वाले पुरुष के मुख में कुठारी उत्पन्न होती है। मूर्ख बुरी बात बोलता हुआ उससे ही अपने को काट डालता है ॥ १ ॥

जो निन्दनीय की प्रशंसा करता है अथवा प्रशंसनीय की निन्दा करता है, वह मुख से पाप करता है और उस पाप के कारण वह सुख को प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥

---

१. एक प्राचीन माप। "चार मन की खारी होती है"—अट्ठकथा।

अप्पमत्तो अयं कलि,
यो अक्खेसु धनपराजयो, सब्बस्सापि सहापि अत्तना।
अयमेव महत्तरो[1] कलि, यो सुगतेसु मनं पदोसये॥३॥

सतं सहस्सानं निरब्बुदानं, छत्तिंस च पञ्च च अब्बुदानि[2]।
यं अरियगरही निरयं उपेति, वाचं मनं च पणिधाय पापकं॥४॥

अभूतवादी निरयं उपेति, यो वा'पि कत्वा न करोमीति चाह।
उभो'पि ते पेच्च समा भवन्ति, निहीनकम्मा मनुजा परत्थ॥५॥

यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति, सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स।
तमेव बालं पच्चेति पापं, सुखुमो रजो पटिवातं'व खित्तो॥६॥

यो लोभगुणे अनुयुत्तो, सो वचसा परिभासति अञ्ञे।
अस्सद्धो कदरियो अवदञ्ञू, मच्छरी पेसुणियस्मि अनुयुत्तो॥ ७॥

मुखदुग्ग विभूतमनरियं, भूनहु[3] पापक दुक्कतकारि।
पुरिसन्तकलि अवजात, मा बहु भाणिध नेरयिको'सि॥ ८॥

रजमाकिरसि अहिताय, सन्ते गरहसि किब्बिसकारी।
बहूनि च दुच्चरितानि चरित्वा, गच्छिसि[4] खो पपतं चिररत्तं॥ ९॥

न हि नस्सति कस्सचि कम्मं, एति हतं लभतेव सुवामि।
दुक्खं मन्दो परलोके, अत्तनि पस्सति किब्बिसकारी॥१०॥

अयोसङ्कुसमाहतट्ठानं, तिण्हधारमयसूलमुपेति।
अथ तत्तअयोगुळसन्निभं, भोजनमत्थि तथा पतिरूपं॥११॥

न हि वग्गु वदन्ति वदन्ता, नाभिजवन्ति न ताणमुपेन्ति।
अङ्गारे सन्थते सेन्ति[5], अग्गिनिसमं जलितं पविसन्ति॥१२॥

जालेन च ओनहियाना, तत्थ हनन्ति अयोमयकूटेहि[6]।
अन्धं'व, तिमिसमायन्ति, तं विततं हि यथा महिकायो॥१३॥

---

१. महन्ततरो—सी० २. अब्बदानं—क०।
३. भुनहत—स्या०, क०। ४. गच्छसि—म०।
५. सयन्ति—म०। ६. अयोमयकुटेभि—म०।

जो जुए में अपने को और अपने सर्वस्व धन को पराजित हो जाता है, वह बहुत थोड़ी-हानि है; यही सबसे बड़ी हानि है जो कि तथागत के प्रति मन को दूषित करना है ॥ ३ ॥

आर्य पुरुष की निन्दा करने वाला अपने मन और वचन को पाप में लगाकर उस नरक में उत्पन्न होता है जहां की आयु एक लाख निरबुंद और एकतालीस अबुंद है ॥ ४ ॥

असत्यवादी नरक को जाता है और जो कोई काम करके कहता है कि मैंने ऐसा नहीं किया वह भी। हीन कर्म करने वाले वे दोनों मनुष्य परलोक में समान होते हैं ॥ ५ ॥

जो दोष रहित, शुद्ध, निर्मल पुरुष को दोष लगाता है, उसका पाप उल्टी हवा में फेंकी सूक्ष्म धूल की तरह उसी मूर्ख पर पड़ता है ॥ ६ ॥

जो श्रद्धा रहित है, जो दूसरों को दान देना नहीं सह सकता, जो किसी की बात नहीं सुनता, कंजूस है, चुगलखोरी में लगा है और लोभ में पड़ा है, वह वचन से दूसरों की निन्दा करता है ॥७॥

दुर्वच, झूठ बोलने वाले, अनार्य, वृद्धि-नाशक, पापी, बुरे कर्म करने वाले, अधम पुरुष और नीच नरक में जाने वाले तुम यहाँ बहुत मत बोलो ॥ ८ ॥

तुम पापकारी सन्तों की निन्दा करके अपने अहित का कर्म करते हो। अनेक वुराइयों को करके वहुत समय के लिये गड्ढे में गिरोगे ॥ ९ ॥

किसी का कर्म नष्ट नहीं होता। कर्ता उसे प्राप्त करता ही है। पापकारी मूर्ख अपने को परलोक में दुःख में पड़ा पाता है ॥ १० ॥

वह लोहे के काँटों और तीक्ष्ण धार वाली लोहे की बर्छियों से सताये जाने वाले नरक में गिरता है। वहां तपे लोहे के गोले के समान उसके अनुरूप भोजन है ॥ ११ ॥

नरकपाल उनसे मीठी वातें नहीं करते। वे प्रसन्न मुख से रक्षार्थ उनके पास नहीं आते। वे विछे हुए अंगार पर सोते हैं और भभकती हुई आग में प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥

नरकपाल जाल से वन्द करके लोहे के हथौड़ों से उनको कूटते हैं। वे घोर अन्धकार में पड़ते हैं जो विस्तृत पृथ्वी की तरह फैला है ॥ १३ ॥

अथ लोहमयं पन कुम्भिं, अग्गिनिसमं जलितं पविसन्ति ।
पच्चन्ति हि तासु चिररत्तं, अग्गिनिसमासु समुप्पिलवासो[1] ॥१४॥

अथ पुब्बलोहितमिस्से, तत्थ किं पच्चति किब्बिसकारी ।
यं यं दिसतं[2] अधिसेति, तत्थ किलिस्सति सम्फुसमानो ॥१५॥

पुलवावसथे सलिलस्मिं, तत्थ किं पच्चति किब्बिसकारी ।
गन्तुं न हि तीरमपत्थि, सब्बसमा हि समन्तकपल्ला ॥१६॥

असिपत्तवनं पन तिण्हं, तं पविसन्ति समच्छिदगत्ता[3] ।
जिव्हं बलिसेन गहेत्वा, आरचया रचया विहनन्ति ॥१७॥

अथ वेतरणिं पन दुग्गं, तिण्हधारं खुरधारमुपेति ।
तत्थ मन्दा पपतन्ति, पापकरा पापानि करित्वा ॥१८॥

खादन्ति हि तत्थ रुदन्ते, सामा सबला काकोलगणा च ।
सोणा सिगाला[4] पटिगिज्झा[5], कुलला वायसा च वितुदन्ति ॥१९॥

किच्छा वतायं इध वुत्ति, यं जनो पस्सति[6] किब्बिसकारी ।
तस्मा इध जीवितसेसे, किच्चकरो सिया नरो न[7] च पमज्जे[8] ॥२०॥

ते गणिता विदूहि तिलवाहा, ये पदुमे निरये उपनीता ।
नहुतानि हि कोटियो पञ्च भवन्ति, द्वादस कोटिसतानि पुनञ्ञा[9] ॥२१॥

यावदुक्खा[10] निरया इध वुत्ता, तत्थपि ताव चिरं वसितब्बं ।
तस्मा सुचिपेसलसाधुगुणेसु, वाचं मनं सततं[11] परिरक्खे'ति ॥२२॥

कोकालिक-सुत्तं निट्ठितं ।

११. नालक-सुत्तं (३, ११)

आनन्दजाते तिदसगणे पतीते, सक्कञ्च इन्दं सुचिवसने च देवे ।
दुस्सं गहेत्वा अतिरिव थोमयन्ते, असितो इसि अद्दस दिवाविहारे ॥१॥

१. समुप्पिलवाते—म० । २. दिसकं—म० । ३. समुच्छिदगत्ता—म० । ४. सिंगला—म० । ५. पटिगिद्धा—म०, सी० । ६. फुसति—म० । ७-८. चप्पमज्जे—म० । ९. पनञ्ञे—क० । १०. दुखा—म०; दुक्ख-रो०, क० । ११. पकतं—स्या० ।

तब वे आग के समान जलती लोहे की कड़ाही में गिरते हैं, और आग के समान उसमें चिरकाल तक ऊपर नीचे आते जाते पचते रहते हैं ॥ १४ ॥

तब पीव और लोहू से लथपथ हो पापकारी किस प्रकार पचता है। जहाँ जहाँ वह लेटता है, वहाँ-वहाँ उनसे लथपथ हो मलिन हो जाता है ॥ १५ ॥

पापकारी कीड़ों से भरे पानी में किस प्रकार पचता है वह कहीं तीर को नहीं पा सकता, क्योंकि चारों ओर कड़ाह हैं ॥ १६ ॥

घायल शरीर हो वे तीक्ष्ण असिपत्र वन में प्रवेश करते हैं। नरकपाल उनकी जीभ को काँटों से पकड़ कर उनका वध करते हैं ॥ १७ ॥

तब वे छूरे की धार के समान तीक्ष्ण धारा वाली दुस्तर वैतरणी नदी में गिरते हैं। मूर्ख पापकारी पाप कर उसी में गिरते हैं ॥ १८ ॥

वहाँ काले और चितकबरे कौवे उन्हें खा जाते हैं। कुत्ते, गीदड़, गृध्र, चील और कौवे चाव के साथ उन्हें नोंचते हैं ॥ १९ ॥

पापकारी मनुष्य नरक में जिस जीवन का अनुभव करता है, वह दुःखमय है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने शेष जीवन में अच्छे कर्म करे और प्रमाद न करे ॥ २० ॥

पद्म नरक में जो उत्पन्न होते हैं उनकी आयु पण्डितों की गिनती के अनुसार तिल के भार (एक-एक कर) गिने जाने की तरह लम्बी है, जो पाँच नरक कोटि और बारह सौ कोटि के बराबर है ॥ २१ ॥

यहाँ जितने भी नरक-दुःख बताये गये हैं उसे इन सबको चिरकाल तक भोगना पड़ता है। इसलिए पवित्र, उत्तम साधुओं के प्रति अपना मन और वचन सदा संयत रखे ॥ २२ ॥

कोकालिकसुत्त समाप्त ।

११—नाळकसुत्त (३, ११)

[असित ऋषि के भांजे नाळक को भगवान् बुद्ध का उपदेश ।]

असित ऋषि ने (तुषित देवलोक में) दिन के विहार के लिए जाकर देखा कि सभी देवता आनन्दित हैं, प्रसन्न हैं। देवता और इन्द्र सत्कार पूर्वक शुद्ध वस्त्र धारण किए हुए हैं तथा वस्त्र लेकर[1] अत्यधिक स्तुति कर रहे हैं ॥१॥

---

१. वस्त्र उछालते हुए—अट्ठकथा।

दिस्वान देवे मुदितमने उदग्गे, चित्ति करित्वान[1] इदमवोच[2] तत्थ ।
"किं देवसङ्घो अतिरिव कल्यरूपो, दुस्सं गहेत्वा भमयथ[3] किं पटिच्च ।२

यदा'पि आसि असुरेहि सङ्गमो, जयो सुरानं असुरा पराजिता ।
तदा'पि नेतादिसो लोमहंसनो, किं अब्भुतं दट्ठु मरू पमोदिता ॥३॥

सेळेन्ति गायन्ति च वादयन्ति च, भुजानि पोठेन्ति[4] च नच्चयन्ति च ।
पुच्छामि वोहं मेरुमुद्धवासिने[5], धुनाथ मे संसयं खिप्प मारिसा" ॥४॥
"सो बोधिसत्तो रतनवरो अतुल्यो, मनुस्सलोके हितसुखताय[6] जातो ।
सक्यानं गामे जनपदे लुम्बिनेय्ये, तेन'म्ह तुट्ठा अतिरिव कल्यरूपा ॥५॥

सो सब्बसत्तुत्तमो अग्गपुग्गलो, नरासभो सब्बपजानं उत्तमो ।
वत्तेस्सति चक्कं इसिह्वये वने, नदं'व सीहो बलवा मिगाभिभू" ॥६॥
तं सद्दं सुत्वा तुरितमवंसरी सो, सुद्धोदनस्स तद भवनमुपागमि[7] ।
निसज्ज तत्थ इदमवोचासि सक्ये, "कुहिं कुमारो अहमपि दट्ठु कामो" ॥७
ततो कुमारं जलितमिव सुवण्णं, उक्कामुखे'व सुकुसलसम्पहट्ठं ।
दद्दल्लमानं सिरिया अनोमवण्णं, दस्सेसुं पुत्तं असितह्वयस्स सक्या ।८।
दिस्वा कुमारं सिखिमिव पज्जलन्तं, तारासभं'व नभसिगमं विसुद्धं ।
सुरियं तपन्तं सरदरिव'ब्भमुत्तं, आनन्दजातो विपुलमलत्थ पीतिं ।९।
अनेकसाखञ्च सहस्समण्डलं, छत्तं मरू धारयुं अन्तलिक्खे ।
सुवण्णदण्डा वीतिपतन्ति चामरा, न दिस्सरे चामरछत्तगाहका ॥१०॥
दिस्वा जटी कण्हसिरिह्वयो इसि, सुवण्णनिक्खं विय पण्डुकम्बले ।
सेतञ्च छत्तं धारयन्तं[8] मुद्धनि, उदग्गचित्तो सुमनो पटिग्गहे ॥११॥

---

१. करित्वा– सी० । २. इधमवोचासि–सी० । ३. रमयथ–म०, स्या० । ४. फोटेन्ति—म०, पोथेन्ति–क० । ५. मेरुमुद्धवासिनी—सी० । ६. हितसुखत्थाय—म० । ७. भवनं उपविसि—म० । ८. धरियन्ति—म०; धारियन्ति–स्या० ।

देवताओं को प्रसन्न और हर्षित मन देखकर विचार कर (असित ऋषि ने) वहां यह कहा—"किस कारण देवगण अत्यन्त प्रसन्न हो वस्त्र लेकर घूम रहा है ? क्या कारण है ? ॥ २ ॥

जिस समय असुरों से युद्ध हुआ था, देवताओं की विजय हुई थी और असुर पराजित हुए थे, उस समय भी ऐसा रोमांचकारी आनन्द नहीं मनाया गया था, किस अद्भुत बात को देखने के लिए देवता प्रमुदित हैं ? ॥ ३ ॥

देवता चिल्लाते हैं, गाते हैं, बजाते हैं, भुजाओं को फड़काते हैं और नाचते हैं। मैं मेरु शिखर पर रहने वाले आप लोगों से पूछता हूँ, मार्ष ! मेरे संशय को शीघ्र दूर करें ॥ ४ ॥

"वह अतुलनीय, श्रेष्ठ-रत्न, बोधिसत्व मनुष्यों के हित सुख के लिए मनुष्य लोक में शाक्य जनपद के लुम्बिनी ग्राम में उत्पन्न हुए हैं, इसीलिए हम लोग अत्यधिक तुष्ट और प्रसन्न हैं ॥ ५ ॥

वह सब प्राणियों में उत्तम, श्रेष्ठ-व्यक्ति, सब मनुष्यों में श्रेष्ठ, सारी प्रजा में उत्तम जिस प्रकार बलवान् मृगराज सिंह गर्जना करता है उसी प्रकार ऋषि-वन (=ऋषिपतन) में (धर्म-) चक्र का प्रवर्तन करेंगे ॥ ६ ॥

उस बात को सुनकर वह (असित ऋषि) शीघ्र शुद्धोदन के भवन में आए। वहाँ बैठकर शाक्यों से यह कहे—"कुमार कहाँ हैं ? मैं भी देखना चाहता हूँ ॥७॥

तब सुन्दर ढंग से निर्मित, चमकदार, स्वर्ण के समान कान्ति से दमकते हुए उत्तम रूपवान् पुत्र को शाक्यों ने असित ऋषि को दिखलाया ॥ ८ ॥

जलती आग, आकाश में निर्मल चन्द्रमा और मेघ रहित शरद में सूर्य के समान तपते हुए कुमार को देखकर ऋषि आनन्दित हो गए और उन्हें विपुल प्रीति उत्पन्न हो आई ॥ ९ ॥

आकाश में देवताओं ने अनेक शाखा और सहस्र मण्डल वाले छत्र को धारण किया, स्वर्ण दण्ड लगे चामर (=चँवर) डुलाये, किन्तु चामर और छत्र को धारण करने वाले दिखाई नहीं दे रहे थे ॥ १० ॥

जटाधारी असित नामक ऋषि ने पीतवर्ण कम्बल में रखी स्वर्ण मुद्रा के समान सुन्दर, ऊपर श्वेत छत्रधारी कुमार को देख हर्षित और प्रमुदित मन हो उन्हें ग्रहण किया ॥ ११ ॥

पटिग्गहेत्वा पन सक्यपुङ्गवं, जिगिंसको[1] लक्खणमन्तपारगू।
पसन्नचित्तो गिरमब्भुदीरयि, अनुत्तरायं द्विपदानमुत्तमो[2] ॥१२॥
अथ'त्तनो गमनमनुस्सरन्तो, अकल्यरूपो गळयति अस्सुकानि।
दिस्वान सक्या इसिमवोचुं रुदन्तं,नो चे कुमारे भविस्सति अन्तरायो १३
दिस्वान सक्ये इसिमवोच अकल्ये,"नाहं कुमारे अहितमनुस्सरामि।
न चापि'मस्स भविस्सति अन्तरायो,न ओरकायं अधिमनसा[3]भवाथ॥१४
"सम्बोधियग्गं फुसिस्सतायं कुमारो,सो धम्मचक्कं परमविसुद्धदस्सी।
वत्तेस्सतायं बहुजनहितानुकम्पी,वित्थारिकस्स भविस्सति ब्रह्मचरियं॥१५
"ममञ्चायु न चिरमिधावसेसो,अथ'न्तरा मे भविस्सति कालकिरिया।
सो'हं न सुस्सं[4]असमधुरस्स धम्मं,तेन'म्हि अट्टो व्यसनगतो अघावी" १६
सो साकियानं विपुलं जनेत्व पीतिं, अन्तेपुरम्हा निगमा[5] ब्रह्मचारी।
सो भागिनेय्यं सयमनुकम्पमानो, समादपेसि असमधुरस्स धम्मे ॥१७
"बुद्धो'ति घोसं यद[6]परतो सुणासि, सम्बोधिपत्तो विचरति धम्ममग्गं।
गन्त्वान तत्थ समयं[7] परिपुच्छियानो[8],
चरस्सु तस्मिं भगवति ब्रह्मचरियं" ॥१८॥
तेनानुसिट्ठो हितमनसेन[9] तादिना, अनागते परमविसुद्धदस्सिना।
सो नालको उपचितपुञ्ञसञ्चयो,
जिनं पतिक्खं परिवसि रक्खितिन्द्रियो ॥१९॥
सुत्वान घोसं जिनवरचक्कवत्तने, गन्त्वान दिस्वा इसिनिसभं पसन्नो।
मोनेय्यसेट्ठं मुनिपवरं अपुच्छि,समागते असितव्हयस्स सासने'ति॥२०॥

वत्थुगाथा निट्ठिता।

अञ्ञातमेतं वचनं, असितस्स यथातथं।
तं तं गोतम पुच्छाम, सब्बधम्मान पारगुं॥ २१॥
अनगारियुपेतस्स, भिक्खाचरियं जिगिंसतो।
मुनि पब्रूहि मे पुट्ठो, मोनेय्यं उत्तमं पदं॥ २२॥

---

१. जिगीसको—म०। २. द्विपदानमुत्तमो—म०। ३. अधिमनसा—म०। ४. सोस्सं—म०। ५. निग्गमा—म०; निरगमा—स्या०। ६. यदि—स्या०, क०। ७. सयं—सी०। ८. परिपुच्छमानो—म०। ९. हितमनेन—म०, स्या०।

उत्तम शाक्य कुमार को ग्रहण कर, लक्षण शास्त्र और वेद-पारंगत जिज्ञासु ऋषि ने प्रसन्न मन से यह वात कही—"यह सर्वोत्तम हैं ! मनुष्यों में उत्तम हैं !" ॥ १२ ॥

तव अपने (परलोक-) गमन का स्मरण करते हुए उनके नेत्रों से आँसू पघरने लगे। शाक्यों ने ऋषि को रोता हुआ देख कहा—"क्या कुमार के लिए कोई विघ्न तो नहीं होगा ?" ॥ १३ ॥

ऋषि ने शाक्यों को दुःखित देखकर कहा—"मैं कुमार का कोई अहित नहीं देखता और न उनका कोई विघ्न होगा। यह साधारण मनुष्य नहीं हैं।" आप लोग प्रसन्न हों ॥ १४ ॥

उत्तम, विशुद्धदर्शी यह कुमार सम्वोधि को प्राप्त करेंगे और वहुजन के प्रति अनुकम्पा कर उनके हित के लिए धर्मचक्र का प्रवर्तन करेंगे, उनका ब्रह्मचर्य फैलेगा ॥ १५ ॥

यहाँ मेरी आयु अधिक शेष नहीं है। इस वीच में ही मेरी मृत्यु हो जायेगी, सो मैं असदृश्य पराक्रमी के धर्म को नहीं सुन पाऊँगा, इसीलिए मैं आतुर हूँ, कष्ट में हूँ और दुःखित हूँ ॥ १६ ॥

शाक्यों को विपुल आनन्द देकर वह ब्रह्मचारी अन्तःपुर से निकले। उन्होंने अपने भांजे पर अनुकम्पा करके उसे असदृश्य पराक्रमी के धर्म में लगाया ॥१७॥

"सम्वोधि प्राप्त, धर्म मार्ग का उपदेश देने वाले 'वुद्ध' का घोष, जव दूसरे से सुनना तो, उनके पास जा, धर्म के विषय में पूछकर उन भगवान् के पास ब्रह्मचर्य का पालन करना ॥ १८ ॥

हितैषीभाव से स्थिर, उत्तम, विशुद्ध भविष्य-द्रष्टा से उपदिष्ट पुण्यवान् उन नालक ने जिन (=वुद्ध) की प्रतीक्षा में तपस्वी हो इन्द्रियों की रक्षा की ॥१९॥

धर्मचक्र-प्रवर्तन के समय वुद्ध का घोष सुनकर, पास जा, श्रेष्ठ ऋषि को देख धर्म के विषय में असित के सिखाये प्रश्नों को उत्तम प्रज्ञ से पूछा ॥ २० ॥

वस्तुगाथा समाप्त।

नालक—मैंने यह वात असित (ऋषि) से यथार्थ रूप से जानी थी। सभी धर्मों के पारंगत हे गौतम ! मैं उसे आपसे पूछ रहा हूँ ॥ २१ ॥

वेघर हो भिक्षा पर जीने वाले मुझे प्रश्न करने पर उत्तम पद के विषय में मुनि वतलायें ॥ २२ ॥

मोनेय्यं ते उपञ्ञिस्सं (ति भगवा), दुक्करं दुरभिसम्भवं।
हन्द ते नं पवक्खामि, सन्थम्भस्सु दळ्हो भव ॥२३॥

समानभावं[1] कुब्बेथ, गामे अक्कुट्ठवन्दितं।
मनोपदोसं रक्खेय्य, सन्तो अनुण्णतो चरे ॥ २४ ॥

उच्चावचा निच्छरन्ति, दाये अग्गिसिखूपमा।
नारियो मुनिं पलोभेन्ति, तासु तं मा पलोभयुं ॥ २५ ॥

विरतो मेथुना धम्मा, हित्वा कामे परोवरे[2]।
अविरुद्धो असारत्तो, पाणेसु तसथावरे ॥ २६ ॥

यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये ॥ २७ ॥

हित्वा इच्छञ्च लोभञ्च, यत्थ सत्तो पुथुज्जनो।
चक्खुमा पटिपज्जेय्य, तरेय्य नरकं इमं ॥ २८ ॥

ऊनूदरो मिताहारो, अप्पिच्छस्स अलोलुपो।
स वे[3] इच्छाय निच्छातो, अनिच्छो होति निब्बुतो ॥ २९ ॥

स पिण्डचारं चरित्वा, वनन्तमभिहारये।
उपट्ठितो रुक्खमूलस्मिं, आसनूपगतो मुनि ॥ ३० ॥

स झानपसुतो धीरो, वनन्ते रमितो सिया।
झायेथ रुक्खमूलस्मिं, अत्तानं अभितोसयं ॥ ३१ ॥

ततो रत्या विवसने[4], गामन्तमभिहारये।
अव्हानं नाभिनन्देय्य, अभिहारञ्चगामतो ॥ ३२ ॥

न मुनि गाममागम्म, कुलेसु सहसा चरे।
घासेसनं छिन्नकथो, न वाचं पयुतं भणे ॥ ३३ ॥

अलत्थं यदिदं साधु, नालत्थं कुसलं इति।
उभयेनेव सो तादी, रुक्खं'व[5] उपनिवत्तति[6] ॥ ३४ ॥

---

१. समानभागं—म०। २. परो धरे—म०; वरावरे—स्या०। ३. चे—सी०; सदा—म०।
४. विवसाने—म०। ५-६. रुक्खं वुपनिवत्तति—म०; रुक्खं व उपातिवत्तति—स्या०।

भगवान्—दुष्कर और कठिनता से प्राप्त ज्ञान मार्ग की मैं व्याख्या करूँगा। मैं अब उसके विषय में तुम्हें बताऊँगा, इसलिए तुम स्थिर चित्त और दृढ़ हो जाओ ॥ २३ ॥

ग्राम में जो वन्दना करते हैं या जो निन्दा करते हैं, उनके प्रति समान भाव रखे, मन को दूषित न होने दे, शान्त और विनीत होकर विचरण करे ॥ २४ ॥

दावाग्नि की ज्वाला के समान नाना प्रकार के आलम्बन (=आकर्षण) उपस्थित होते हैं। स्त्रियां मुनि को प्रलोभित करती हैं। उनके प्रति तुम प्रलोभित मत हो ॥ २५ ॥

मैथुन धर्म से विरत हो अच्छे-बुरे काम-भोगों को त्यागकर स्थावर और जंगम प्राणियों के प्रति विरोधभाव या आसक्ति रहित होवे ॥ २६ ॥

जैसा मैं हूँ, वैसे ये प्राणी भी हैं। जैसे ये प्राणी हैं, वैसा मैं हूँ। इस प्रकार अपने समान समझकर न तो किसी का बध करे और न कराये ॥ २७ ॥

जिस इच्छा और लोभ में पृथक् जन प्राणी आसक्त रहता है उसे त्यागकर चक्षुष्मान् विचरण करे और इस नरक को पारकर जाय ॥ २८ ॥

जो पेटू नहीं होता, मात्रा से भोजन करता है, अल्पेच्छ और लोभ रहित होता है, वहीं इच्छा से रहित सन्तोषी व्यक्ति शान्त होता है ॥ २९ ॥

भिक्षा करके वह मुनि वन में जाय और पेड़ के नीचे जा आसन लगा कर बैठे ॥ ३० ॥

वन में रहते हुए वह धीर ध्यान तत्पर होवे, अपने को सन्तोष प्रदान कर पेड़ के नीचे ध्यान करे ॥ ३१ ॥

तब रात्रि के बीतने पर प्रातः भिक्षा के लिए गाँव में प्रवेश करे। वहाँ न तो किसी का निमंत्रण स्वीकार करे और न किसी के द्वारा गाँव से लाये गये भोजन को ॥ ३२ ॥

मुनि गाँव में आकर सहसा कुलों में विचरण न करे। चुपचाप रहकर भिक्षाटन करे, संकेत करने वाली कोई बात न बोले ॥ ३३ ॥

यदि कुछ मिल जाय तो उत्तम है और न मिले तो भी ठीक है। एक स्थान पर स्थित वृक्ष के समान वह दोनों ही अवस्थाओं में समान रहता है ॥ ३४ ॥

स पत्तपाणी विचरन्तो, अमूगो मूगसम्मतो ।
अप्पं दानं न हीलेय्य,[1] दातारं नावजानिय ॥ ३५ ॥

उच्चावचा हि पटिपदा, समणेन पकासिता ।
न पारं दिगुणं यन्ति, न इदं एकगुणं मुतं ॥ ३६ ॥

यस्स च विसता नत्थि, छिन्नसोतस्स भिक्खुनो ।
किच्चाकिच्चप्पहीनस्स, परिळाहो न विज्जति ॥ ३७ ॥

मोनेय्यं ते उपञ्ञिस्सं (ति भगवा), खुरधारूपमो भवे ।
जिव्हाय तालुमाहच्च, उदरे संयतो सिया ॥ ३८ ॥

अलीनचित्तो च सिया, न चापि बहु चिन्तये ।
निरामगन्धो असितो, ब्रह्मचरियपरायणो ॥ ३९ ॥

एकासनस्स सिक्खेथ, समणूपासनस्स च ।
एकत्तं मोनमक्खातं, एको च अभिरमिस्सति ।
अथ भासिहि[2] दस दिसा ॥ ४० ॥

सुत्वा धीरानं निग्घोसं, झायीनं कामचागीनं ।
ततो हिरिञ्च सद्धञ्च, भिय्यो कुब्बेथ मामको ॥ ४१ ॥

तं नदीहि विजानाथ, सोब्भेसु[3] पदरेसु च ।
सणन्ता यन्ति कुस्सोब्भा, तुण्ही याति महोदधि ॥ ४२ ॥

यदूनकं तं सणति, यं पूरं सन्तमेव तं ।
अड्ढकुम्भूपमो बालो, रहदो पूरो'व पण्डितो ॥ ४३ ॥

यं समणो बहु भासति, उपेतमत्थसंहितं ।
जानं सो धम्मं देसेति, जानं सो बहु भासति ॥ ४४ ॥

यो च जानं संयतत्तो, जानं न बहु भासति ।
स मुनी मोनमरहति, स मुनी मोनमज्झगा"ति ॥ ४५ ॥

नालकसुत्तं निट्ठितं ।

---

१. हीळेय्य—म० । २. भाहिसि—म० । ३. कुसोब्भा—म० ।

गूँगा न होते हुए भी गूँगे की भाँति हाथ में (भिक्षा) पात्र लेकर विचरण करते हुए अल्प दान कर अनादर न करे और न तो दाता की निन्दा करे ॥३५॥

श्रमण (=भगवान् बुद्ध) द्वारा अच्छे-बुरे मार्ग बतलाये गए हैं। लोग दो बार संसार-सागर के पार नहीं जाते और न तो इस पार को एक बारगी ही प्राप्त किया जा सकता है ॥ ३६ ॥

जिसमें तृष्णा नहीं है, जिस भिक्षु का (भव-) स्रोत नष्ट हो गया है, जो कृत्या-कृत्य से परे है, उसे किसी प्रकार का संताप नहीं होता ॥ ३७ ॥

मैं तुम्हें ज्ञानयोग (=मौनेय) को बताऊँगा। वह छूरे की धार के समान होता है। तालू से जीभ सटा कर पेट के प्रति संयमी बने ॥ ३८ ॥

आलस्य रहित चित्त वाला बने, बहुत चिन्तन न करे, क्लेश-रहित और अनासक्त हो ब्रह्मचर्य का पालन करे ॥ ३९ ॥

एक आसन पर रहने का अभ्यास करे और श्रमणों की संगति करे। एकान्त-वास मौनेय कहा जाता है। यदि अकेले विहार करेगा तो दसों दिशाओं को प्रकाशित करेगा ॥ ४० ॥

ध्यानी, विषय-वासना-त्यागी धीरों के घोष को सुनकर श्रद्धालु व्यक्ति (पाप कर्म करने में) लज्जा करे और (पुण्य कर्मों के करने में) श्रद्धा को अधिका-धिक बढ़ावे ॥ ४१ ॥

छोटी नदियों और नालों के मध्य उसे नदी समझे। छोटी नदी शोर करते बहती है, किन्तु सागर चुपचाप बहता है ॥ ४२ ॥

जिसमें कमी होती है वह शोर करता है, जो पूर्ण होता है, वह शान्त होता है। मूर्ख आधे भरे घड़े की तरह है, किन्तु पण्डित भरे हुए जलाशय की तरह ॥ ४३ ॥

जो श्रमण अर्थयुक्त बहुत बात बोलता है, वह जानते हुए धर्म का उपदेश देता है और जानते हुए ही बहुत बोलता है ॥ ४४ ॥

जो जानते हुए भी संयम के कारण जाने हुए (धर्म) को बहुत नहीं कहता है, वह मुनि मौनेय के योग्य है। उस मुनि ने मौनेय (=ज्ञान) को प्राप्त कर लिया है ॥ ४५ ॥

नालकसुत्त समाप्त।

१२. द्वयतानुपस्सना-सुत्तं (३, १२)

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। तेन खो पन समयेन भगवा तदहुपोसथे पण्णरसे पुण्णाय पुण्णमाय रत्तिया भिक्खुसङ्घपरिवुतो अब्भोकासे निसिन्नो होति। अथ खो भगवा तुण्हीभूतं तुण्हीभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"ये ते, भिक्खवे, कुसला धम्मा अरिया निय्यानिका सम्बोधगामिनो, तेसं, वो भिक्खवे, कुसलानं धम्मानं अरियानं निय्यानिकानं सम्बोधगामीनं का उपनिसा सवनायाति इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु, एवं अस्सु ते वचनीया—यावदेव द्वयतानं धम्मानं यथाभूतं ञाणायाति। किञ्च द्वयतं वदेथ? इदं दुक्खं, अयं दुक्खसमुदयो'ति–अयं एकानुपस्सना। अयं दुक्खनिरोधो, अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा'ति—अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्माद्वयतानुपस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं—दिट्ठेव धम्मे अञ्ञा, सति वा उपादिसेसे अनागामिता"ति। इदमवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

"ये दुक्खं नप्पजानन्ति, अथो दुक्खस्स सम्भवं।
यत्थ च सब्बसो दुक्खं, असेसं उपरुज्झति।
तञ्च मग्गं न जानन्ति, दुक्खूपसमगामिनं॥ १॥
चेतोविमुत्तिहीना ते, अथो पञ्ञाविमुत्तिया।
अभब्बा ते अन्तकिरियाय, ते वे जातिजरूपगा॥ २॥
यत्थ च सब्बसो दुक्खं, असेसं उपरुज्झति।
ये च दुक्खं पजानन्ति, अथो दुक्खस्स सम्भवं।
तञ्च मग्गं पजानन्ति, दुक्खूपसमगामिनं॥ ३॥
चेतोविमुत्तिसम्पन्ना, अथो पञ्ञाविमुत्तिया।
भब्बा ते अन्तकिरियाय, न ते जातिजरूपगा"ति॥ ४॥

१२—द्वयतानुपस्सनासुत्त (३, १२)

[इस सुत्त में प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार दुःख की उत्पत्ति और निरोध को समझाया गया है ।]

ऐसा मैंने सुना । एक समय भगवान् श्रावस्ती के पूर्वाराम में मृगारमाता के प्रासाद में विहार कर रहे थे । उस समय भगवान् पूर्णमांसी की रात्रि में उपोसथ के लिये खुले मैदान में भिक्षु-संघ से घिरे हुए बैठे थे । तब भगवान् ने मौन भाव से बैठे भिक्षु संघ को देखकर भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! ये जो आर्य, उत्तम सम्बोधि की ओर ले जाने वाले धर्म हैं, भिक्षुओ ! इन आर्य, उत्तम सम्बोधि की ओर ले जाने वाले इन कल्याणकर धर्मों को सुनने से क्या लाभ है ?" ऐसा पूछने वाले हों तो उन्हें बताना चाहिए कि इससे दो धर्मों के यथार्थ ज्ञान का लाभ होता है । कौन से दो धर्मों को बताना चाहिए ? यह दुःख और दुःख का हेतु—एक अनुपश्यना (=विचरणीय बात) है, यह दुःख निरोध और दुःख निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग—दूसरी अनुपश्यना है । भिक्षुओ ! इन दो बातों का मनन करने वाला, अप्रमत्त, प्रयत्नशील, तत्पर भिक्षु दो फलों में से एक की कामना कर सकता है—इसी जन्म में पूर्ण ज्ञान या वासनाओं के शेष रहने पर अनागामी-भाव ।" भगवान् ने यह कहा । सुगत ने यह कह कर, फिर शास्ता ने यह कहा—

"जो दुःख को नहीं जानते हैं और दुःख की उत्पत्ति को भी, जहाँ सब प्रकार से सम्पूर्ण दुःख शान्त हो जाता है और दुःख ही शान्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को भी नहीं जानते हैं ।। १ ।।

वे चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति से रहित हैं । वे दुःख का अन्त करने के अयोग्य हैं । वे ही जन्म-जरा में पड़े रहने वाले हैं ।। २ ।।

जहाँ सब प्रकार से सम्पूर्ण दुःख निरुद्ध हो जाता है, दुःख, दुःख की उत्पत्ति और दुःख की शान्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को जो जानते हैं ।। ३ ।।

वे चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति से युक्त हैं । वे दुःख का अन्त करने में समर्थ हैं । वे ही जन्म-जरा में नहीं पड़ने वाले हैं ।। ४ ।।

"सिया अञ्ञेन'पि परियायेन सम्माद्वयतानुपस्सनाति इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु, 'सिया'तिस्सु वचनीया। कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं उपधिपच्चयाति—अयं एकानुपस्सना। उपधीनं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति—अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा....पे०....अनागामिता"ति अथापरं एतदवोच सत्था—

"उपधीनिदाना पभवन्ति दुक्खा, ये केपि लोकस्मिमनेकरूपा।
यो वे अविद्वा उपधिं करोति, पुनप्पुनं दुक्खमुपेति मन्दो।
तस्मा पजानं उपधिं न कयिरा, दुक्खस्स जातिप्पभवानुपस्सी"ति ॥५॥

"सिया अञ्ञेन'पि परियायेन सम्माद्वयतानुपस्सनाति इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु, 'सिया'तिस्स वचनीया। कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं अविज्जापच्चयाति—अयं एकानुपस्सना। अविज्जायत्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति—अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा....पे०....अनागामिता"ति अथापरं एतदवोच सत्था—

"जातिमरणसंसारं, ये वजन्ति पुनप्पुनं।
इत्थभावञ्ञथाभावं, अविज्जा येव सा गति ॥ ६ ॥
अविज्जा ह्यं[1] महामोहो, येनिदं संसितं चिरं।
विज्जागता च ये सत्ता, नागच्छन्ति[2] पुनब्भव"न्ति ॥७॥

"सिया अञ्ञेन'पि....पे०....कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं सङ्खारपच्चयाति—अयं एकानुपस्सना। सङ्खारानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति—अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा....पे०....अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं सङ्खारपच्चया।
सङ्खारानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥ ८ ॥

---

१. हायं—म०। २. न ते गच्छन्ति—म०।

क्या कोई दूसरा क्रम भी है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?—ऐसा पूछने वालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है वह वासनाओं के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। वासनाओं की सम्पूर्ण निवृत्ति और निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है····।···शास्ता ने फिर यह कहा—

जो लोक में अनेक प्रकार के दुःख हैं वे वासनाओं के कारण उत्पन्न होते हैं। जो मूर्ख वासनाओं में पड़ा रहता है, वह मूढ़ बार-बार दुःख में पड़ता है। इसलिये दुःख की उत्पत्ति और हेतु को जानकर लोगों को वासनाओं में नहीं पड़ना चाहिए ॥ ५ ॥

क्या कोई दूसरा क्रम भी है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ?—ऐसा पूछने वालों को बताना चाहिए कि 'है'। वह कौन-सा है ? जो कुछ दुःख होता है, वह सब अविद्या के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। अविद्या की ही सम्पूर्णतः निवृत्ति से, निरोध से, दुःख उत्पन्न नहीं होता—यह दूसरी अनुपश्यना है····।····। शास्ता ने फिर कहा—

जो लोग जन्म-मृत्यु रूपी संसार में बार-बार पड़ते हैं और इस लोक तथा परलोक में (चक्कर) काटते हैं। उनकी अविद्या ही उस गति का मूल है ॥६॥

यह अविद्या महामोह है। जिसके कारण चिरकाल से चक्कर काट रहे हैं। जो प्राणी विद्या को प्राप्त कर लिए हैं, वे पुनर्जन्म में नहीं पड़ते हैं ॥ ७ ॥

क्या कोई दूसरा क्रम भी है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है वह संस्कारों के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। संस्कारों के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख नहीं होता—यह दूसरी अनुपश्यना है।········।········। शास्ता ने फिर यह कहा—

जो कुछ दुःख होता है, वह सब संस्कारों के कारण ही होता है। संस्कारों के निरोध से दुःख उत्पन्न नहीं होता ॥ ८ ॥

एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं सङ्खारपच्चया।
सब्बसङ्खारसमथा, सञ्ञाय उपरोधना।
एवं दुक्खक्खयो होति, एवं ञत्वा यथातथं ॥९॥
सम्मद्दसा वेदगुनो, सम्मदञ्ञाय पण्डिता।
अभिभुय्य मारसंयोगं, नागच्छन्ति[1] पुनब्भव"न्ति ॥१०॥

"सिया अञ्ञेन'पि···पे०···कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं विञ्ञाणपच्चयाति–अयमेकानुपस्सना। विञ्ञाणस्स त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा···पे०···अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं विञ्ञाणपच्चया।
विञ्ञाणस्स निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥११॥
एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं विञ्ञाणपच्चया।
विञ्ञाणूपसमा भिक्खु, निच्छातो परिनिब्बुतो"ति ॥१२॥

"सिया अञ्ञेन'पि···पे०··कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं फस्सपच्चयाति–अयमेकानुपस्सना असेसविराग-निरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा ····पे०···अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"तेसं फस्सपरेतानं, भवसोतानुसारिनं।
कुम्मग्गपटिपन्नानं, आरा संयोजनक्खयो ॥१३॥
ये च फस्सं परिञ्ञाय, अञ्ञाय[2] उपसमे[3] रता।
ते वे फस्साभिसमया, निच्छाता परिनिब्बुता"ति ॥१४॥

"सिया अञ्ञेन'पि···पे०···कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं वेदनापच्चयाति-अयमेकानुपस्सना। वेदनानं त्वेव असेसविराग-निरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा···पे०···अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

१. न ते गच्छन्ति—म०। २–३. अञ्ञायुपसमे—सी०, म०।

संस्कारों के कारण दुःख होता है—इस दुष्परिणाम को जानकर सब संस्कारों की शान्ति और संज्ञा के निरोध से दुःख का क्षय होता है—इसे यथार्थ रूप से जानकर ॥ ९ ॥

सम्यक्दर्शी, ज्ञानी, पण्डित जन भली प्रकार जानकर मार के संयोग को जीतकर[1] पुर्नजन्म में नहीं पड़ते हैं ॥ १० ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है, वह सब विज्ञान के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। विज्ञान के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख उत्पन्न नहीं होता—यह एक दूसरी अनुपश्यना है।····।····। शास्ता ने फिर यह कहा—

जो कुछ दुःख उत्पन्न होता है वह सब विज्ञान के कारण होता है। विज्ञान के निरोध से दुःख उत्पन्न नहीं होता ॥ ११ ॥

विज्ञान के कारण दुःख होता है—इस दुष्परिणाम को जानकर विज्ञान के निरोध से भिक्षु तृष्णा-रहित हो परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है ॥ १२ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब स्पर्श के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। स्पर्श के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है ।····।····। शास्ता ने फिर यह कहा—

जो लोग स्पर्श में संलग्न हैं, वे संसार-स्रोत के अनुसार चलने वाले हैं; वे कुमार्ग पर चल रहे हैं, वे सांसारिक बन्धनों के क्षय से दूर हैं ॥ १३ ॥

जो स्पर्श को भली प्रकार जानकर ज्ञानपूर्वक उपशम (=निर्वाण) में रत हैं, वे स्पर्श के निरोध से तृष्णा-रहित हो परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये हैं ॥१४॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब वेदना के कारण उत्पन्न होता है—यह एक अनुपश्यना है। वेदना के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है।····।····। शास्ता ने फिर यह कहा—

---

१. तीनों लोकों को जानकर—अट्ठकथा।

"सुखं वा यदि वा दुक्खं, अदुक्खमसुखं सह।
अज्झत्तञ्च बहिद्धा च, यं किञ्चि अत्थि वेदितं ॥१५॥
एतं[1] दुक्खन्ति ञत्वा, मोसधम्मं पलोकितं[2]।
फुस्स फुस्स वयं पस्सं, एवं तत्थ विरज्जति[3]।
वेदनानं खया भिक्खु, निच्छातो परिनिब्बुतो"ति ॥१६॥

"सिया अञ्ञेनपि…पे०…कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं तण्हापच्चयाति-अयमेकानुपस्सना। तण्हाय त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति-अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा…पे०…अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"तण्हा दुतियो पुरिसो, दीघमद्धान संसरं।
इत्थभावञ्ञथाभावं, संसारं नातिवत्तती ॥१७॥
एतं आदीनवं ञत्वा, तण्हा[4] दुक्खस्स सम्भवं।
वीततण्हो अनादानो, सतो भिक्खु परिब्बजे"ति ॥१८॥

"सिया अञ्ञेनपि…पे०…कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं उपादानपच्चया'ति अयमेकानुपस्सना। उपादानानं[5] त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवो'ति…अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा…पे०…अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"उपादानपच्चया भवो, भूतो दुक्खं निगच्छति।
जातस्स मरणं होति, एसो दुक्खस्स सम्भवो ॥१९॥
तस्मा उपादानक्खया, सम्मदञ्ञाय पण्डिता।
जातिक्खयं अभिञ्ञाय, नागच्छन्ति[6] पुनब्भव"न्ति ॥२०॥

"सिया अञ्ञेन'पि…पे०…कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं आरम्भपच्चया'ति अयमेकानुपस्सना। आरम्भानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवो'ति अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा…पे०…अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

---

१. एवं—सी। २. पलोकिनं—म०। ३. विजानति—म०। ४. तण्हं—म०। ५. उपादानस्स—स्या०, क०। ६. न गच्छन्ति—म०।

सुख, दुःख और उपेक्षा के रूप में जो कुछ भीतर और वाहर की वेदनायें हैं ॥ १५ ॥

जो उन्हें नश्वर और क्षणभंगुर देखकर—यह दुःख है, जानकर भली प्रकार उनके नष्ट होने को देख—इस प्रकार उनसे विरक्त हो जाता है, वह भिक्षु वेदनाओं के क्षय से तृष्णारहित हो परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाता है ॥ १६ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख होता है, वह सब तृष्णा के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। तृष्णा के सम्पूर्ण निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है।···।····। शास्ता ने फिर यह कहा—

तृष्णा के साथ पुरुष दीर्घकाल से इस लोक तथा परलोक में चक्कर काट रहा है और वह संसार को पार नहीं कर सकता ॥ १७ ॥

तृष्णा के ही कारण दुःख उत्पन्न होता है—इस दुष्परिणाम को जान भिक्षु को चाहिए कि वह तृष्णा-रहित और आसक्ति-रहित हो स्मृति के साथ विचरण करे ॥ १८ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है, वह सब उपादान के कारण उत्पन्न होता है—यह एक अनुपश्यना है। उपादान के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है।····।····। शास्ता ने फिर यहा कहा—

उपादान के कारण भव होता है और प्राणी दुःख को प्राप्त होता है, उत्पन्न हुए की मृत्यु होती है—यह दुःख की उत्पत्ति है ॥ १९ ॥

इसलिये उपादान के क्षय से पण्डित भली प्रकार जानकर हो, जन्म-क्षय को जान, पुर्नजन्म में नहीं पड़ते हैं ॥ २० ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब कर्मयुक्त प्रयत्न से उत्पन्न होता है—यह एक अनुपश्यना है। कर्मयुक्त प्रयत्न के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है। ····।····। शास्ता ने फिर यह कहा—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आरम्भपच्चया।
आरम्भानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥२१॥
एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं आरम्भपच्चया।
सब्बारम्भं पटिनिस्सज्ज, अनारम्भे विमुत्तिनो ॥२२॥

उच्छिन्नभवतण्हस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
वित्तिण्णो जातिसंसारो, नत्थि तस्स पुनब्भवो"ति ॥२३॥

"सिया अञ्ञेन'पि....पे०....कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आहारपच्चया'ति अयमेकानुपस्सना। अहारानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवो"ति अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा....पे०....अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आहारपच्चया।
आहारानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥२४॥

एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं आहारपच्चया।
सब्बाहारं परिञ्ञाय, सब्बाहारमनिस्सितो ॥२५॥
आरोग्यं सम्मदञ्ञाय, आसवानं परिक्खया।
सङ्खाय सेवी धम्मट्ठो, सङ्ख्यं[1]नोपेति वेदगू"ति ॥२६॥

"सिया अञ्ञेन'पि....पे०....कथञ्च सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं इञ्जितपच्चया'ति अयमेकानुपस्सना, इञ्जितानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवो'ति अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा....पे०....अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं इञ्जितपच्चया।
इञ्जितानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥ २७ ॥
एतं आदीनवं ञत्वा, दुक्खं इञ्जितपच्चया।
तस्मा एजं वोस्सज्ज, सङ्खारे उपरुन्धिय।
अनेजो अनुपादानो, सतो भिक्खु परिब्बजे"ति ॥ २८ ॥

१. संख्यं–म०।

जो कुछ दुःख उत्पन्न होता है वह सब कर्मयुक्त प्रयत्न से उत्पन्न होता है। प्रयत्न के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥ २१ ॥

दुःख प्रयत्न के कारण होता है—इस दुष्परिणाम को जानकर सारे प्रयत्नों को त्याग कर कर्मयुक्त प्रयत्न-रहित हो विमुक्ति, भवतृष्णा के विनाश में शान्त-चित्त भिक्षु लगे और जन्म रूपी संसार को पार कर ले, फिर उसका पुनर्जन्म नहीं ॥ २२–२३ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?········ कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब आहार[1] के कारण होता है—यह है एक अनुपश्यना। आहारों के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—यह दूसरी अनुपश्यना है।····।···शास्ता ने फिर यह कहा—

जो कुछ दुःख उत्पन्न होता है वह सब आहार के कारण उत्पन्न होता है। आहार के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥ २४ ॥

आहार के कारण दुःख होता है—इस दुष्परिणाम को जानकर सभी आहारों से विरक्त होवे ॥ २५ ॥

चित्त-मलों (=आश्रवों) के क्षय से निर्वाण (=आरोग्य) को भली प्रकार जानकर धर्म में स्थित व्यक्ति ज्ञान पूर्वक आहार का सेवन करे। ऐसा व्यक्ति फिर जन्म नहीं ग्रहण करता ॥ २६ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?····कौन-सा है ? जो कुछ दुःख है, वह सब चंचलता के कारण होता है—यह एक अनुपश्यना है। चंचलताओं के सम्पूर्णतः निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती है—यह दूसरी अनुपश्यना है।····।····। शास्ता ने फिर यह कहा—

जो कुछ दुःख उत्पन्न होता है, वह सब चंचलता के कारण उत्पन्न होता है। चंचलताओं के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥ २७ ॥

इसलिए इसे त्याग दे, संस्कारों का निरोध कर दे, तृष्णा और आसक्ति-रहित हो स्मृति के साथ भिक्षु विचरण करे ॥ २८ ॥

१. कर्मसम्प्रयुक्त आहार—अट्ठकथा।

"सिया अञ्ञेन'पि····पे०····कथञ्च सिया ? निस्सितस्स चलितं होति अयमेकानुपस्सना; अनिस्सितो न चलति अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा····पे०····अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"अनिस्सितो न चलति, निस्सितो च उपादियं।
इत्थभावञ्ञथाभावं, संसारं नातिवत्तति॥ २९॥
एतं आदीनवं ञत्वा, निस्सयेसु महब्भयं।
अनिस्सितो अनुपादानो, सतो भिक्खु परिब्बजे"ति॥ ३०॥

"सिया अञ्ञेन'पि····पे०····कथञ्च सिया ? रूपेहि, भिक्खवे, आरुप्पा[1] सन्ततरा'ति अयमेकानुपस्सना। आरुप्पेहि[2] निरोधो सन्ततरो'ति अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा····पे०····अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"ये च रूपूपगा सत्ता, ये च आरुप्पवासिनो[3]।
निरोधं अप्पजानन्ता, आगन्तारो पुनब्भवं॥ ३१॥
ये च रूपे परिञ्ञाय, अरूपेसु सुसण्ठिता[4]।
निरोधे ये विमुच्चन्ति, ते जना मच्चुहायिनो"ति॥ ३२॥

"सिया अञ्ञेन'पि····पे०····कथञ्च सिया ? यं, भिक्खवे, सदेवकस्स लोकस्स समारकस्स सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय इदं सच्चन्ति उपनिज्झायितं, तदरियानं एतं मुसाति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं—अयमेकानुपस्सना। यं, भिक्खवे, सदेवकस्स····पे०···· सदेवमनुस्साय इदं मुसाति उपनिज्झायितं तदरियानं एतं सच्चन्ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं—अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा····पे०····अनागामिता"ति। अथापरं एतदवोच सत्था—

"अनत्तनि अत्तमानिं[5], पस्स लोकं सदेवकं।
निविट्ठं नामरूपस्मिं, इदं सच्चन्ति मञ्ञति॥ ३३॥
येन येन हि मञ्ञन्ति, ततो तं होति अञ्ञथा।
तं हि तस्स मुसा होति, मोसधम्मं हि इत्तरं॥ ३४॥

---

१. अरूपा—म०। २. अरूपेहि—म०। ३. अरूपट्ठायिनो—म०। ४. असण्ठिता—म०। ५. अत्तमानी—स्या०; अत्तमानं—रो०, क०।

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?···· कौन-सा है ? जो तृष्णा में लिप्त रहता है उसमें चंचलता आ जाती है—यह एक अनुपश्यना है। जो तृष्णा में निर्लिप्त रहता है उसमें चंचलता नहीं आती है—यह दूसरी अनुपश्यना है ।···· । ···· । शास्ता ने फिर यह कहा—

जो तृष्णा में लिप्त नहीं है उसमें चंचलता नहीं होती है, किन्तु तृष्णा में लिप्त रहने वाले को चंचलता होती है। वह इस लोक और परलोक में चक्कर काटने से मुक्त नहीं हो पाता ॥ २९ ॥

तृष्णा में लिप्त होने में महाभय है—इस दुष्परिणाम को जानकर तृष्णा में निर्लिप्त और अनासक्त हो स्मृति के साथ भिक्षु विचरण करे ॥ ३० ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?···कौन-सा है ? भिक्षुओ ! रूप-लोक से अरूप-लोक शान्ततर है—यह एक अनुपश्यना है। अरूप लोक से निर्वाण शान्ततर है—यह दूसरी अनुपश्यना है ।···· । ··· । शास्ता ने फिर यह कहा—

जो प्राणी रूप लोक में रहते हैं और जो अरूप लोक के निवासी हैं वे निरोध (=निर्वाण) को न जानते हुए पुनर्जन्म में पड़ते हैं ॥ ३१ ॥

और जो रूप को जानकर, अरूप में अनासक्त हैं, जो निर्वाण को प्राप्त विमुक्त हैं, वे लोग मृत्यु का अन्त कर देते हैं ॥ ३२ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है ?···· कौन-सा है ? भिक्षुओ ! देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे सत्य मान लिया है, आर्यों ने सम्यक् प्रज्ञा से उसे यथार्थतः असत्य समझ लिया है—यह एक अनुपश्यना है। देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे असत्य मान लिया है, आर्यों ने सम्यक् प्रज्ञा से उसे यथार्थतः सत्य समझ लिया है—यह दूसरी अनुपश्यना है ।····।····। शास्ता ने फिर यह कहा—

अनात्मा में आत्मा को मानने वाले देव सहित लोक को देखो। नाम और रूप में संलग्न प्राणी इसे सत्य मानता है ॥ ३३ ॥

जिसे जिस प्रकार का मानते हैं, वह उससे भिन्न होता है। यह उनकी धारणा मृषा (=असत्य) होती है। जो असत्य है, वह नश्वर है। ॥ ३४ ॥

अमोसधम्मं निब्बाणं, तदरिया सच्चतो विदू।
ते वे सच्चाभिसमया, निच्छाता परिनिब्बुता"ति ॥ ३५ ॥

"सिया अञ्ञेनपि परियायेन सम्माद्वयतानुपस्सनाति इति चे, क्खवे, पुच्छितारो अस्सु, 'सिया'तिस्सु वचनीया। कथञ्च सिया? भिक्खवे, सदेवकस्स....पे०....सदेवमनुस्साय इदं सुखन्ति उपज्झायितं तदमरियानं एतं दुक्खन्ति यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिट्ठं—अथमेकानुपस्सना। यं, भिक्खवे, सदेवकस्स....पे०....सदेवनुस्साय इदं दुक्खन्ति उपनिज्झायितं, तदमरियानं एतं सुखन्ति थाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं–अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्माद्वयनुपस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितस्स विहरतो द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं–दिट्ठेव धम्मे ञ्ञा, सति वा उपादिसेसे अनागामिता'ति। इदमवोच भगवा, इदं त्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

रूपा सद्दा रसा गन्धा, फस्सा धम्मा च केवला।
इट्ठा कन्ता मनापा च, यावत्थीति वुच्चति ॥ ३६ ॥

सदेवकस्स लोकस्स, एते वो सुखसम्मता।
यत्थ चेते निरुज्झन्ति, तं तेसं[1] दुक्खसम्मतं ॥ ३७ ॥

सुखन्ति दिट्ठमरियेहि, सक्कायस्सुपरोधनं।
पच्चनीकं इदं होति, सब्बलोकेन पस्सतं ॥ ३८ ॥

यं परे सुखतो आहु, तदरिया आहु दुक्खतो।
यं परे दुक्खतो आहु, तदरिया सुखतो विदु।
पस्स धम्मं दुराजानं, सम्पमूल्हेत्थ[2] अविद्दसु[3] ॥ ३९ ॥

निवुतानं तमो होति, अन्धकारो अपस्सतं।
सतञ्च विवटं होति, आलोको पस्सतं इव।
सन्तिके न विजानन्ति, मगा धम्मस्स कोविदा ॥ ४० ॥

---

१. पेसं—म०। २-३ सम्पमूल्हेत्थ' विद्दसु—म०।

निर्वाण अनश्वर है। आर्यों ने उसे सत्य जान लिया है। सत्य को जानने वाले वे तृष्णा-रहित हो परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाते हैं ।। ३५ ।।

क्या कोई दूसरा भी क्रम है? ....कौन-सा है? भिक्षुओ! देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे सुख मान लिया है, आर्यों ने सम्यक् प्रज्ञा से उसे यथार्थतः दुःख समझ लिया है—यह एक अनुपश्यना है देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे दुःख मान लिया है, आर्यों ने उसे दुःख समझा है—यह दूसरी अनुपश्यना है। भिक्षुओ! इन दोनों बातों का मनन करने वाला अप्रमत्त, प्रयत्नशील, तत्पर भिक्षु दो फलों में से एक की कामना कर सकता है—इसी जन्म में पूर्ण ज्ञान या वासनाओं के शेष रहने पर अनागामिता। भगवान् ने यह कहा। सुगत ने यह कह कर फिर शास्ता ने यह कहा—

जितने भी इष्ट, प्रिय और मनाप रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श हैं, उन्हें देव सहित लोक ने सुख मान लिया है और जहाँ उनका निरोध होता है, उसे दुःख मान लिया है ।। ३६-३७ ।।

पाँच स्कन्धों के निरोध को आर्यों ने सुख जान लिया है। सम्यक् दर्शकों का यह अनुभव सांसारिक अनुभव से भिन्न है ।। ३८ ।।

जिसे दूसरे लोग सुख कहते हैं, उसे आर्य लोग दुःख कहते हैं। जिसे दूसरे लोग दुःख कहते हैं, उसे आर्य लोग सुख मानते हैं। जानने में दुष्कर इस धर्म को देखो। अज्ञ जन इस विषय में सर्वथा मूढ़ हैं ।। ३९ ।।

(अविद्या से) ढँके हुए लोगों के लिए तम होता है और अज्ञों के लिए अन्धकारमय होता है। सत्पुरुषों के लिए वह प्रकाश देखने के समान खुला होता है। धर्म को न जानने वाले लोग पास रहने पर भी सत्य नहीं जानते हैं ।।४०।।

अट्ठकवग्गो

१. काम-सुत्तं (४, १)

कामं कामयमानस्स, तस्स चेतं समिज्झति।
अद्धा पीतिमनो होति, लद्धा मच्चो यदिच्छति ॥ १ ॥
तस्स चे कामयमानस्स[1], छन्दजातस्स जन्तुनो।
ते कामा परिहायन्ति, सल्लविद्धोव रुप्पति ॥ २ ॥
यो कामे परिवज्जेति, सप्पस्सेव पदा सिरो।
सो[2] इमं[3] विसत्तिकं लोके, सतो समतिवत्तति ॥ ३ ॥
खेत्तं वत्थुं हिरञ्ञं वा, गवास्सं[4] दासपोरिसं।
थियो बन्धु पुथू कामे, यो नरो अनुगिज्झति ॥ ४ ॥
अबलानं बलीयन्ति, मद्दन्ते नं परिस्सया।
ततो नं दुक्खमन्वेति, नावं भिन्नमिवोदकं ॥ ५ ॥
तस्मा जन्तु सदा सतो, कामानि परिवज्जये।
ते पहाय तरे ओघं, नावं सिञ्चित्व[5] पारगू'ति ॥ ६ ॥

कामसुत्तं निट्ठितं।

२. गुहट्ठक-सुत्तं (४, २)

सत्तो गुहायं बहुनाभिछन्नो, तिट्ठं नरो मोहनस्मिं पगाळ्हो।
दूरे विवेका हि तथाविधो सो, कामा हि लोके न हि सुप्पहाया ॥ १ ॥
इच्छानिदाना भवसातबद्धा, ते दुप्पमुञ्चा न हि अञ्ञमोक्खा।
पच्छा पुरे वा'पि अपेक्खमाना, इमेव कामे पुरिमेव जप्पं ॥ २ ॥

---

१. कामयानस्स—म०। २-३. सोमं—म०। ४. गवस्सं—म०। ५. सित्वाव—म०।

४—अट्ठकवग्ग

१—कामसुत्त (४, १)

[कामभोगों के दुष्परिणाम]

यदि भोग विलास की इच्छा करने वाले की इच्छा पूरी हो जाती है, तो वह व्यक्ति अवश्य ही अपनी इच्छा पूरी होने से प्रसन्न मन होता है ॥ १ ॥

यदि इच्छा करने वाले तृष्णा के वशीभूत उस व्यक्ति की वे काम-भोग की चीजें नष्ट हो जाती हैं, तो वह तीर चुभने की भाँति पीड़ित होता है ॥ २ ॥

सर्प के सिर को पैरों से बचाने की भाँति जो काम-भोग को त्याग देता है तो वह इस संसार में स्मृति के साथ विषैली तृष्णा को त्याग देता है ॥ ३ ॥

जो मनुष्य खेती-बारी (=वस्तु), सोना, गौ, घोड़ा, दास, स्त्रियों या बन्धु सम्बन्धी अनेक प्रकार के भोग-विलास में फँस जाता है ॥ ४ ॥

तो उसे वासनायें दवाती हैं और परेशानियाँ मर्दन करतीं हैं और फिर जैसे फूटी हुई नौका में पानी घुस जाता है, वैसे ही उसके पीछे दुःख हो लेता है ॥५॥

इसलिए व्यक्ति को सदा स्मृतिमान् हो काम-भोगों का परित्याग कर देना चाहिए। उनका त्याग करे, नाव को उलीच कर भव-सागर को पार कर जाय ॥ ६ ॥

कामसुत्त समाप्त।

२—गुहट्ठकसुत्त (४, २)

[संसार की असारता]

शरीर में आसक्त, अनेक कामनाओं से आच्छादित, मोह में संलग्न वैसा व्यक्ति एकान्त-चिन्तन से वहुत दूर है। संसार में काम-भोगों को त्यागना वड़ा कठिन है ॥ १ ॥

जो इच्छाओं के वशीभूत हैं, सांसारिक सुखों में वँधे हुए हैं, उनकी मुक्ति अति कठिन है, क्योंकि वे दूसरों से मुक्त नहीं किए जा सकते। वे भूत और भविष्यत् की वातों की उपेक्षा करते हैं, वर्तमान् कामनाओं की तरह उसके लिए भी तरसते हैं ॥ २ ॥

भवरागपरेतेहि, भवसोतानुसारिहि ।
मारधेय्यानुपन्नेहि, नायं धम्मो सुसम्बुधो ॥ ४१ ॥

को नु अञ्ञत्रमरियेहि, पदं सम्बुद्धमरहति ।
यं पदं सम्मदञ्ञाय, परिनिब्बन्ति अनासवा"ति ॥ ४२ ॥

इदमवोच भगवा । अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं । इमस्मिं खो[1] पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने सट्ठिमत्तानं भिक्खूनं अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसू'ति ।

द्वयतानुपस्सनासुत्तं निट्ठितं ।

---

१. म—म० ।

भवराग के वशीभूत, भव-स्रोत में पड़े और मार के अधीन लोगों के लिए यह धर्म समझना आसान नहीं है ॥ ४१ ॥

आर्यों के अतिरिक्त और कौन उस सम्बोधि-पद के योग्य है, जिसे भली प्रकार समझ कर वे आश्रव-रहित हो परिनिर्वाण को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

भगवान् ने यह कहा। उन भिक्षुओं ने प्रसन्न मन से भगवान् के कथन का अनुमोदन किया। इस उपदेश के कहते समय साठ भिक्षुओं के चित्त आश्रवों से रहित हो विमुक्त हो गए।

द्वयतानुपस्सनासुत्त समाप्त।

महावग्ग समाप्त।

कामेसु गिद्धा पसुता पमूळ्हा, अवदानिया ते विसमे निविट्ठा।
दुक्खूपनीता परिदेवयन्ति, किंसु भविस्साम इतो चुतासे ॥ ३ ॥
तस्मा हि सिक्खेथ इधेव जन्तु, यं किञ्चि जञ्ञा विसमन्ति लोके।
न तस्स हेतु विसमं चरेय्य, अप्पं हिदं जीवितमाहु धीरा ॥ ४ ॥
पस्सामि लोके परिफन्दमानं, पजं इमं तण्हागतं भवेसु।
हीना नरा मच्चुमुखे लपन्ति, अवीततण्हासे भवाभवेसु ॥ ५ ॥
ममायिते पस्सथ फन्दमाने, मच्छे'व अप्पोदके खीणसोते।
एतम्पि दिस्वा अममो चरेय्य, भवेसु आसत्तिमकुब्बमानो ॥ ६ ॥
उभोसु अन्तेसु विनेय्य छन्दं, फस्सं परिञ्ञाय अनानुगिद्धो।
यदत्तगरही तदकुब्बमानो, न लिप्पति[1] दिट्ठसुतेसु धीरो ॥ ७ ॥
सञ्ञं परिञ्ञा वितरेय्य ओघं, परिग्गहेसु मुनि नोपलित्तो।
अब्बूळ्हसल्लो चरमप्पमत्तो, नासिंसति[2] लोकमिमं परञ्चा'ति ॥ ८ ॥

गुहट्ठकसुत्तं निट्ठितं।

३—दुट्ठट्ठक-सुत्तं (३,४)

वदन्ति वे दुट्ठमना'पि एके, अथो'पि वे सच्चमना वदन्ति।
वादञ्च जातं मुनि[3] नो उपेति, तस्मा मुनि नत्थि खिलो कुहिञ्चि ॥१॥
सकञ्हि दिट्ठिं कथमच्चयेय्य, छन्दानुनीतो रुचिया निविट्ठो।
सयं समत्तानि पकुब्बमानो, यथा हि जानेय्य तथा वदेय्य ॥ २ ॥

---

१. लिम्पती—स्या०, क०। २. नासीसती—म०। ३. मुनी—म०।

जो कामों की कामना करते हैं, उनमें संलग्न हैं और उनसे मोहित हैं, जो कंजूस हैं और विषमता में निविष्ट हैं, वे दुःख में पड़कर विलाप करते हैं कि मृत्यु के वाद हम क्या होंगे ? ॥ ३ ॥

इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि संसार में जो कुछ विषमता है, उसे इसी जीवन में जान (दुःख का ख्याल कर) विषमता का आचरण न करे, क्योंकि धीरों ने इस जीवन को अल्प कहा है ॥ ४ ॥

संसार में तृष्णा में फँसी इस प्रजा को तड़फड़ाते हुए मैं देखता हूँ। सांसारिक तृष्णा में हीन नर मृत्यु के मुख में पड़ कर विलाप करते हैं ॥ ५ ॥

अल्प जल वाली क्षीण जलाशय की मछलियों की तरह तृष्णा के वशीभूत हो तड़फड़ाने वालों को देखो। इसको देखकर सांसारिक विषयों में आसक्ति न रखते हुए तृष्णा-रहित हो विचरण करे ॥ ६ ॥

दोनों अन्तों में इच्छा दूर कर, स्पर्श को अच्छी तरह जान, लालायित न हो, आत्म निन्दा की बात न करते हुए धीर दृष्टियों तथा श्रुतियों में लिप्त नहीं होता ॥ ७ ॥

मुनि परिग्रह में लिप्त न हो, संज्ञा को अच्छी तरह जान, भवसागर को तर जाय। कामना रूपी तीर को निकाल कर, अप्रमत्त हो विचरने वाला इस लोक या परलोक की इच्छा नहीं करता ॥ ८ ॥

गुहट्ठकसुत्त समाप्त ।

३—दुट्ठट्ठकसुत्त (४, ३)

[मुनि किसी दृष्टि विशेष में नहीं पड़ते ।]

कुछ लोग दुष्ट मन से निन्दा करते हैं और कुछ लोग सच्चे मन मन से निन्दा करते हैं। मुनि (=भगवान् बुद्ध) इन उपवादों में नहीं पड़ते हैं, इसलिए मुनि के लिए लोक में कहीं भी रागादि के कील नहीं हैं ॥ १ ॥

रागा में पड़ा हुआ, मन से पसन्द किया हुआ व्यक्ति अपनी दृष्टि को कैसे त्याग सकता है ? स्वयं ग्रहण की हुई दृष्टि के अनुसार कार्य करता हुआ वह जैसा जानेगा, वैसा ही बतावेगा ॥ २ ॥

यो अत्तनो सीलवतानि जन्तु, अनानुपुट्ठो च परेस[1] पावा[2] ।
अनरियधम्मं कुसला तमाहु, यो आतुमानं सयमेव पावा[3] ॥ ३ ॥

सन्तो च भिक्खु अभिनिब्बुतत्तो, इति हन्ति सीलेसु अकत्थमानो ।
तमरियधम्मं कुसला वदन्ति, यस्सुस्सदा नत्थि कुहिञ्चि लोके॥ ४ ॥

पकप्पिता सङ्खता यस्स धम्मा, पुरेक्खता[4] सन्ति अवीवदाता ।
यदत्तनि पस्सति आनिसंसं, तं निस्सितो कुप्पपटिच्च सन्ति ॥ ५ ॥

दिट्ठि निवेसा न हि स्वातिवत्ता, धम्मेसु निच्छेय्य समुग्गहीतं ।
तस्मा नरो तेसु निवेसनेसु, निरस्सति आदियती च धम्मं ॥ ६ ॥

धोनस्स हि नत्थि कुहिञ्चि लोके, पकप्पिता दिट्ठि भवाभवेसु ।
मायञ्च मानञ्च पहाय धोनो, स केन गच्छेय्य अनूपयो सो ॥ ७ ॥

उपयो हि धम्मेसु उपेति वादं, अनूपयं केन कथं वदेय्य ।
अत्तं[5] निरत्तं[6] न हि तस्स अत्थि, अधोसि सो दिट्ठिमिधेव सब्बन्ति ॥८॥

दुट्ठट्ठकसुत्तं निट्ठितं ।

४—सुद्धट्ठक-सुत्तं (४, ४)

पस्सामि सुद्धं परमं अरोगं, दिट्ठेन संसुद्धि नरस्स होति ।
एताभिजानं[7] परमन्ति ञत्वा, सुद्धानुपस्सी ति पच्चेति ञाणं ॥ १ ॥

दिट्ठेन चे सुद्धि नरस्स होति, ञाणेन वा सो पजहाति दुक्खं ।
अञ्ञेन सो सुज्झति सोपधीको, दिट्ठीहि नं पाव तथा वदानं ॥ २ ॥

---

१. परस्स—क० । २. पाव—म० । ३. पाव—म० । ४. पुरक्खता—म० । ५. अत्ता—म० । ६. निरत्ता—म० । ७. एवाभिजानं—म० ।

जो व्यक्ति अपने शील-व्रतों को न पूछने पर भी दूसरे को बतलाता है, उसे कुशल लोग अनार्य धर्म कहते हैं, जो कि अपने सम्बन्ध में स्वयं बतलाता है ॥ ३ ॥

जो भिक्षु शान्त है, उपशान्त है और अपने शीलों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता, जिसे संसार में कहीं राग नहीं है, उसे कुशल लोग आर्य धर्म कहते हैं ॥ ४ ॥

जिसके धर्म बनावटी और कल्पित हैं, जो तृष्णा से उत्पन्न हैं, वह अपने में जो गुण देखता है, उसके सहारे ही, उसके कारण ही उन्हें बतलाता है ॥ ५ ॥

दृष्टियों के ग्रहण को आसानी से नहीं छोड़ा जा सकता, क्योंकि निर्णय करके ही कोई दृष्टि ग्रहण की जाती है। इसलिए व्यक्ति उन दृष्टियों में रहते हुए धर्म को बार-बार छोड़ता और ग्रहण करता है ॥ ६ ॥

शुद्ध व्यक्ति संसार में कहीं भी कल्पित दृष्टि नहीं रखता। वह शुद्ध व्यक्ति माया और अभिमान को त्याग कर फिर वह अनासक्त किस कारण विवाद में पड़े ? ॥ ७ ॥

आसक्ति युक्त व्यक्ति ही धर्म सम्बन्धी विवादों में पड़ता है। जो आसक्ति रहित है वह किस कारण और कैसे विवाद में पड़ेगा ? उसे आत्मदृष्टि और उच्छेद-दृष्टि नहीं होती, उसने यहीं सारी दृष्टियों को नष्ट कर दिया है ॥ ८ ॥

दुट्ठट्ठकसुत्त समाप्त।

४—सुद्धट्ठकसुत्त (४, ४)

[अनासक्ति से ही मुक्ति सम्भव।]

"मैं शुद्ध, परम (=श्रेष्ठ), आरोग्य को देखता हूँ—ऐसी दृष्टि से व्यक्ति की शुद्धि नहीं होती। मैं जो यह जानता हूँ, वही सर्वश्रेष्ठ है—ऐसा जान वह शुद्धता को देखने वाला उसे ही परम ज्ञान समझता है ॥ १ ॥

यदि दृष्टि से मनुष्य की शुद्धि होती है अथवा ज्ञान से वह दुःख को त्याग देता तो आसक्ति में पड़े व्यक्ति की शुद्धि अन्य प्रकार से ही हो जाती, किन्तु ऐसा नहीं होता है, वह तो जैसी उसकी दृष्टि होती है, वैसा ही कहता है ॥ २ ॥

न ब्राह्मणो अञ्ञतो सुद्धिमाह, दिट्ठे सुते सीलवते मुते वा।
पुञ्ञे च पापे च अनूपलित्तो, अत्तञ्जहो नयिध पकुब्बमानो ॥ ३ ॥
पुरिमं पहाय अपरं सितासे, एजानुगा ते न तरन्ति सङ्गं।
ते उग्गहायन्ति निरस्सजन्ति, कपीव साखं पमुखं[1] गहाय[2] ॥ ४ ॥
सयं समादाय वतानि जन्तु, उच्चावचं गच्छति सञ्ञसत्तो।
विद्वा च वेदेहि समेच्च धम्मं, न उच्चावचं गच्छति भूरिपञ्ञो ॥ ५ ॥
स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किञ्चि दिट्ठं व सुतं मुतं वा।
तमेव दस्सिं विवटं चरन्तं, केनीध लोकस्मिं विकप्पयेय्य ॥ ६ ॥
न कप्पयन्ति न पुरेक्खरोन्ति, अच्चन्तसुद्धीति न ते वदन्ति।
आदानगन्थं, गथितं विसज्ज, आसं न कुब्बन्ति कुहिञ्चि लोके ॥ ७ ॥
सीमातिगो ब्राह्मणो तस्स नत्थि, ञत्वा'व दिस्वा'व समुग्गहीतं।
न रागरागी न विरागरत्तो, तस्सीध नत्थि परमुग्गहीत'न्ति ॥ ८ ॥

सुद्धट्ठकसुत्तं निट्ठितं।

५—परमट्ठक-सुत्तं (४, ५)

परमन्ति दिट्ठीसु परिब्बसानो, यदुत्तरिं कुरुते जन्तु लोके।
हीनाति अञ्ञे ततो सब्बमाह, तस्मा विवादानि अवीतिवत्तो ॥ १ ॥
यदत्तनि पस्सति आनिसंसं, दिट्ठे सुते सीलवते[3] मुते वा।
तदेव सो तत्थ समुग्गहाय, निहीनतो पस्सति सब्बमञ्ञं ॥ २ ॥

---

१. पमुञ्चं—सी०, म०। २. गहायं—सी०, म०। ३. सीलब्बते—म०।

दृष्टि, श्रुति, शील-व्रत और विचारित में से किसी एक के द्वारा ब्राह्मण ने शुद्धि नहीं कही है। जो पुण्य और पाप में लिप्त नहीं है, जो आत्म-त्यागी और पुण्य-पाप नहीं करने वाला है, वही शुद्ध है ॥ ३ ॥

जो व्यक्ति पहली दृष्टि को त्याग दूसरी दृष्टि को ग्रहण करते हैं, वे तृष्णा के वशीभूत कभी आसक्ति को पार नहीं कर पाते। वे जिस प्रकार बन्दर एक शाखा को छोड़कर दूसरी प्रमुख शाखा को पकड़ता है, ऐसे ही एक दृष्टि को छोड़कर दूसरी को ग्रहण करते हैं ॥ ४ ॥

व्यक्ति स्वयं व्रतों को धारण कर आसक्तियों में पड़ा अन्यान्य ऊँची-नीची दृष्टियों में पड़ जाता है, किन्तु जिसने अच्छी तरह धर्म को समझ लिया है, वह महाप्रज्ञ ऊँची-नीची दृष्टियों के फेर में नहीं पड़ता ॥ ५ ॥

वह महाप्रज्ञ जो कुछ भी दृष्ट, श्रुत या विचारित है उन सब धर्मों में नहीं पड़ता, वह सत्य को देखता हुआ खुला विचरण करता है। तो फिर इस लोक में उसे कैसे विचलित किया जा सकता ? ॥ ६ ॥

न वे किसी दृष्टि को कल्पित करते हैं, और न उसे ग्रहण करते हैं। अत्यन्त शुद्धि को भी वे नहीं कहते हैं। सांसारिक आसक्तियों के बन्धनों के त्याग संसार में कहीं भी तृष्णा नहीं करते हैं ॥ ७ ॥

जिस ब्राह्मण ने पाप को त्याग कर सीमा पार कर लिया है, और जिसने जानकर या देखकर दृष्टिग्राह को त्याग दिया है, जो न राग में लिप्त है और न विराग में हो, यहाँ उसके लिए कुछ सीखने को शेष नहीं है ॥ ८ ॥

सुद्धट्ठकसुत्त समाप्त।

५—परमट्ठकसुत्त (४, ५)

[सत्यदर्शी दार्शनिक विवाद में नहीं पड़ता]

जो व्यक्ति अपनी दृष्टि को सर्वश्रेष्ठ मानता है और संसार में उसी की प्रशंसा करता है। अन्य सभी को उससे हीन बतलाता है, इसलिये वह विवादों से रहित नहीं है ॥ १ ॥

जो अपनी दृष्टि, श्रुति, शील-व्रत या विचारित में गुण देखता है, वह उसी को पकड़ कर रहता है और सभी अन्य दृष्टियों को हीन के तौर पर देखता है ॥२॥

तं वा'पि गन्थं कुसला वदन्ति, यं निस्सितो पस्सति हीनमञ्ञं ।
तस्मा हि दिट्ठं व सुतं मुतं वा, सीलब्बतं भिक्खु न निस्सयेय्य ॥ ३ ॥
दिट्ठिम्पि लोकस्मिं न कप्पयेय्य, ञाणेन वा सीलवतेन वा'पि ।
समो'ति अत्तानमनूपनेय्य, हीनो न मञ्ञेथ विसेसि वा'पि ॥ ४ ॥
अत्तं पहाय अनुपादियानो, ञाणे'पि सो निस्सयं नो करोति ।
स वे वियत्तेसु[1] न वग्गसारी, दिट्ठिम्पि[2] सो न पच्चेति किञ्चि ॥ ५ ॥
यस्सूभयन्ते पणिधीध नत्थि, भवाभवाय इध वा हुरं वा ।
निवेसना तस्स न सन्ति केचि, धम्मेसु निच्छेय्य समुग्गहीता[3] ॥ ६ ॥
तस्सीध दिट्ठे व सुते मुते वा, पकप्पिता नत्थि अणूपि सञ्ञा ।
तं ब्राह्मणं दिट्ठमनादियानं[4], केनीध लोकस्मिं विकप्पयेय्य ॥ ७ ॥
न कप्पयन्ति न पुरेक्खरोन्ति, धम्मा'पि तेसं न पटिच्छितासे ।
न ब्राह्मणो सीलवतेन नेय्यो, पारं गतो न पच्चेति तादी'ति ॥ ८ ॥

परमट्ठकसुत्तं निट्ठितं ।

६—जरा-सुत्तं (४, ६)

अप्पं वत जीवितं इदं, ओरं वस्ससतापि मिय्यति[5] ।
यो चेपि अतिच्च जीवति, अथ खो सो जरसा'पि मिय्यति ॥ १ ॥
सोचन्ति जना ममायिते, न हि सन्ति[6] निच्चा परिग्गहा ।
विनाभावसन्तमेविदं, इति दिस्वा नागारमावसे ॥ २ ॥

१. वियुत्तेसु—सी०, क० । २. दिट्ठिमपि—क० । ३. समुग्गहीतं—म० ।
४. दिट्ठिमनारियानं—सी० । ५. मीयति—सी० । ६. सन्ता—सी० ।

कुशल लोग उसे भी बन्धन कहते हैं जो कि अपनी दृष्टि में बँधकर दूसरों की दृष्टियों को हीन के तौर पर देखता है। इसलिए भिक्षु दृष्टि, श्रुति, विचारित या शील-व्रत के फेर में न पड़े ॥ ३ ॥

संसार में ज्ञान या शील-व्रत से किसी दृष्टि (=मत) की कल्पना न करे। न तो अपने को दूसरों के समान समझे और न उनसे नीच या श्रेष्ठ ही समझे ॥ ४ ॥

जो 'अहं' को त्याग कर आसक्ति-रहित हो गया है, जो ज्ञान में भी आश्रय नहीं ग्रहण करता। वह दलबन्दियों में किसी का साथ नहीं देता और वह किसी दृष्टि में भी नहीं पड़ता है ॥ ५ ॥

जिसे यहाँ दोनों अन्तों में और इस लोक या परलोक में उत्पन्न होने के लिये तृष्णा नहीं है, उसे धार्मिक दृढ़ग्राह से उत्पन्न किसी भी प्रकार की आसक्तियाँ नहीं होती हैं ॥ ६ ॥

उसे किसी दृष्टि, श्रुति या विचारित के विषय में अणुमात्र भी कल्पित धारणा नहीं रहती। किसी भी दृष्टि में अनासक्त उस ब्राह्मण को इस संसार में कौन विचलित कर सकता है ? ॥ ७ ॥

वे न तो दृष्टियों की कल्पना करते हैं और न उन्हें प्रधान रूप से ग्रहण करते हैं। वे उन दृष्टियों को मानते भी नहीं हैं। ब्राह्मण शील-व्रत से भव-सागर नहीं पार करता, पार गया हुआ अर्हत् इन दृष्टियों के फेर में नहीं पड़ता ॥ ८ ॥

परमट्ठकसुत्त समाप्त।

६—जरासुत्त (४, ६)

[अनित्यता का वर्णन]

अहो ! यह जीवन बहुत ही अल्प है ! सौ वर्ष के पहले भी (मनुष्य) मर जाता है। जो इससे अधिक जीता है, वह वृद्धावस्था को प्राप्त होकर मर जाता है ॥ १ ॥

ममत्व में पड़कर लोग शोक करते हैं। किसी प्रकार के परिग्रह नित्य रहने वाले नहीं हैं। इसमें वियोग लगा ही हुआ है। इस प्रकार देखकर घर में न रहे ॥ २ ॥

मरणेन'पि तं पहीयति[1], यं पुरिसो ममिदन्ति मञ्ञति।
एवम्पि विदित्वा पण्डितो, न ममत्ताय[2] नमेथ मामको॥ ३॥

सुपिनेन यथा'पि सङ्गतं, पटिबुद्धो पुरिसो न पस्सति।
एवम्पि पियायितं जनं, पेतं कालकतं न पस्सति॥ ४॥

दिट्ठा'पि सुता'पि ते जना, एसं नाममिदं पवुच्चति।
नामेवावसिस्सति[3], अक्खेय्यं पेतस्स जन्तुनो॥ ५॥

सोकपरिदेवमच्छरं[4], न जहन्ति गिद्धा ममायिते।
तस्मा मुनयो परिग्गहं, हित्वा अचरिंसु खेमदस्सिनो॥ ६॥

पतिलीनचरस्स भिक्खुनो, भजमानस्स विवित्तमानसं।
सामग्गियमाहु तस्स तं, यो अत्तानं भवने न दस्सये॥ ७॥

सब्बत्थ मुनि अनिस्सितो, न पियं कुब्बति नोपि अप्पियं।
तस्मिं परिदेवमच्छरं, पण्णे वारि यथा न लिप्पति॥ ८॥

उदबिंदु यथा'पि पोक्खरे, पदुमे वारि यथा न लिप्पति।
एवं मुनि नोपलिप्पति[5], यदिदं दिट्ठसुतं मुतेसु वा॥ ९॥

धोनो न हि तेन मञ्ञति, यदिदं दिट्ठसुतं मुतेसु वा।
न अञ्ञेन विसुद्धिमिच्छति, न हि सो रज्जति नो विरज्जती'ति॥१०॥

जरासुत्तं निट्ठितं।

७—तिस्समेत्तेय्य-सुत्तं (४, ७)

मेथुनमनुयुत्तस्स (इच्चायस्मा तिस्सो मेत्तेय्यो), विघातं ब्रूहि मारिस।
सुत्वान तव सासनं, विवेके सिक्खिस्सामसे॥ १॥

मेथुनमनुयुत्तस्स (मेत्तेय्याति भगवा), मुस्सतेवापि सासनं।
मिच्छा च पटिपज्जति, एतं तस्मिं अनारियं॥ २॥

---

१. पहिय्यति—सी०, स्या०, कं०। २. पमत्ताय—सी०। ३. नामयेवावसिस्सति—म०।
४. सोकप्परिदेवमच्छरं—म०। ५. लिम्पति—म०।

पुरुष जिसे अपना समझता है उसे भी मरने पर छोड़ जाता है। इसलिए पण्डित को चाहिए कि ऐसा जानकर ममत्व की ओर अपने को न झुकाये ॥ ३ ॥

जैसे स्वप्न में प्राप्त वस्तु को मनुष्य जागने पर नहीं देखता, ऐसे ही प्रिय-जनों को मर जाने पर नहीं देख पाता है ॥ ४ ॥

जो देखे और सुने जाते हैं, उनकी चर्चा होती है। मृत मनुष्य का नाम मात्र अवश्य रह जाता है ॥ ५ ॥

जो बहुत लोभी और ममत्व वाले हैं वे शोक, विलाप और कंजूसी को नहीं छोड़ते हैं, इसलिए मुनि लोग परिग्रह को छोड़ निर्वाणदर्शी हो विचरण करते थे॥६॥

एकाग्र-चित्त हो विचरण करने वाले, एकान्त-चिन्तन में लीन रहने वाले भिक्षु के लिए यह योग्य है कि वह अपने को फिर पुनर्जन्म में न पड़ने दे ॥ ७ ॥

मुनि सर्वथा अनासक्त होता है, न वह किसी को प्रिय बनाता है और न अप्रिय। जिस प्रकार पत्ते के ऊपर जल नहीं ठहरता, उसी प्रकार विलाप और कंजूसी उसे प्रभावित नहीं करते ॥ ८ ॥

जिस प्रकार कमल या पद्म के पत्ते पर जल नहीं ठहरता, उसी प्रकार मुनि दृष्टि, श्रुति या विचारित में लिप्त नहीं होता ॥ ९ ॥

शुद्ध पुरुष दृष्टि, श्रुति या विचारित को नहीं अपनाता। वह दूसरे की सहायता से शुद्धि की इच्छा नहीं करता। वह न तो किसी में रत होता है और न विरक्त ही ॥ १० ॥

जरासुत्त समाप्त।

७-तिस्समेत्तेय्यसुत्त (४, ७)

[मैथुन का त्याग]

आयुष्मान् तिस्समेत्तेय्य—

हे मार्ष! मैथुन-धर्म में लगे हुए की हानि को बतलायें, आपके उपदेश को सुनकर एकान्तवास का अभ्यास करूँगा ॥ १ ॥

भगवान्—

जो व्यक्ति मैथुन-धर्म में लगता है, उसे उपदेश भूल जाते हैं और वह मिथ्या-मार्ग पर चलने लगता है—यह उसमें अनार्य की बात है ॥ २ ॥

एको पुब्बे चरित्वान, मेथुनं यो निसेवति ।
यानं भन्तं'व तं लोके, हीनमाहु पुथुज्जनं ।। ३ ।।

यसो कित्तिञ्च या पुब्बे, हायते वा'पि तस्स सा ।
एतम्पि दिस्वा सिक्खेथ, मेथुनं विप्पहातवे ।। ४ ।।

संकप्पेहि परेतो यो, कपणो विय झायति ।
सुत्वा परेसं निग्घोसं, मंकु होति तथाविधो ।। ५ ।।

अथ सत्थानि कुरुते, परवादेहि चोदितो ।
एस ख्वस्स महागेधो, मोसवज्जं पगाहति ।। ६ ।।

पण्डितो'ति समञ्ञातो, एकचरियं अधिट्ठितो ।
अथा'पि मेथुने युत्तो, मन्दो'व परिकिस्सति[1] ।। ७ ।।

एतमादीनवं ञत्वा, मुनि पुब्बापरे इध ।
एक चरियं दळ्हं कयिरा[2], न निसेवेथ मेथुनं ।। ८ ।।

विवेकं येव सिक्खेथ, एतदरियानमुत्तमं ।
तेन सेट्ठो न मञ्ञेथ, स वे निब्बानसन्तिके ।। ९ ।।

रित्तस्स मुनिनो चरतो, कामेसु अनपेक्खिनो ।
ओघतिण्णस्स पिहयन्ति, कामेसु गथिता[3] पजा'ति ।। १० ।।

तिस्समेत्तेय्यसुत्तं निट्ठितं ।

८—पसूर-सुत्तं (४, ८)

इधेव सुद्धि इति वादियन्ति[4], नाञ्ञेसु धम्मेसु विसुद्धिमाहु ।
यं निस्सिता तत्थ सुभं वदाना, पच्चेकसच्चेसु पुथू निविट्ठा ।।१।।

ते वादकामा परिसं विगय्ह, बालं दहन्ति मिथु अञ्ञमञ्ञं ।
वदन्ति ते अञ्ञसिता कथोज्जं, पसंसकामा कुसला वदाना ।। २ ।।

---

१. परिकिलिस्सति—सी० । २. कयिराथ—सी० । ३. गंधिता—म० । ४. वादयन्ति—म० ।

जो पहले अकेला विचरण करके फिर मैथुन का सेवन करता है, वह इस संसार में भ्रान्त रथ के समान नीच और पृथक् जन (=अनाड़ी) कहा जाता है ॥ ३ ॥

पहले उसका जो यश और कीर्ति रही है उसे वह नष्ट कर डालता है। इसे भी देखकर मैथुन को त्यागने का अभ्यास करे ॥ ४ ॥

जो संकल्पों के वशीभूत हो, भिखारी की भाँति सोचता है, ऐसा व्यक्ति दूसरों की निन्दा को सुनकर मौन धारण कर लेता है ॥ ५ ॥

दूसरों के अपवादों से उत्तेजित हो वह झूठ[1] बोलता है। यह एक बड़ा वन्धन है। वह (इस वन्धन में पड़कर) झूठ बोलने लगता है ॥ ६ ॥

पण्डित रूप में प्रसिद्ध और एकचर्या में प्रतिष्ठित जो व्यक्ति मैथुन में आसक्त होता है वह मूढ़ की तरह क्लेश को प्राप्त होता है ॥ ७ ।

मुनि आरम्भ और अन्त में इस दुष्परिणाम को जान अकेले दृढ़ता पूर्वक विचरण करे और मैथुन का सेवन न करे ॥ ८ ॥

एकान्त-चिन्तन का अभ्यास करे। यह आर्यों की उत्तम बात है। उससे अपने को श्रेष्ठ न समझे, वही निर्वाण के पास पहुँचा हुआ है ॥ ९ ॥

आसक्तियों से रहित होकर, काम-भोगों की अपेक्षा न करते विचरण करने वाले भव-पारंगत मुनि की स्पृहा काम-भोग में आसक्त लोग करते हैं ॥ १० ॥

तिस्समेत्तेय्यसुत्त समाप्त।

८-पसूरसुत्त (४, ८)

[ज्ञानी पुरुष विवाद में नहीं पड़ता]

'यहीं शुद्धि है'—लोग ऐसा कहकर विवाद करते हैं और कहते हैं कि 'अन्य धर्मों में शुद्धि नहीं है।' वे जिसे मानते हैं उसे ही अच्छा कहते हैं। लोग विभिन्न धर्मों को मानते हैं ॥ १ ॥

वे विवाद की कामना वाले परिषद् में जाकर एक दूसरे को मूर्ख बताते हैं। वे विभिन्न गुरुओं को मानते हुए उनकी प्रशंसा करते हैं और अपने को कुशल मानते हैं ॥ २ ॥

---

१. यहाँ 'शस्त्र' का अर्थ असत्यभाषण है—अट्ठकथा।

युत्तो कथायं परिसाय मज्झे, पसंसमिच्छं विनिघाति होति।
अपाहतस्मिं पन मंकु होति, निन्दाय सो कुप्पति रन्धमेसी ॥ ३ ॥
यमस्स वादं परिहीनमाहु, अपाहतं पञ्हवीमंसकासे।
परिदेवति सोचति हीनवादो, उपच्चगा मन्ति अनुत्थुनाति ॥ ४ ॥
एते विवादा समणेसु जाता, एतेसु उग्घाति निघाति होति।
एतम्पि[1] दिस्वा विरमे कथोज्जं, न हञ्ञदत्थत्थि पसंसलाभा ॥ ५ ॥
पसंसितो वा पन तत्थ होति, अक्खाय वादं परिसाय मज्झे।
सो हस्सति उण्णमतिच्च तेन, पप्पुय्य तमत्थं यथामनो अहु ॥ ६ ॥
या उण्णति[2] सास्स विघातभूमि, मानातिमानं वदते पनेसो।
एतम्पि दिस्वा न विवादयेथ, न हि तेन सुद्धिं कुसला वदन्ति ॥ ७ ॥
सूरो यथा राजखादाय पुट्ठो, अभिगज्जमेति पटिसूरमिच्छं।
येनेव सो तेन पलेहि सूर, पुब्बे'व नत्थि यदिदं युधाय ॥ ८ ॥
ये दिट्ठिमुग्गय्ह विवादियन्ति, इदमेव सच्चन्ति च वादियन्ति[3]।
ते त्वं वदस्सु न हि ते'ध अत्थि, वादम्हि जाते पटिसेनिकत्ता ॥ ९ ॥
विसेनि कत्वा पन ये चरन्ति, दिट्ठीहि दिट्ठिं अविरुज्झमाना।
तेसु त्वं किं लभेथ पसूर, येसीध नत्थि परमुग्गहीतं ॥१०॥
अथ तं पवितक्कमागमा, मनसा दिट्ठिगतानि चिन्तयन्तो।
धोनेन युगं समागमा, न हि त्वं सग्घसि[4] सम्पयातवे'ति ॥११॥

पसूरसुत्तं निट्ठितं।

---

१. एवम्पि—सी०। २. उण्णती—म०। ३. विवादयन्ति—म०। ४. सक्खसि—म०।

परिषद् के मध्य वार्ता में संलग्न हो अपनी प्रशंसा चाहते हुए पहले ही वाद निरोपित करता है, किन्तु हार जाने पर मौन हो जाता है और वह छिद्रान्वेषी अपनी निन्दा से क्रोधित हो उठता है ।। ३ ।।

प्रश्न पूछने वालों से पराजित हो, पराजय को दिखाने पर वह परास्त मनुष्य विलाप करता है, शोक करता है, और वह यह सोचकर पश्चाताप करता है कि उसने मुझे पराजित कर दिया । ४ ।।

ये विवाद श्रमणों में उठते हैं । उनमें प्रहार तथा प्रतिप्रहार होता है । इस बात को देखकर विवाद से रहित रहे । इसमें प्रशंसा-प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं है ।। ५ ।।

वह परिषद् के बीच अपने मत का समर्थन कर प्रशंसित होता है । वह मन के अनुसार इच्छा को पूरा कर उससे हँसता और अभिमान करता है ।। ६ ।।

वह अभिमान को विनाश का कारण न जानते हुए और भी मान और अभिमान की बातें करता है । इसे भी देखकर विवाद में न पड़े । कुशल लोग उससे शुद्धि नहीं बतलाते ।। ७ ।।

जैसे राजा के भोजन से पला पहलवान मुकाबले के लिए अपने प्रतिद्वन्द्वी पहलवान को ललकारता है, वैसे ही पसूर ! तुम उसी प्रकार के लोगों के पास जा । क्योंकि मेरे पास पहले से ही युद्ध (=विवाद) के लिए कुछ शेष नहीं है ।। ८ ।।

जो दृष्टि को ग्रहण कर विवाद करते हैं और यही सत्य है—ऐसा कहकर विवाद करते हैं । उन्हें कहना चाहिये कि विवाद उत्पन्न होने पर तुम्हारे साथ बहस करने के लिए यहाँ कोई नहीं है ।। ९ ।।

जो लोग एक दृष्टि से दूसरी दृष्टि का विरोध न करते हुए प्रतिद्वन्द्वी रहित हो विचरण करते हैं, क्या पसूर ! शिक्षा समाप्त उन्हें तुम विवाद में पा सकते हो ? ।। १० ।।

अपनी दृष्टि के समर्थन में अनेक बातें सोचते हुए जब तुम शुद्ध पुरुष के पास पहुँचे हो तो विवाद में तुम उसे नहीं पा सकते ।। ११ ।।

पसूरसुत्त समाप्त ।

९—मागन्दिय-सुत्तं (४, ९)

दिस्वान तण्हं अरतिं रगञ्च, नाहोसि छन्दो अपि मेथुनस्मिं ।
किमेविदं मुत्तकरीसपुण्णं, पादा'पि नं सम्फुसितुं न इच्छे ॥ १ ॥
एतादिसं चे रतनं न इच्छसि, नारिं नरिन्देहि बहूहि पत्थितं ।
दिट्ठिगतं सीलवतानुजीवितं[1], भवूपपत्तिञ्च वदेसि कीदिसं ॥ २ ॥
इदं वदामीति न तस्स होति (मागन्दियाति[2] भगवा),
धम्मेसु निच्छेय्य समुग्गहीतं ।
पस्सञ्च दिट्ठीसु अनुग्गहाय, अज्झत्तसन्तिं पचिनमदस्सं ॥ ३ ॥
विनिच्छया यानि पकप्पितानि (इति मागन्दियो),
ते वे मुनी ब्रूसि अनुग्गहाय ।
अज्झत्तसन्तीति यमेतमत्थं, कथन्नु धीरेहि पवेदितं तं ॥ ४ ॥
न दिट्ठिया न सुतिया न ञाणेन (मागन्दियाति भगवा),
सीलब्बतेनापि न सुद्धिमाह ।
अदिट्ठिया अस्सुतिया[3] अञाणा, असीलता अब्बता नोपि तेन ।
एते च निस्सज्ज अनुग्गहाय, सन्तो अनिस्साय भवं न जप्पे ॥ ५ ॥
नो चे किर दिट्ठिया न सुतिया न ञाणेन (इति मागन्दियो),
सीलब्बतेनापि विसुद्धिमाह ।
अदिट्ठिया अस्सुतिया अञाणा, असीलता अब्बता नोपि तेन ।
मञ्ञामहं मोमुहमेव धम्मं, दिट्ठिया एके पच्चेन्ति सुद्धिं ॥ ६ ॥

---

१. सीलवतं नु जीवितं—म० । २. मागण्डियाति—म० । ३. असुतिया—सी० ।

९—मागन्दियसुत्त (४, ९)

[मागन्दिय ब्राह्मण ने भगवान् से अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव रखा। भगवान् के अस्वीकार करने पर दृष्टिवाद के सम्बन्ध में उसने भगवान् से प्रश्न पूछा। भगवान् ने दृष्टिवाद का खण्डन कर निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग बतलाया।]

भगवान्—

तृष्णा, अरति और रगा को देखकर भी मैथुन की इच्छा नहीं हुई, तो मल-मूत्र से परिपूर्ण यह (तुम्हारी कन्या) क्या है? इसे मैं पैरों से भी स्पर्श करना नहीं चाहता ॥ १ ॥

मागन्दिय—

इस प्रकार के स्त्री-रत्न को जिसे कि बहुत से राजा पाने की इच्छा करते हैं, यदि आप नहीं चाहते हैं तो बतलायें कि दृष्टि, शील-व्रत, जीवन और पुनर्जन्म के विषय में आपके क्या विचार हैं? ॥ २ ॥

भगवान्—

धर्मों को भली प्रकार ज्ञानकर मैं किसी मत को नहीं अपनाता। दृष्टियों के दुष्परिणाम को देखकर उनमें आसक्त न हो मैंने आध्यात्मिक शान्ति की गवेषणा की और उसे पाया ॥ ३ ॥

मागन्दिय—

हे मुनि! आपने अनुग्रह पूर्वक कल्पितमतों के सम्बन्ध में अपने निर्णय बतलाये। आप धीर द्वारा जो आध्यात्मिक शान्ति कही गई है, उसे आपने कैसा बतलाया है? ॥ ४ ॥

भगवान्—

न तो दृष्टि, श्रुति, ज्ञान, शील-व्रत, और न अश्रुति, अज्ञान और अशील-अव्रत से ही शुद्धि कही गई है। इन्हें त्यागकर, इनमें आसक्त न हो, शान्त पुरुष कहीं भी लिप्त न हो पुनर्जन्म की इच्छा न करे ॥ ५ ॥

मागन्दिय—

यदि दृष्टि, श्रुति, शील-व्रत से या अदृष्टि, अश्रुति, अज्ञान और अशील-अव्रत से शुद्धि नहीं होती हो तो मैं इस धर्म को भ्रमात्मक मानता हूँ, क्योंकि कुछ लोग दृष्टि से शुद्धि बतलाते हैं ॥ ६ ॥

दिट्ठिञ्च निस्साय अनुपुच्छमानो (मागन्दियाति भगवा),
समुग्गहीतेसु पमोहमागा[1] ।
इतो च नादक्खि अणुम्पि सञ्ञं, तस्मा तुवं मोमुहतो दहासि ॥ ७ ॥
समो विसेसी उद वा निहीनो, यो मञ्ञती सो विवदेथ तेन ।
तीसु विधासु अविकम्पमानो, समो विसेसीति न तस्स होति ॥ ८ ॥
सच्चन्ति सो ब्राह्मणो किं वदेय्य, मुसा'ति वा सो विवदेथ केन ।
यस्मिं समं विसमञ्चापि नत्थि, सो केन वादं पटिसंयुजेय्य ॥ ९ ॥
ओकं पहाय अनिकेतसारी, गामे अकुब्बं मुनि सन्थवानि[2] ।
कामेहि रित्तो अपुरेक्खरानो, कथं न विग्गय्ह जनेन कयिरा ॥१०॥
येहि विवित्तो विचरेय्य लोके, न तानि उग्गय्ह वदेय्य नागो ।
एलम्बुजं[3] कण्टकं वारिजं यथा, जलेन पङ्केन च नूपलित्तं ।
एवं मुनी सन्तिवादो अगिद्धो, कामे च लोके च अनूपलित्तो ॥११॥
न वेदगू दिट्ठिया[4] न मुतिया, समानमेति न हि तम्मयो सो ।
न कम्मना नोपि सुतेन नेय्यो, अनूपनीतो सो निवेसनेसु ॥१२॥
सञ्ञाविरत्तस्स न सन्ति गन्था, पञ्ञाविमुत्तस्स न सन्ति मोहा ।
सञ्ञञ्च दिट्ठिञ्च अग्गहेसुं, ते घट्टयन्ता[5] विचरन्ति लोके'ति ॥१३॥

मागन्दियसुत्तं निट्ठितं ।

---

१. पमाहमागमा—सी०; समहमागा—स्या०, क० ।

२. सन्दवानि—क० ।

३. जलम्बुजं—म० ।

४. दिट्ठियायको—म० ।

५. घट्टमाना—स्या०, क० ।

भगवान्—

दृष्टि में आश्रित हो, आसक्त हो और मोहित हो तुम प्रश्न करते हो। तुम्हें आध्यात्मिक शान्ति का अणुमात्र भी ज्ञान नहीं, इसलिए तुम हमें भ्रमात्मक समझते हो ॥ ७ ॥

जो अपने को दूसरों के समान, उनसे उत्तम या हीन समझता है, उसके कारण वह विवाद में पड़ता है। जो इन तीनों अवस्थाओं में अविचिलित रहता है, उसे समानता या उत्तमता का ख्याल नहीं रहता ॥ ८ ॥

जिसमें समता या विषमता का ख्याल नहीं है, वह ब्राह्मण किसे सत्य या असत्य सिद्ध करने को बहस करे? वह किसके साथ विवाद करे? ॥ ९ ॥

घर का त्याग कर बेघर का हो विचरण करने वाला मुनि गाँव में मेल-जोल न करते काम-भोगों से रहित, पुनर्जन्म की इच्छा न करने वाला लोगों के साथ विवाद की बातें न करे ॥ १० ॥

उत्तम पुरुष जिन दृष्टियों से अलग हो विचरण करता है। वह उन्हें ही पकड़ कर विवाद न करे। जिस प्रकार जल में उत्पन्न होने वाला कंटकमय कमल जल और कीचड़ से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार शान्तिवादी तृष्णा रहित मुनि काम-भोगों और संसार में लिप्त नहीं होता ॥ ११ ॥

ज्ञानी पुरुष किसी दृष्टि या विचार के कारण अभिमान नहीं करता और न वह उससे लिप्त ही होता है। वह किसी कर्म विशेष या श्रुति के फेर में भी नहीं पड़ता, क्योंकि वह दृष्टियों के अधीन नहीं है ॥ १२ ॥

काम-भोगों से विमुक्त मनुष्य के लिए बन्धन नहीं हैं। प्रज्ञा द्वारा विमुक्त मनुष्य के लिए मोह नहीं हैं। जो काम-भोगों और दृष्टि में लिप्त हैं, वे संघर्ष करते हुए लोक में विचरण करते हैं ॥ १३ ॥

मागन्दियसुत्त समाप्त।

१०—पुराभेद-सुत्तं (४, १०)

कथंदस्सी कथंसीलो, उपसन्तो'ति वुच्चति।
तं मे गोतम पब्रूहि, पुच्छितो उत्तमं नरं ॥ १ ॥

वीततण्हो पुरा भेदा (ति भगवा), पुब्बमन्तमनिस्सितो।
वेमज्झे नूपसङ्खेय्यो[1], तस्स नत्थि पुरेक्खतं ॥ २ ॥

अक्कोधनो असन्तासी, अविकत्थी अकुक्कुचो।
मन्तभाणी[2] अनुद्धतो, स वे वाचायतो मुनि ॥ ३ ॥

निरासत्ति अनागते, अतीतं नानुसोचति।
विवेकदस्सी फस्सेसु, दिट्ठीसु च न निय्यति[3] ॥ ४ ॥

पतिलीनो अकुहको, अपिहालु अनच्छरी।
अप्पगब्भो अजेगुच्छो, पेसुणेय्ये च नो युतो ॥ ५ ॥

सातियेसु अनस्सावी, अतिमाने च नो युतो।
सण्हो च पटिभानवा[4], न सद्धो न विरज्जति ॥ ६ ॥

लाभकम्या न सिक्खति, अलाभे न च कुप्पति।
अविरुद्धो च तण्हाय, रसे च नानुगिज्झति ॥ ७ ॥

उपेक्खको सदा सतो, न लोके मञ्ञते समं।
न विसेसी न नीचेय्यो, तस्स न सन्ति उस्सदा ॥ ८ ॥

यस्स निस्सयता[5] नत्थि, ञत्वा धम्मं अनिस्सितो।
भवाय विभवाय वा, तण्हा यस्स न विज्जति ॥ ९ ॥

---

१. नुपसंखेय्यो—म०।
२. मन्ताभाणी—स्या०, रो०।
३. नीयति—म०।
४. पटिभाणवः—स्या०, रो०।
५. निस्सयना—म०।

१०—पुराभेदसुत्त (४, १०)

[शान्त पुरुष कौन ?]

देवता—

किस प्रकार के दर्शन (=ज्ञान) वाला और किस प्रकार के शील वाला व्यक्ति उपशान्त कहा जाता है ? हे गौतम ! मेरे पूछने पर उस उत्तम पुरुष को बतलावें ॥ १ ॥

भगवान्—

जो शरीर त्याग के पूर्व ही तृष्णा-रहित हो गया है और जो भूत तथा भविष्य पर आश्रित नहीं है, जो वर्तमान पर भी आश्रित नहीं है, उसके लिए कहीं आसक्ति नहीं है ॥ २ ॥

जो क्रोध, त्रास, आत्म-प्रशंसा और चंचलता रहित है, जो विचार कर बोलने वाला है, अभिमान रहित है और वचन में सयमी है, वह मुनि है ॥ ३ ॥

जो भविष्य के विषय में आसक्ति नहीं रखता और भूत के विषय में पश्चा-ताप नहीं करता, जो स्पर्शों में विवेकदर्शी है, वह दृष्टियों के फेर में नहीं पड़ता ॥ ४ ॥

जो राग, ढोंग, स्पृहा, कंजूसी, प्रगल्भता और घृणा से रहित है और चुगल-खोरी में नहीं लगता ॥ ५ ॥

जो काम-भोगों में नहीं रत रहता है, अभिमान नहीं करता है, शान्त और प्रतिभावान् है, वह न तो श्रद्धालु होता है और न विरक्त ही होता है ॥ ६ ॥

वह लाभ चाहते हुए अभ्यास नहीं करता, अलाभ होने पर कुपित नहीं होता, व तृष्णा का विरोधी हो रस में लिप्त नहीं होता ॥ ७ ॥

जो उपेक्षक है, सदा स्मृतिमान् रहने वाला है, लोक में किसी को समान, श्रेष्ठ या नीच नहीं मानता, उसमें राग नहीं होते ॥ ८ ॥

जिसमें तृष्णा नहीं है, जो धर्म को जानकर उत्पत्ति या विनाश[1] के प्रति तृष्णा रहित हो गया है और जिसमें तृष्णा नहीं है ॥ ९ ॥

---

१. शाश्वत या उच्छेद—अट्ठकथा।

तं ब्रूमि उपसन्तो'ति, कामेसु अनपेक्खिनं।
गन्था तस्स न विज्जन्ति, अतारि सो विसत्तिकं ॥ १० ॥

न तस्स पुत्ता पसवो वा, खेत्तं वत्थुं न विज्जति।
अत्तं[1] वापि निरत्तं[2] वा, न तस्मिं उपलब्भति ॥ ११ ॥

येन नं वज्जु पुथुज्जना, अथो समणब्राह्मणा।
तं तस्स अपुरेक्खतं, तस्मा वादेसु नेजति ॥ १२ ॥

वीतगेधो अमच्छरी, न उस्सेसु वदते मुनि।
न समेसु न ओमेसु, कप्पं नेति अकप्पियो ॥ १३ ॥

यस्स लोके सकं नत्थि, असता च न सोचति।
धम्मेसु च न गच्छति, स वे सन्तो'ति वुच्चती'ति ॥ १४ ॥

पुराभेदसुत्तं निट्ठितं।

११—कलहविवाद-सुत्तं (४, ११)

कुतो पहूता कलहा विवादा, परिदेवसोका सह मच्छरा च।
मानातिमाना सह पेसुणा च, कुतो पहूता ते तदिङ्घ ब्रूहि ॥ १ ॥

पिया पहूता कलहा विवादा, परिदेवसोका सह मच्छरा च।
मानातिमाना सह पेसुणा च, मच्छरिययुत्ता कलहाविवादा।
विवादजातेसु च पेसुणानि ॥ २ ॥

पिया नु[3] लोकस्मिं कुतो निदाना, ये वापि[4] लोभा विचरन्ति लोके।
आसा च निट्ठा च कुतो निदाना, ये सम्परायाय नरस्स होन्ति ॥३॥

छन्दानिदानानि पियानि लोके, ये वा'पि लोभा विचरन्ति लोके।
आसा च निट्ठा च इतो निदाना, सम्परायाय नरस्स होन्ति ॥४॥

---

१. अत्ता— म०। २. निरत्ता—म०।
३. पिया सु—सी०, म०। ४. चापि—म०।

काम-भोगों की अपेक्षा न करने वाले उस व्यक्ति को उपशान्त कहता हूँ। उसके लिए सांसारिक बन्धन नहीं है। वह तृष्णा से परे हो गया है॥ १० ॥

उसके लिए पुत्र, पशु, खेत या धन नहीं हैं और न उसके लिए अपना या पराया है॥ ११ ॥

जिस बात में पृथक् जन और श्रमण तथा ब्राह्मण उसे दोषी ठहराते हैं, वह उसमें दोषी नहीं है। इसलिए वह अपनी निन्दा से विचलित नहीं होता॥१२॥

राग और कंजूसी रहित मुनि अपने को श्रेष्ठ, समान या निम्न लोगों में नहीं गिनता। वह पुनर्जन्म में नहीं पड़ता, क्योंकि वह जन्म से परे हो गया है॥१३॥

जिसका संसार में अपना कुछ नहीं है, जो अभाव के लिए पश्चात्ताप नहीं करता और जो सब धर्मों में रागादि के वश में नहीं पड़ता है। वही शान्त कहा जाता है॥ १४ ॥

पुराभेदसुत्त समाप्त।

११—कलहविवाद-सुत्त (४, ११)

[कलह के कारण]

देवता—

यह बतायें कि कलह, विवाद, विलाप, शोक, कंजूसी, मान, अभिमान तथा चुगली कहाँ से उत्पन्न होते हैं?॥ १ ॥

भगवान्—

कलह, विवाद, विलाप, शोक, कंजूसी, मान, अभिमान और चुगली प्रिय से उत्पन्न होते हैं। कलह और विवाद कंजूसी से युक्त हैं और विवाद के उत्पन्न होने पर चुगली होती है॥ २ ॥

देवता—

संसार में प्रिय कहाँ से उत्पन्न होता है? अथवा जो लोभ के कारण संसार में विचरण करते हैं, वे कहाँ से उत्पन्न होते हैं? इच्छा और उसकी पूर्ति कैसे होती है, जो मनुष्य के पुनर्जन्म के हेतु हैं?॥ ३ ॥

भगवान्—

प्रियों का कारण राग है अथवा जो लोभ के कारण लोग संसार में विचरण करते हैं। इच्छा और उसकी पूर्ति का हेतु भी यही है, जो मनुष्य के पुनर्जन्म के हेतु हैं॥ ४ ॥

छन्दो नु लोकस्मिं कुतो निदानो, विनिच्छया वा'पि[1] कुतो पहूता।
कोधो मोसवज्जञ्च कथंकथा च, ये वा'पि धम्मा समणेन वुत्ता ॥५॥

सातं असातन्ति यमाहु लोके, तमूपनिस्साय पहोति छन्दो।
रूपेसु दिस्वा विभवं भवञ्च, विनिच्छयं कुरुते जन्तु लोके ॥६॥

कोधो मोसवज्जञ्च कथंकथा च, एते'पि धम्मा द्वयमेव सन्ते।
कथंकथी ञाणपथाय सिक्खे, ञत्वा पवुत्ता समणेन धम्मा ॥७॥

सातं असातञ्च कुतो निदाना, किस्मिं असन्ते न भवन्ति हेते।
विभवं भवञ्चापि यमेतमत्थं, एतं मे पब्रूहि यतो निदानं ॥८॥

फस्सनिदानं सातं असातं, फस्से असन्ते न भवन्ति हेते।
विभवं भवञ्चापि यमेतमत्थं, एतं ते पब्रूमि इतो निदानं ॥९॥

फस्सो नु लोकस्मिं कुतो निदानो, परिग्गहा चापि कुतो पहूता।
किस्मिं असन्ते न ममत्तमत्थि, किस्मिं विभूते न फुसन्ति फस्सा ॥१०॥

नामञ्च रूपञ्च पटिच्च फस्सा, इच्छानिदानानि परिग्गहानि।
इच्छा[2] न सन्त्या[3] न ममत्तमत्थि, रूपे विभूते न फुसन्ति फस्सा ॥११॥

कथं समेतस्स विभोति रूपं, सुखं दुखं[4] वा'पि[5] कथं विभोति।
एतं मे पब्रूहि यथा विभोति, तं[6] जानियाम इति[7] मे मनो अहु ॥१२॥

---

१. चापि—म०।

२–३. इच्छाय सन्त्या— म०।

४–५. दुखञ्चापि–म०।

६–७. तं जानियामाति–म०; तञ्जानिस्सामाति–सी, क०।

देवता—

श्रमण (=बुद्ध) ने जो धर्म बतलाये हैं, उसके अनुसार इच्छा कहाँ से उत्पन्न होती है ? अथवा विनिश्चिय, क्रोध, असत्य भाषण तथा सन्देह कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? ॥ ५ ॥

भगवान्—

संसार में जो प्रिय और अप्रिय वस्तु हैं, उन्हीं के कारण इच्छा होती है। रूप के विनाश और उत्पत्ति को देखकर लोग यहाँ किसी निश्चय पर पहुँचते हैं ॥ ६ ॥

श्रमण ने जानकर इन धर्मों को बतलाया है कि क्रोध, असत्य भाषण और सन्देह—ये धर्म भी दोनों (=प्रिय और अप्रिय) बातों से उत्पन्न होते हैं। सन्देह करने वाले व्यक्ति को ज्ञान-पथ का अभ्यास करना चाहिए ॥ ७ ॥

देवता—

मुझे इनकी उत्पत्ति के कारण को बतायें कि सुख (=सात) और दुःख (=असात) वेदनाएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं ? किसके न होने पर ये नहीं होतीं ? नाश और उत्पत्ति —जो कहे गए हैं, इनका भी कारण बतलायें ॥ ८ ॥

भगवान्—

स्पर्श के कारण सुख और दुःख वेदनायें होती हैं। स्पर्श के न होने पर ये नहीं होतीं। जो विनाश और उत्पत्ति कहे गए हैं, इनका भी कारण इन्हें ही बताता हूँ ॥ ९ ॥

देवता—

संसार में स्पर्श कहाँ से उत्पन्न होता है ? परिग्रह कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? किसके न होने से ममत्व नहीं होता ? किसके न होने पर स्पर्श नहीं होते ? ॥ १० ॥

भगवान्—

नाम और रूप से स्पर्श होते हैं। इच्छा के कारण परिग्रह होते हैं। इच्छा के न होने पर ममत्व नहीं होता और रूप के न होने पर स्पर्श नहीं होते ॥ ११ ॥

देवता—

कैसा करने वाले को रूप नहीं होता ? अथवा सुख और दुःख कैसे नहीं होते ? ये जैसे नहीं होते हैं उन्हें मुझे बतायें, मेरी इच्छा है कि हम उसे जानें ॥ १२ ॥

न सञ्ञसञ्ञी न विसञ्ञसञ्ञी, नो'पि असञ्ञी न विभूतसञ्ञी।
एवं समेतस्स विभोति रूपं, सञ्ञानिदाना हि पपञ्चसङ्खा ॥१३॥
यं तं अपुच्छिम्ह अकित्तयी नो, अञ्ञं तं पुच्छाम तदिङ्घ ब्रूहि।
एत्तावतग्गं नो[1] वदन्ति हेके, यक्खस्स सुद्धिं इध पण्डितासे।
उदाहु अञ्ञम्पि वदन्ति एत्तो ॥१४॥
एत्तावतग्गम्पि वदन्ति हेके, यक्खस्स सुद्धिं इध पण्डितासे।
तेसं पुनेके समयं वदन्ति, अनुपादिसेसे कुसला वदाना ॥१५॥
एते च ञत्वा उपनिस्सिता'ति, ञत्वा मुनी निस्सये सो विमंसी।
ञत्वा विमुत्तो न विवादमेति, भवाभवाय न समेति धीरो'ति ॥१६॥

कलहविवादसुत्तं निट्ठितं।

१२—चूळवियूह[2]-सुत्तं (४, १२)

सकं सकं दिट्ठिपरिब्बसाना, विग्गय्ह नाना कुसला वदन्ति।
'यो एवं जानाति स वेदि धम्मं, इदं पटिक्कोसमकेवली सो' ॥१॥
एवम्पि विग्गय्ह विवादियन्ति[3], बालो परो अकुसलो'ति[4] चाहु।
सच्चो नु वादो कतमो इमेसं, सब्बे'व हिमे कुसला वदाना ॥२॥
परस्स वे धम्ममनानुजानं, बालो मगो[5] होति निहीनपञ्ञो।
सब्बे'व बाला सुनिहीनपञ्ञा, सब्बेविमे दिट्ठिपरिब्बसाना ॥३॥

---

१. न—म०।
२. चूलव्यूहसुत्तं—म०।
३. विवादयन्ति—म०।
४. अक्कुसलोति—म०।
५. चेव—म०; वे—सी०।

भगवान्—

संज्ञा के कारण ही सारे प्रपंच उत्पन्न होते हैं, इसलिए जो संज्ञा में नहीं है, जो संज्ञा-रहित भी नहीं है और जो असंज्ञी भी नहीं है तथा न तो जिसने संज्ञा का अतिक्रमण कर लिया है—ऐसा होने पर ही रूप नहीं होता ॥ १३ ॥

देवता—

हमने जो कुछ पूछा, उसे आपने हमें बतलाया, अब हम दूसरा पूछते हैं, उसे बतायें। कोई-कोई पण्डित इसी (=अरूप समाधि) को व्यक्ति की शुद्धि के लिए श्रेष्ठ बतलाते हैं अथवा इससे दूसरा भी बतलाते हैं ॥ १४ ॥

भगवान्—

कोई-कोई पण्डित व्यक्ति की शुद्धि इतने से ही बतलाते हैं। कुछ उनके उच्छेद की बात कहते हैं, किन्तु कुशल लोग निर्वाण को ही शुद्धि बतलाते हैं ॥१५॥

"ये दृष्टियों को ग्रहण कर उसी में फँसे हैं"—ऐसा मुनि (=बुद्ध) विवेकपूर्वक जानकर विमुक्त हो गए हैं, वह विवाद में नहीं पड़ते और न धीर उत्पत्ति और विनाश के फेर में पड़ते हैं ॥ १६ ॥

कलहविवादसुत्त समाप्त।

—:o:—

१२—चूळवियूह-सुत्त (४, १२)

[सत्य एक ही है, विवाद में पड़ना व्यर्थ]

देवता—

लोग अपनी-अपनी दृष्टि को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर "हम कुशल हैं" कहकर विवाद करते हैं और कहते हैं कि जो ऐसा जानता है, वही धर्म का जानकार है और जो इसका विरोध करता है, वह ज्ञानी नहीं है ॥ १ ॥

ऐसे भी विग्रह में पड़कर वे विवाद करते हैं और कहते हैं कि दूसरे मूर्ख और अकुशल हैं। इनमें सच्चा मत कौन-सा है? सभी अपने को कुशल बताते हैं ?२॥

भगवान्—

जो दूसरे के धर्म को स्थान नहीं देता वह मूर्ख, पशु और प्रज्ञाविहीन होता है। सभी मूर्ख और प्रज्ञाविहीन हैं। ये सभी दृष्टियों के फेर में पड़े हुए हैं ॥ ३ ॥

सन्दिट्ठिया चे[1] पन वीवदाता, संसुद्धपञ्ञा कुसला मुतीमा।
न तेसं कोचि परिहीनपञ्ञो[2], दिट्ठी हि तेसम्पि तथा समत्ता ॥४॥
न चाहमेतं तथियन्ति[3] ब्रूमि, यमाहु बाला मिथु अञ्ञमञ्ञं।
सकं सकं दिट्ठिमकंसु सच्चं, तस्मा हि बालो'ति परं दहन्ति ॥५॥
यमाहु सच्चं तथियन्ति एके, तमाहु अञ्ञे[4] तुच्छं मुसा'ति।
एवम्पि विग्गय्ह विवादियन्ति, कस्मा न एकं समणा वदन्ति ॥६॥

एकं हि सच्चं न दुतियमत्थि, यस्मिं पजानो विवदे पजानं।
नाना[5] ते[6] सच्चानि सयं थुनन्ति, तस्मा न एकं समणा वदन्ति ॥७॥

कस्मा नु सच्चानि वदन्ति नाना, पवादियासे कुसला वदाना।
सच्चानि सुतानि बहूनि नाना, उदाहु ते तक्कमनुस्सरन्ति ॥८॥

न हेव सच्चानि बहूनि नाना, अञ्ञत्र सञ्ञाय निच्चानि लोके।
तक्कञ्च दिट्ठीसु पकप्पयित्वा, सच्चं मुसा'ति द्वयधम्ममाहु ॥९॥
दिट्ठे सुते सीलवते मुते वा, एते च निस्साय विमानदस्सी।
विनिच्छये ठत्वा पहस्समानो, बालो परो अकुसलो'ति चाह ॥१०॥
येनेव बालो'ति परं दहाति, तेनातुमानं कुसलोति चा'ह।
सयमत्तना सो कुसलो वदानो, अञ्ञं विमानेति तथेव[7] पावा ॥११॥
अतिसारदिट्ठिया सो समत्तो, मानेन मत्तो परिपुण्णमानी।
सयमेव सामं मनसाभिसित्तो, दिट्ठी हि सा तस्स तथा समत्ता ॥१२

१. मको—म०।
२. निहीनपञ्ञो—स्या०, क०।
३. तथिवन्ति— स्या०, क०।
४. अञ्ञेपि—स्या०।
५-६. नानातो—क०।
७. तदेव—म०।

यदि लोग अपनी दृष्टि से पवित्र होते हैं तो वे शुद्ध, प्रज्ञ, कुशल और मतिमान् हैं। उनमें कोई प्रज्ञाविहीन नहीं है, क्योंकि उनकी दृष्टि परिपूर्ण है ॥ ४ ॥

मैं यह नहीं कहता कि 'यही सत्य है', जिस बात को लेकर लोग एक दूसरे को मूर्ख बताते हैं, वे अपनी-अपनी दृष्टि को सत्य सिद्ध करते हैं और एक दूसरे को मूर्ख बताते हैं ॥ ५ ॥

देवता—

कुछ लोग जिसे सत्य कहते हैं, दूसरे लोग उसे प्रलाप और असत्य बताते हैं। इस प्रकार भी वे विग्रह में पड़कर विवाद करते हैं। श्रमण एक ही बात क्यों नहीं बताते ? ॥ ६ ॥

भगवान्—

सत्य एक ही है दूसरा नहीं, जिसके सम्बन्ध में व्यक्ति व्यक्ति से विवाद करे। वे स्वयं नाना सत्यों की प्रशंसा करते हैं, इसलिए श्रमण एक ही बात नहीं बताते ॥ ७ ॥

देवता—

क्यों लोग नाना सत्यों को बताते हैं ? वे अपने को कुशल कहकर विवाद करते हैं। क्या सुने हुए सत्य नाना प्रकार के और बहुत से हैं ? या वे तर्क का अनुसरण करते हैं ? ॥ ८ ॥

भगवान्—

संज्ञा के अतिरिक्त संसार में बहुत से और विभिन्न प्रकार के सत्य तथा नित्य नहीं हैं। दृष्टियों में तर्क को लगाकर सत्य और असत्य—इन दो धर्मों को बतलाते हैं ॥ ९ ॥

दृष्टि, श्रुति, शील-व्रत, विचार—इनके कारण दूसरे का अनादर करते हुए प्रसन्नतापूर्वक किसी निश्चय पर स्थित हो लोग दूसरे को मूर्ख और अकुशल कहते हैं ॥ १० ॥

व्यक्ति जिसके कारण दूसरे को मूर्ख बताता है, उसी से अपने को कुशल बताता है। अपने को कुशल बताने वाला उसी से दूसरे का अनादर करता है ॥ ११ ॥

वह व्यक्ति अपनी उस दृष्टि को पूर्ण मानता है और वह मान से परिपूर्ण अभिमानी हो जाता है। वह स्वयं अपने को पण्डित समझता है, क्योंकि उसकी दृष्टि ही वैसी है ॥ १२ ॥

परस्स चे हि वचसा निहीनो, तुमो सहा होति निहीनपञ्ञो ।
अथ चे सयं वेदगू होति धीरो, न कोचि बालो समणेसु अत्थि ॥१३॥
अञ्ञं इतो याभिवदन्ति धम्मं, अपरद्धा सुद्धिमवकेलीनो[1] ।
एवं हि तित्थ्या पुथुसो वदन्ति, सन्दिट्ठिरागेन हि ते'भिरत्ता[2] ॥१४॥
इधेव सुद्धिमिति वादियन्ति, नाञ्ञेसु धम्मेसु विसुद्धिमाहु ।
एवम्पि तित्थ्या पुथुसो निविट्ठा, सकायने तत्थ दळ्हं वदाना ॥१५॥
सकायने चापि दळ्हं वदानो, कमेत्थ बालो'ति परं दहेय्य ।
सयमेव सो मेधकं[3] आवहेय्य,[4] परं वदं बालमसुद्धधम्मं ॥१६॥
विनिच्छये ठत्वा सयं पमाय, उद्धं सो[5] लोकस्मिं विवादमेति ।
हित्वान सब्बानि विनिच्छयानि, न मेधकं कुरुते जन्तु लोके'ति ॥१७॥

चूलवियूहसुत्तं निट्ठितं ।

—: ० :—

१३—महावियूह-सुत्तं (४, १३)

ये केचि'मे दिट्ठिपरिब्बसाना, इदमेव सच्चन्ति विवादियन्ति[6] ।
सब्बे'व ते निन्दमन्वानयन्ति, अथो पसंस'पि लभन्ति तत्थ ॥१॥
अप्पं हि एतं न अलं समाय, दुवे विवादस्स फलानि ब्रूमि ।
एवम्पि दिस्वा न विवादियेथ, खेमाभिपस्सं अविवादभूमिं ॥२॥
या काचि'मा सम्मुतियो पुथुज्जा, सब्बा'व एता न उपेति विद्वा ।
अनूपयो सो उपयं किमेय्य, दिट्ठे सुते खन्तिमकुब्बमानो ॥३॥
सीलुत्तमा संयमेनाहु सुद्धिं, व्रतं समादाय उपट्ठितासे ।
इधेव सिक्खेम अथ'स्स सुद्धिं, भवूपनीता कुसलावदाना ॥४॥

१. सुद्धीमकेवली ते—म० । २. त्यभिरत्ता—स्या०; क० । ३–४. मेधगमावहेय्य—म० ।
५. स—म० । ६. विवादयन्ति—म० ।

यदि दूसरे के कहने से कोई हीन होता, तो वह स्वयं भी प्रज्ञाविहीन हो सकता है। यदि अपने कहने से कोई ज्ञानी और धीर होता, तो श्रमणों में कोई भी मूर्ख नहीं है ॥ १३ ॥

"जो इसके विपरीत दूसरी दृष्टि बताते हैं और जो शुद्धि के मार्ग से विचलित हैं, वे अकेवली (=अज्ञानी) हैं।"—ऐसा प्रायः तार्किक (=दूसरे मतावलम्बी) कहते हैं, क्योंकि वे अपने दृष्टि-राग में रत हैं ॥ १४ ॥

"शुद्धि यहीं है, दूसरे धर्मों में शुद्धि नहीं है"—ऐसा प्रायः तैर्थिक अपनी दृष्टि में स्थित और दृढ़ हो बताते हैं ॥ १५ ॥

जो अपनी दृष्टि को दृढ़तापूर्वक ग्रहण कर दूसरे को मूर्ख बताता है, दूसरे धर्म को मूर्ख और अशुद्ध बताने वाला वह स्वयं कलह का आह्वान करता है ॥ १६ ॥

वह अपनी दृष्टि में स्थित हो स्वयं (दूसरे शास्ताओं से अपनी) तुलना कर आगे संसार में विवाद करता है। किन्तु ज्ञानी पुरुष सारी दृष्टियों (=धारणाओं) को त्यागकर संसार में कलह नहीं करता है ॥ १७ ॥

चूलवियूहसुत्त समाप्त ।

१३—महावियूहसुत्त (४, १३)

[दृष्टिवाद से शुद्धि नहीं]

देवता—

जो कोई दृष्टियों को ग्रहण करके 'यही सत्य है' विवाद करते हैं, वे सभी निन्दित होते हैं अथवा उनमें प्रशंसा को भी प्राप्त होते हैं ? ॥ १ ॥

भगवान्—

यह अल्प है, शान्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। मैं विवाद के दो फल बताता हूँ। निर्वाण को निर्विवाद भूमि और कल्याणकर जान-देखकर विवाद में न पड़े ॥ २ ॥

जो कुछ पृथक् जनों की मान्यताएँ हैं, उन सबमें बुद्धिमान् नहीं पड़ता। दृष्टि और श्रुति का ग्रहण न करने वाला, आसक्तिरहित वह क्या ग्रहण करे ? ॥ ३ ॥

शील को उत्तम मानने वाले संयम से शुद्धि बताते हैं। वे व्रत ग्रहण कर बताते हैं कि उसकी शुद्धि यहीं सीखें। भव में पड़े लोग अपने को कुशल बताते हैं ॥ ४ ॥

स चे चुतो सीलवततो होति, स[1] वेधति[2] कम्मं विराधयित्वा ।
स जप्पति पत्थयतीध सुद्धिं, सत्था'व हीनो पवसं घरम्हा ॥५॥

सीलब्बतं वा'पि पहाय सब्बं, कम्मं च सावज्ज'नवज्जमेतं[3] ।
सुद्धिं असुद्धिं'ति अपत्थयानो, विरतो चरे सन्तिमनुग्गहाय ॥६॥

तपूपनिस्साय जिगुच्छितं वा, अथ वा'पि दिट्ठं'व सुतं मुतं वा ।
उद्धंसरा सुद्धमनुत्थुनन्ति, अवीततण्हासे भवाभवेसु ॥७॥

पत्थयमानस्स हि जप्पितानि, संवेदितं[4] चापि पकप्पितेसु ।
चुतूपपातो इध यस्स नत्थि स, केन वेधेय्य कुहिं[5] चि जप्पे[6] ॥८॥

यमाहु धम्मं परमं'ति एके, तमेव हीनं'ति पनाहु अञ्ञो ।
सच्चो नु वादो कतमो इमेसं, सब्बे'व हीमे कुसला वदाना ॥९॥

सकं हि धम्मं परिपुण्णमाहु, अञ्ञस्स धम्मं पन हीनमाहु ।
एवम्पि विग्गय्ह विवादियन्ति, सकं सकं सम्मुतिमाहु सच्चं ॥१०॥

परस्स चे वंभयितेन हीनो, न कोचि धम्मेसु विसेसि अस्स ।
पुथू हि अञ्ञस्स वदन्ति धम्मं, निहीनतो सम्हि दळ्हं वदाना ॥११॥

सद्धम्मपूजा[7] पि नेसं तथेव[8], यथा पसंसन्ति सकायनानि ।
सब्बे[9] पवादा[10] तथिवा[11] भवेय्युं, सुद्धी हि तेसं पच्चत्तमेव ॥१२॥
न ब्राह्मणस्स परनेय्यमत्थि, धम्मेसु निच्छेय्य समुग्गहीतं ।
तस्मा विवादानि उपातिवत्तो, न हि सेट्ठतो पस्सति धम्ममञ्ञं ॥१३॥

१-२. पवेधती—म० । ३. सावज्जनवज्जमेतं—म० । ४. पवेधितं— म० ।
५-६. कुहिं च जप्पे—म०; कुहिं पजप्पे—रो० । ७-८. सद्धम्मपूजा च पना तथेव—सी० । ९-१०. सब्बे च वादा ।—म० । ११. तथिया—म० ।

यदि वह शील-व्रत से च्युत होता है, तो वह अपना कर्म बिगड़ा समझकर कम्पित होता है। सार्थ से बिछुड़े हुए या घर से प्रवास में गये हुए की भाँति शोक करता है और यहां शुद्धि चाहता है ॥ ५ ॥

सभी शील-व्रत तथा सदोष-निर्दोष कर्म को त्यागकर, शुद्धि और अशुद्धि की कामना न करते हुए शान्ति के लिए विरक्त होकर विचरण करे ॥ ६ ॥

कुछ लोग तप अथवा घृणित काम द्वारा अथवा दृष्टि, श्रुति या विचार द्वारा पुनर्जन्म की तृष्णा को बिना छोड़े ही उच्च स्वर से शुद्धि को बताते हैं ॥ ७ ॥

जो कामना करते हैं उनमें ही तृष्णा होती है, जो उपाय करता है वही कम्पित रहता है। जिसे मृत्यु और जन्म नहीं हैं, वह किसलिए और कहां कम्पित होगा और तृष्णा करेगा ? ॥ ८ ॥

देवता—

जिसे कुछ लोग उत्तम धर्म बताते हैं, उसे ही दूसरे लोग हीन कहते हैं। इनमें से कौन-सा कथन सत्य है ? ये सभी अपने को कुशल बताते हैं ॥ ९ ॥

भगवान्—

अपने धर्म को परिपूर्ण बताते हैं और दूसरे के धर्म को हीन बताते हैं। इस प्रकार भिन्न मत वाले ही विवाद करते हैं और अपनी धारणा को सत्य बताते हैं ॥ १० ॥

यदि दूसरे की निन्दा करने से हीन हो जाय तो धर्म में कोई श्रेष्ठ नहीं होता। सभी दूसरे के धर्म को हीन बताते और अपने को ठोस बताते हैं ॥ ११ ॥

लोग जिस प्रकार अपने धर्म-मार्गों की प्रशंसा करते हैं, उसी प्रकार उनकी पूजा भी करते हैं। यदि सभी के कथन वैसे हों, तो उनकी शुद्धि अपने-अपने में ही (अलग-अलग) होगी ॥ १२ ॥

ब्राह्मण दूसरे के सहारे नहीं रहता, वह धार्मिक दृष्टियों में दृढ़ग्राही नहीं होता, इसलिए वह विवाद से परे है, वह दूसरे धर्म को श्रेष्ठ[1] नहीं मानता ॥ १३ ॥

---

१. स्मृति-प्रस्थान आदि के अतिरिक्त अन्य किसी दूसरे धर्म को श्रेष्ठ नहीं मानता। —अट्ठकथा।

जानामि पस्सामि तथेव एतं, दिट्ठिया एके पच्चेन्ति सुद्धिं ।
अद्दक्खि चे किं[1] हि[2] तुमस्स तेन, अतिसित्वा अञ्ञेन वदन्ति सुद्धिं ।१४।

पस्सं नरो दक्खिति[3] नामरूपं, दिस्वान वा ञस्सति तानिमेव ।
कामं बहुं पस्सतु अप्पकं वा, न हि तेन सुद्धिं कुसला वदन्ति ॥ १५ ॥

निविस्सवादी न हि सुद्धिनायो, पकप्पितं दिट्ठि पुरेक्खरानो ।
यं निस्सितो तत्थ सुभं वदानो, सुद्धिं वदो तत्थ तथद्दसा सो ॥ १६ ॥

न ब्राह्मणो कप्पमुपेति संखं[4], न हि दिट्ठिसारी न पि ञाणबन्धु ।
ञत्वा च सो सम्मुतियो[5] पुथुज्जा, उपेक्खति उग्गहणन्तमञ्ञे ॥ १७ ॥

विसज्ज[6] गन्थानि मुनीध लोके, विवादजातेसु न वग्गसारी ।
सन्तो असन्तेसु उपेक्खको सो, अनुग्गहो उग्गहणन्तिमञ्ञे ॥ १८ ॥

पुब्बासवे हित्वा नवे अकुब्बं, न छन्दगू नो पि निविस्सवादी[7] ।
स विप्पमुत्तो दिट्ठिगतेहि धीरो, न लिप्पति[8] लोके अनत्तगरही ॥ १९ ॥

स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किञ्चि दिट्ठं व सुतं मुतं वा ।
स पन्नभारो मुनि विप्पमुत्तो,
न कप्पियो नूपरतो नपरतो न पत्थियो'ति (भगवा) ॥ २० ॥

महावियूहसुत्तं निट्ठितं ।

१४—तुवटक-सुत्तं (४, १४)

पुच्छामि तं आदिच्चबन्धुं[9], विवेकं सन्तिपदं च महेसिं ।
कथं दिस्वा निब्बाति भिक्खु, अनुपादियानो लोकस्मिं किञ्चि ॥ १ ॥

मूलं पपञ्चसंखाय (इति भगवा), मन्ता अस्मीति सब्बमुपरुन्धे[10] ।
या काचि तण्हा अज्झत्तं, तासं विनया सदा सदा सतो सिक्खे ॥ २ ॥

१–२. किम्हि—सी०; किञ्हि—म० । ३. दक्खति—म० । ४. संखा—म० । ५. सम्मतियो—स्या० । ६. विस्सज्ज—म० । ७. निविस्सवादो—सी०; रो० । ८. लिम्पति—म० । ९. आदिच्चवन्धु—म० । १०. सब्बमुपरुद्धे—स्या०, रो०, क० ।

'मैं इसे वैसा ही जानता और देखता हूँ'—इस प्रकार कुछ लोग दृष्टि से शुद्धि बताते हैं। यदि उन्होंने देखा तो क्या देखा ? वे यथार्थ मार्ग छोड़कर दूसरे क्रम से शुद्धि बताते हैं ॥ १४ ॥

देखने वाला मनुष्य नाम-रूप को देखता है। देखकर उन्हीं को मान लेता है। वह भले ही बहुत या कम देखे। कुशल जन इसी से शुद्धि नहीं बताते ॥१५॥

जो किसी बात में आसक्त है वह शुद्धि को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह किसी दृष्टि को मानता है। मनुष्य जिसमें आसक्त है उसी को शुभ बताता है और जिसे शुद्धि बताता है उसे सत्य मानता है ॥ १६ ॥

ब्राह्मण विवेकी हो तृष्णा-दृष्टि में नहीं पड़ता। वह दृष्टि का अनुसरण नहीं करता और न ज्ञान-बन्धु है। वह पृथक् जनों की धारणाओं को, जिन्हें और लोग ग्रहण करते हैं, जानकर उनकी उपेक्षा करता है ॥ १७ ॥

मुनि इस संसार में बन्धनों को छोड़कर विवाद करने वालों में पक्षधर नहीं होता। वह अशान्तों में शान्त जिसे अन्य लोग ग्रहण करते हैं, उसकी उपेक्षा करता है ॥ १८ ॥

जो पूर्व के आश्रवों को छोड़ नये आश्रवों को उत्पन्न नहीं होने देता, इच्छा रहित, वाद में अनासक्त, दृष्टियों से पूर्ण रूप से मुक्त वह धीर संसार में लिप्त नहीं होता और वह न अपनी निन्दा करता है ॥ १९ ॥

जो कुछ दृष्टि, श्रुति या विचार हैं, उन सब पर वह विजयी है। वह पूर्ण रूप से युक्त, भार-त्यक्त संस्कार, उपरति और तृष्णा से रहित है ॥ २० ॥

महावियूहसुत्त समाप्त।

१४—तुवटकसुत्त (४, १४)

[भिक्षुचर्य्या]

देवता—

आदित्यबन्धु ! महर्षि ! मैं आपसे विवेक तथा शान्तिपद के विषय में पूछता हूँ। भिक्षु लोक में किसी में भी आसक्ति न करता हुआ कैसे देखकर शान्त होता है ? ॥ १ ॥

भगवान्—

सारे प्रपंचों की जड़ अहंकार को समझकर सब तरह से उसका अन्त कर दे। जो कुछ भी तृष्णायें भीतर हैं, उनसे रहित होने के लिए सदा स्मृतिमान् हो अभ्यास करे ॥ २ ॥

यं किञ्चि धम्ममभिजञ्ञा, अज्झत्तं अथ वा'पि बहिद्धा।
न तेन मानं[1] कुब्बेथ, न हि सा निब्बुति सतं वुत्ता॥ ३ ॥

सेय्यो न तेन मञ्ञेय्य, नीचेय्यो अथ वा'पि सरिक्खो।
फुट्ठो[2] अनेकरूपेहि, नातुमानं[3] विकप्पयं तिट्ठे॥ ४ ॥

अज्झत्तमेव उपसमे, नाञ्ञतो भिक्खु सन्तिमेसेय्य।
अज्झत्तं उपसन्तस्स, नत्थि अत्तं कुतो निरत्तं वा ॥ ५ ॥

मज्झे यथा समुद्दस्स, ऊमि नो जायति ठितो होति।
एवं ठितो अनेजस्स, उस्सदं भिक्खु न करेय्य कुहिं चि॥ ६ ॥

अकित्तयि विवटचक्खु, सक्खिधम्मं परिस्सयविनयं।
पटिपदं वदेहि भद्दं ते, पातिमोक्खं अथ वा'पि समाधिं॥ ७ ॥

चक्खूहि नेव लोलस्स, गामकथाय आवरये सोतं।
रसे च नानुगिज्झेय्य, न च ममायेथ किञ्चि लोकस्मिं॥ ८ ॥

फस्सेन यदा फुट्ठस्स, परिदेवं भिक्खु न करेय्य कुहिं चि।
भवं च नाभिजप्पेय्य, भेरवेसु च न संपवेधेय्य॥ ९ ॥

अन्नानमथो पानानं, खादनीयानमथो पि वत्थानं।
लद्धा न सन्निधिं कयिरा, न च परित्तसे तानि अलभमानो॥१०॥

झायी न पादलोलस्स, विरमे कुक्कुच्चा नप्पमज्जेय्य।
अथ आसनेसु सयनेसु, अप्पसद्देसु भिक्खु विहरेय्य॥११॥

निद्दं न बहुलीकरेय्य, जागरियं भजेय्य आतापी।
तन्दिं मायं हस्सं खिड्डं, मेथुनं विप्पजहे सविभूसं॥१२॥

आथब्बणं सुपिनं लक्खणं, नो विदहे अथो पि नक्खत्तं।
विरुतं च गब्भकरणं, तिकिच्छं मामको न सेवेय्य॥१३॥

निन्दाय नप्पवेधेय्य, न उण्णमेय्य पसंसितो भिक्खु।
लोभं सह मच्छरियेन, कोधं पेसुनियं च पनुदेय्य॥१४॥

---

१. थामं—म०। २. पुट्ठो—सी०; स्या०, क०। ३. नातिमानं—सी०।

भीतर या बाहर के जिस किसी धर्म को जाने, उससे अभिमान न करे, सन्त लोग उसे शान्ति नहीं कहते ॥ ३ ॥

उसके कारण न दूसरे से अपने को श्रेष्ठ समझे, न नीच और न समान। अनेक प्रकार का स्पर्श पाकर भी अपने को विकल्प में न डाले ॥ ४ ॥

अपने भीतर शान्त रहे। भिक्षु दूसरे उपाय से शान्ति की खोज न करे। जो भीतर से शान्त है उसमें अपनत्व नहीं है, फिर परत्व कहाँ ? ॥ ५ ॥

जैसे समुद्र के बीच में लहर नहीं उठती, प्रत्युत स्थिरता बनी रहती है, वैसे ही स्थिर, चंचलता रहित भिक्षु कहीं तृष्णा न करे ॥ ६ ॥

देवता—

खुले नेत्र वाले ! आपने बाधाओं का दूर करने के लिए साक्षात् धर्म बताया है। अपनी भद्र प्रतिपदा को बताऐं जो कि प्रातिमोक्ष या समाधि है ॥ ७ ॥

भगवान्—

चक्षु के विषय में लोलुप न हो। ग्राम्य कथाओं से कान को बन्द कर ले। स्वाद की लोलुपता न करे और न संसार में कुछ अपनाये ॥ ८ ॥

दुःखद स्पर्श होने पर भी भिक्षु कहीं भी विलाप न करे। भव की तृष्णा न करे और भयानकता से कम्पित न हो ॥ ९ ॥

अन्न अथवा पेय, खाद्य अथवा वस्त्र के मिलने पर उनका संग्रह न करे। उनके न मिलने पर चिन्ता न करे ॥ १० ॥

ध्यानी बने, घुमक्कड़ न बने, कौकृत्य (=सन्देह) न करे, प्रमाद न करे। भिक्षु शोर न होने वाले आसनों और शय्याओं में विहार करे ॥ ११ ॥

बहुत निद्रालु न हो, उद्योगी बन जागरणशील बने। तन्द्रा, माया, हँसी-मजाक, क्रीड़ा, मैथुन और शृंगार को त्याग दे ॥ १२ ॥

तन्त्र-मन्त्र, स्वप्न-विचार, लक्षण-देखना और नक्षत्रों के विश्वास को त्याग दे। पशु-पक्षियों की बोली को सुनकर बतलाना, गर्भ धारणा कराना, चिकित्सा करना (=वैद्यक)—श्रद्धालु भिक्षु इन सबका अभ्यास न करे ॥ १३ ॥

भिक्षु निन्दा से विचलित न हो, प्रशंसा से न फूले और लोभ, कंजूसी, क्रोध तथा चुगली को त्याग दे ॥ १४ ॥

कयविक्कये न तिट्ठेय्य, उपवादं भिक्खु न करेय्य कुहिं चि ।
गामे च नाभिसज्जेय्य, लाभकम्या जनं न लापयेय्य ॥१५॥
न च कत्थिता सिया भिक्खु, न च वाचं पयुतं भासेय्य ।
पागब्भियं न सिक्खेय्य, कथं विग्गाहिकं न कथयेय्य ॥१६॥
मोसवज्जे न निय्येथ[1], संपजानो सठानि न कयिरा ।
अथ जीवितेन पञ्ञाय, सीलब्बतेन नाञ्ञमतिमञ्ञे ॥१७॥
सुत्वा रुसितो बहुं वाचं, समणानं पुथुवचनानं[2] ।
फरुसेन ते न पतिवज्जा, न हि सन्तो पटिसेनिकरोन्ति ॥१८॥
एतं च धम्ममञ्ञाय, विचिनं भिक्खु सदा सतो सिक्खे ।
सन्तीति निब्बुतिं ञत्वा, सासने गोतमस्स नप्पमज्जेय्य[3] ॥१९॥
अभिभू हि सो अनभिभूतो, सक्खिधम्मं अनीतिहमदस्सी ।
तस्मा हि तस्स भगवतो सासने,
अप्पमत्तो सदा नमस्समनुसिक्खे'ति (भगवा) ॥२०॥

तुवटकसुत्तं निट्ठितं ।

१५—अत्तदण्ड-सुत्तं (४, १५)

अत्तदण्डा भयं जातं, जनं पस्सथ मेधकं[4] ।
संवेगं कित्तयिस्सामि, यथा संविजितं मया ॥१॥
फन्दमानं पजं दिस्वा, मच्छे अप्पोदके यथा ।
अञ्ञमञ्ञेहि ब्यारुद्धे, दिस्वा मं भयमाविसि ॥२॥
समन्तमसरो लोको, दिसा सब्बा समेरिता ।
इच्छं भवनमत्तनो, नाद्दसासिं अनोसितं ॥३॥
ओसाने त्वेव ब्यारुद्धे, दिस्वा मे अरती अहु ।
अथेत्थ सल्लमद्दक्खिं, दुद्दसं हदयनिस्सितं ॥४॥
येन सल्लेन ओतिण्णो, दिसा सब्बा विधावति ।
तमेव सल्लं अब्बुय्ह, न धावति न सीदति ॥५॥

---

१. नीयेथ—म० । २. पुथुजनानं—म० । ३. न पमज्जेय्य—म० । ४. मेधगं—म० ।

भिक्षु क्रय-विक्रय में न लगे। कहीं किसी को दोष न दे। गांव में किसी को गाली न दे और लाभ की इच्छा से लोगों से न बोले ॥ १५ ॥

भिक्षु अपनी प्रशंसा करने वाला न बने, स्वार्थ की बात न करे, उद्दण्ड (=प्रगल्भ) न हो और झगड़े-लड़ाई की बात न करे ॥ १६ ॥

असत्य भाषण न करे, जान-बूझ कर शठता न करे, फिर जीविका, प्रज्ञा, शील-व्रत के विषय में दूसरे का अनादर न करे ॥ १७ ॥

बहुभाषी श्रमणों की दोषयुक्त बहुत-सी बातों को सुनकर उनको कठोर जवाब न दे, सन्त लोग प्रतिहिंसक नहीं होते ॥ १८ ॥

इस धर्म को जानकर विवेकी भिक्षु सदा स्मृतिमान् रहने का अभ्यास करे, निर्वाण को शान्ति जानकर गौतम की शिक्षा में प्रमाद न करे ॥ १९ ॥

उन विजयी ने अजेय हो धर्म को साक्षात् जान लिया है, इसलिए अप्रमत्त हो उन भगवान् की शिक्षा का सम्मान पूर्वक अभ्यास करे ॥ २० ॥

तुवटकसुत्त समाप्त।

१५—अत्तदण्डसुत्त (४, १५)

[भगवान् बुद्ध के गृहत्याग का कारण]

अपने दुष्कर्म से ही भय उत्पन्न होता है, कलह करते हुए लोगों को देखो। मैं संवेग की बात कहूँगा, जैसा कि मुझे संवेग (=विरक्ति) प्राप्त हुआ था ॥ १ ॥

जैसे थोड़े जल में मछलियाँ तड़फड़ाती हैं, वैसे ही लोगों को तड़फड़ाते, एक-दूसरे के विरुद्ध लोगों को देख मुझे भय हो आया ॥ २ ॥

सारा संसार असार है, सभी दिशायें विचलित हैं। अपने लिए कल्याणकर स्थान को चाहते हुए मैंने कहीं भी आपत्तियों से खाली नहीं पाया ॥ ३ ॥

अन्त में सर्वत्र विरोधभाव को देख मुझे वैराग्य हुआ। तब मैंने यहाँ देखने में दुर्दश्य हृदय में चुभे काँटे को देखा ॥ ४ ॥

जिस काँटे के चुभने से व्यक्ति सभी दिशाओं में दौड़ता है, उसी काँटे को निकाल कर न दौड़ता है और न डूबता है ॥ ५ ॥

तत्थ सिक्खानुगीयन्ति, यानि लोके गथितानि न तेसु पसुतो सिया।
निब्बिज्झ सब्बसो कामे, सिक्खे निब्बाणमत्तनो ॥६॥

सच्चो सिया अप्पगब्भो, अमायो रित्तपेसुणो।
अक्कोधनो लोभपापं, वेविच्छं विचरे मुनि ॥७॥

निद्दं तन्दिं सहे थीनं, पमादेन न संवसे।
अतिमाने न तिट्ठेय्य, निब्बाणमनसो नरो ॥८॥

मोसवज्जे न निय्येथ, रूपे स्नेहं न कुब्बये।
मानं च परिजानेय्य, सहसा विरतो चरे ॥९॥

पुराणं नाभिनन्देय्य, नवे खन्तिं न कुब्बये।
हीयमाने न सोचेय्य, आकासं न सितो सिया ॥१०॥

गेधं ब्रूमि महोघो'ति, आजवं ब्रूमि जप्पनं।
आरम्मणं पकम्पनं, कामपंको दुरच्चयो ॥११॥

सच्चा अवोक्कम्म मुनि, थले तिट्ठति ब्राह्मणो।
सब्ब[1] सो[2] पटिनिस्सज्ज, स वे सन्तो'ति वुच्चति ॥१२॥

स वे विद्वा स वेदगू, ञत्वा धम्मं अनिस्सितो।
सम्मा सो लोके इरियानो, न पिहेतीध कस्सचि ॥१३॥

यो'ध कामे अच्चतरि, संगं लोके दुरच्चयं।
न सो सोचति नाज्झेति, छिन्नसोतो अबन्धनो ॥१४॥

यं पुब्बे तं विसोसेहि, पच्छा ते मा'हु[3] किञ्चनं।
मज्झे वे[4] नो गहेस्ससि, उपसन्तो चरिस्ससि ॥१५॥

सब्बसो नामरूपस्मिं, यस्स नत्थि ममायितं।
असता च न सोचति, स वे लोके न जीयति ॥१६॥

यस्स नत्थि इदं मे'ति, परेसं वा'पि किञ्चनं।
ममत्तं सो[5] असंविन्दं, नत्थि मे'ति न सोचति ॥१७॥

१-२. सब्बसो—स्या०, क०। ३. आहु—सी०। ४. चे—म०, सी०। ५. यो—सी०।

यहाँ संसार में आसक्तिजनक बहुत-सी शिक्षायें दी जाती हैं, उनमें न लगे। सर्वथा कामनाओं की ओर से उदास हो अपनी मुक्ति के लिए अभ्यास करे ॥६॥

मुनि सत्यवादी हो, उद्दण्ड न हो, मायावी न हो, चुगलखोर न हो, क्रोध, लोभ, पाप तथा कंजूसी रहित हो विचरण करे ॥ ७ ॥

निर्वाण चाहने वाला व्यक्ति निद्रा, तन्द्रा तथा आलस्य को जीते, प्रमाद में न रहे, अभिमान में न पड़े ॥ ८ ॥

असत्य भाषण न करे, रूप में स्नेह न करे, मान को त्याग दे, हिंसा से विरत हो विचरण करे ॥ ९ ॥

पुराने का अभिनन्दन न करे, नये की चाह न करे, खोये की चिन्ता न करे और तृष्णा (=आकाश) में लिप्त न हो ॥ १० ॥

मैं लोभ को बड़ी बाढ़ कहता हूँ, आसक्ति को बकवाद कहता हूँ, आलम्बन कम्पन हैं और काम-भोग रूपी पंक दुस्तर है ॥ ११ ॥

श्रेष्ठ मुनि सत्य से न हटकर निर्वाण रूपी स्थल पर स्थित है। सर्वत्यागी वह अवश्य शान्त कहलाता है ॥ १२ ॥

वही विद्वान् है, वही ज्ञानी है, जो धर्म को जानकर अनासक्त हो किसी की स्पृहा न करता सम्यक् रूप से लोक में विचरण करता है ॥ १३ ॥

जिसने यहाँ काम-भोगों को त्याग दिया है जो कि संसार में दुस्तर आसक्ति है,ऐसा धारा को काटा हुआ, बन्धन-रहित व्यक्ति न शोक करता है और न चिन्ता करता है ॥ १४ ॥

जो पहले की आसक्ति है उसे त्याग दो, पीछे तुम कुछ भी ग्रहण न करो, बीच में न ग्रहण करके उपशान्त हो विचरण करोगे ॥ १५ ॥

जिसे नाम और रूप में सर्वथा ही ममत्व नहीं है, न होने पर शोक नहीं करता, वही संसार में जन्म ग्रहण नहीं करता ॥ १६ ॥

जिसे किसी वस्तु के विषय में "यह मेरा है" या "यह दूसरे का है"—ऐसा नहीं होता, ममत्व में न पड़ने वाला वह "मेरा नहीं है"—ऐसा शोक नहीं करता ॥ १७ ॥

अनिट्ठरी अननुगिद्धो, अनेजो सब्बधीसमो।
तमानिसंसं पब्रूमि, पुच्छितो अविकम्पिनं ॥१८॥
अनेजस्स विजानतो, नत्थि काचि निसंखति[1]।
विरतो सो वियारम्भा, खेमं पस्सति सब्बधी ॥१९॥
न समेसु न ओमेसु, न उस्सेसु वदते मुनि।
सन्तो स वीतमच्छरो, नादेति न निरस्सती'ति (भगवा) ॥२०॥

अत्तदण्डसुत्तं निट्ठितं।

१६—सारिपुत्त-सुत्तं (४, १६)

न मे दिट्ठो इतो पुब्बे (इच्चायस्मा
सारिपुत्तो), नस्सुतो उद कस्सचि।
एवं वग्गुवदो सत्था, तुसितो गणिमागतो ॥१॥
सदेवकस्स लोकस्स, यथा दिस्सति चक्खुमा।
सब्बं तमं विनोदेत्वा, एको रतिमज्झगा ॥२॥
तं बुद्धं असितं तादिं, अकुहं गणिमागतं।
बहुन्नमिध[2] बद्धानं, अत्थि पञ्हेन आगमं ॥३॥
भिक्खुनो विजिगुच्छतो, भजतो रित्तमासनं।
रुक्खमूलं सुसानं वा, पब्बतानं गुहासु वा ॥४॥
उच्चावचेसु सयनेसु, कीवन्तो तत्थ भेरवा।
येहि भिक्खु न वेधेय्य, निग्घोसे सयनासने ॥५॥
कति परिस्सया लोके, गच्छतो अमतं दिसं।
ये भिक्खु अभिसंभवे, पन्तम्हि सयनासने ॥६॥
क्यास्स ब्यप्पथयो अस्सु, क्यास्सस्सु इध गोचरा।
कानि सीलब्बतानस्सु,[3] पहितत्तस्स भिक्खुनो ॥७॥
कं सो सिक्खं समादाय, एकोदि निपको सतो।
कम्मारो रजतस्सेव, निद्धमे मलमत्तनो ॥८॥

१. विसंखतिं—म०। २ बहूनमिध—म०। ३. सीलब्बतानास्सु—म०।

अनिष्ठुरता, निर्लोभिता, वितृष्णा, सर्वत्र समता—इसे मैं, पूछने पर निर्भयता का सुपरिणाम बताता हूँ ॥ १८ ॥

तृष्णा रहित विज्ञ को कोई संस्कार नहीं होता। प्रयत्न से विरत वह सर्वत्र क्षेम देखता है ॥ १९ ॥

मुनि समानों, नीचों या श्रेष्ठों में अपने को नहीं बताता। शान्त, कंजूसी रहित वह न तो किसी को ग्रहण करता है, न छोड़ता है ॥ २० ॥

अत्तदण्डसुत्त समाप्त।

१६—सारिपुत्तसुत्त (४, १६)

[भिक्षुचर्य्या]

सारिपुत्र—

तुषित लोक से मनुष्य लोक में आए ऐसे मृदुभाषी शास्ता को मैंने आज से पहले नहीं देखा, न तो किसी से सुना ही था ॥ १ ॥

देवताओं सहित लोक के लिए जैसे चक्षुष्मान् दिखाई देते हैं, सारे अन्धकार को दूर कर अकेले ही प्रव्रज्या सुख प्राप्त हो विचरण करते हैं ॥ २ ॥

मनुष्यों के बीच आए, अनासक्त, स्थिर, निष्कपट बुद्ध से बहुत से बद्ध प्राणियों की ओर से प्रश्न करने आया हूँ ॥ ३ ॥

वृक्षमूलों, श्मशानों, पर्वतों तथा गुफाओं में एकान्त-चित्त का अभ्यास करने वाले अनासक्त भिक्षु को विविध स्थानों में कितने भयजनक शब्द होते हैं, जिनसे कि एकान्त स्थान में रहने वाला भिक्षु कम्पित न हो ॥ ४-५ ॥

निर्वाण की ओर जाने वाली दिशा में कितनी बाधायें हैं जिनको कि भिक्षु एकान्त शयनासन में रहकर दूर करे ॥ ६ ॥

संयमी भिक्षु के वचन कैसे हों? उसके गोचर (=विचरण-भूमि) कौन-से हैं? और शील-व्रत कौन-से हैं? ॥ ७ ॥

एकान्तसेवी, ज्ञानी और स्मृतिमान् भिक्षु किस शिक्षा को ग्रहण कर सोनार के चांदी साफ करने के समान अपने मलों को दूर करे? ॥ ८ ॥

विजिगुच्छमानस्स यदिदं फासु (सारिपुत्ता ति भगवा),
सयनं रित्तासनं सेवतो चे।
सम्बोधिकामस्स यथानुधम्मं,
तं ते पवक्खामि यथा पजानं ॥९॥

पञ्चन्नं धीरो भयानं न भाये, भिक्खु सतो सपरियन्तचारी।
डंसाधिपातानं सिरिंसपानं, मनुस्सफस्सानं चतुप्पदानं ॥१०॥

परधम्मिकानं न सन्तसेय्य, दिस्वा'पि तेसं वहुभेरवानी।
अथापरानि अभिसम्भवेय्य, परिस्सयानि कुसलानुएसी ॥११॥

आतंकफस्सेन खुदाय फुट्ठो, सीतं अच्चुण्हं[1] अधिवासयेय्य।
सो तेहि फुट्ठो वहुधा अनोको, विरियं परक्कम्म दळ्हं करेय्य ॥१२॥

थेय्यं न करेय्य[2] न मुसा भणेय्य, मेत्ताय फस्से तसथावरानि।
यदाविलत्तं मनसो विजञ्ञा, कण्हस्स पक्खो'ति विनोदयेय्य ॥१३॥

कोधातिमानस्स वसं न गच्छे, मूलं'पि तेसं पलिखञ्ञ तिट्ठे।
यथप्पियं वा पन अप्पियं वा, अद्धा भवन्तो अभिसंभवेय्य ॥१४॥

पञ्ञं पुरक्खत्वा कल्याणपीति, विक्खम्भये तानि परिस्सयानि।
अरतिं सहेथ सयनम्हि पन्ते, चतुरो सहेथ परिदेवधम्मे ॥१५॥

किं सु असिस्सामि कुवं वा असिस्सं, दुक्खं वत सेत्थ कुवज्ज सेस्सं।
एते वितक्के परिदेवनेय्ये, विनयेथ सेखो अनिकेतसारी ॥१६॥

अन्नं च लद्धा वसनं च काले, मत्तं स जञ्ञा इध तोसनत्थं।
सो तेसु गुत्तो यतचारि गामे, रुसितो'पि वाचं फरुसं न वज्जा ॥१७॥

ओक्खित्तचक्खु न च पादलोलो, झानानुयुत्तो वहुजागरस्स।
उपेक्खमारब्भ[3] समाहितत्तो, तक्कासयं कुक्कुच्चियूप छिन्दे ॥१८॥

चुदितो वचीहि सतिमाभिनन्दे, सब्रह्मचारीसु खिलं पभिन्दे।
वाचं पमुञ्चे कुसलं नातिवेलं, जनवादधम्माय न चेतयेय्य ॥१९॥

---

१. अतुण्हं—म०। २. कारे—म०। ३. उपेखमारब्भ—सी०।

भगवान्—

विरक्त-चित्त, एकान्त स्थान-सेवी, धर्मानुसार सम्बोधि की इच्छा करने वाले के लिए जो अनुकूल है, उसके विषय में अनुभव के अनुसार तुम्हें बताता हूँ ॥ ९ ॥

धीर, स्मृतिमान्, संयत आचरण वाला भिक्षु पाँच भयों से भयभीत न हो, डँसने से, सर्पों से, मनुष्यों के स्पर्श से और पशुओं से ॥ १० ॥

जो दूसरे धर्मावलम्बी हैं उनके बहुत से भयानक वेशों को देखकर न डरे। कुशल गवेषक दूसरी बाधाओं का भी सामना करे ॥ ११ ॥

रोग-पीड़ा, भूख-वेदना, शील तथा अधिक गर्मी को सहे। वह अनेक प्रकार से पीड़ित हो, बेघर हो वीर्य तथा पराक्रम को दृढ़ करे ॥ १२ ॥

चोरी न करे, असत्य न बोले, दुर्बलों तथा सबलों के प्रति मैत्री करे। यदि मन को व्याकुल जाने तो उसे मार का पक्षपाती जान दूर करे ॥ १३ ॥

क्रोध तथा अभिमान् के वश में न आये, उनके मूल को उखाड़ दे। अवश्य वह प्रिय-अप्रिय दोनों को दूर करे ॥ १४ ॥

प्रज्ञा पूर्वक कल्याणरत हो उन बाधाओं को दूर करे। एकान्त स्थान में अरति पर विजय पा ले, चार विलाप की बातों पर विजय पा ले ॥ १५ ॥

क्या खाऊँ? कहाँ खाऊँ? कल दुःख से सोया था, आज कहाँ सोऊँ?—विलाप करने वाले इन वितर्कों को बेघर हो विचरने वाला शैक्ष्य दूर करे ॥१६॥

समय पर अन्न तथा वस्त्र पाकर वह वहाँ अपने सन्तोष की मात्रा को जान ले। वह उनके विषय में संयत हो, संयम से गाँव में विचरे। रुष्ट होने पर भी कठोर बात न करे ॥ १७ ॥

नीचे की हुई आँखें हों, घुमक्कड़ न हो, ध्यान में लीन और सदा जागरूक हो, उपेक्षक और एकाग्रचित्त हो, काम-भोग सम्बन्धी वितर्कों और चंचलता को त्याग दे ॥ १८ ॥

आचार्य आदि के वचनों द्वारा दोष दिखाये जाने पर स्मृतिमान् हो उन्हें स्वीकार करे, गुरुभाइयों के प्रति द्वेषभाव को त्याग दे, कल्याणकारी अनुकूल बात कहे, लोगों में विवाद उठाने की बात न सोचे ॥ १९ ॥

अथापरं पञ्च रजानि लोके, येसं सतिमा विनयाय सिक्खे।
रूपेसु सद्देसु अथो रसेसु, गन्धेसु फस्सेसु सहेथ रागं ॥२०॥
एतेसु धम्मेसु विनेय्य छन्दं, भिक्खु सतीमा सुविमुत्तचित्तो।
कालेन सो सम्मा धम्मं परिवीमंसमानो,
एकोदिभूतो विहने तमं सो'ति (भगवा) ॥२१॥

सारिपुत्तसुत्तं निट्ठितं।

संसार में जो पाँच रज हैं, उनसे दूर रहने का स्मृतिमान् अभ्यास करे। रूप, शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श के राग पर विजय पा ले ॥ २० ॥

इन बातों में राग त्यागकर स्मृतिमान् और विमुक्त चित्त भिक्षु समय पर भली प्रकार धर्म का अनुशीलन कर, एकाग्रचित्त हो अन्धकार का नाश करे ॥२१॥

सारिपुत्तसुत्त समाप्त ।

अट्ठकवग्ग समाप्त ।

५—पारायणवग्गो

१—वत्थुगाथा (५, १)

कोसलानं पुरा रम्मा, अगमा दक्खिणापथं।
आकिञ्चञ्ञं पत्थयानो, ब्राह्मणो मन्तपारगू ॥१॥
सो अस्सकस्स विसये, अळकस्स[1] समासने।
वसी गोदावरी कूले, उञ्छेन च फलेन च ॥२॥
तस्सेव उपनिस्साय, गामो च विपुलो अहु।
ततो जातेन आयेन, महायञ्ञं अकप्पयि ॥३॥
महायञ्ञं यजित्वान, पुन पाविसि अस्समं।
तस्मि पतिपविट्ठम्हि, अञ्ञो आगञ्छि ब्राह्मणो ॥४॥
उग्घट्टपादो तसितो, पंकदन्तो रजस्सिरो।
सो च नं उपसंकम्म, सतानि पञ्च याचति ॥५॥
तमेनं बावरी दिस्वा, आसनेन निमन्तयि।
सुखं च कुसलं पुच्छि, इदं वचनमब्रवि ॥६॥
यं खो ममं[2] देय्यधम्मं, सब्बं विस्सज्जितं मया।
अनुजानाहि मे ब्रह्मे, नत्थि पञ्च सतानि मे ॥७॥
सचे मे याचमानस्स, भवं नानूपदस्सति।
सत्तमे दिवसे तुय्हं, मुद्धा फलतु सत्तधा ॥८॥

---

१. अलकस्स—सी०; मुलकस्स—स्या० ।
२. मम—म० ।

५—परायणवग्ग

१—वत्थुगाथा (५, १)

[इस वर्ग में बावरी ब्राह्मण के शिष्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर हैं। बावरी कोसलनरेश प्रसेनजित् का पुरोहित था। वह प्रव्रजित होकर अपने शिष्यों के साथ उत्तरापथ से दक्षिणापथ चला गया और गोदावरी नदी के किनारे आश्रम बनाकर रहने लगा। उस समय उत्तरापथ में भगवान् के उपदेशों की उसने चर्चा सुनी और अपने सोलह शिष्यों को भगवान् के पास भेजा। उन्होंने यात्रा करते राजगृह में भगवान् का दर्शन किया और भगवान् से अलग-अलग प्रश्न पूछा! भगवान् ने उनके प्रश्नों का उत्तर दिया। वत्थुगाथा संगीति कारक भिक्षुओं द्वारा रचित है, जिसके प्रवक्ता आयुष्मान् आनन्द थे।]

मंत्र पारंगत एक ब्राह्मण सर्वत्यागी होने की कामना से कोसल-जनपद के रम्य नगर (श्रावस्ती) से दक्षिणापथ को गया ॥१॥

वह (आन्ध्र के) अश्वक और अलक—दोनों राज्यों के मध्य गोदावरी नदी के किनारे भिक्षा और फल से निवास करने लगा ॥२॥

उसके पास एक बड़ा ग्राम था। उससे प्राप्त आमदनी से उसने महायज्ञ का आयोजन किया ॥३॥

महायज्ञ करके पुनः आश्रम में प्रवेश किया। वहाँ प्रवेश करते ही दूसरा ब्राह्मण आ गया ॥४॥

घिसे पैर, तृषित, रोते, धूल भरे सिर वाले उसके पास आकर उससे (=बावरी से) पाँच सौ (कार्षापण) माँगे ॥५॥

बावरी ने उसे देखकर आसन दिया, कुशल-मंगल पूछा और यह बात कही ॥ ६ ॥

जो कुछ मेरे पास दान करने की वस्तु थी, मैंने उन सबको दान कर दिया। हे ब्राह्मण ! मुझे क्षमा करें। मेरे पास पाँच सौ नहीं हैं ॥७॥

"यदि मेरे माँगने पर तुम नहीं दोगे, तो सातवें दिन तुम्हारा सिर सात टुकड़ों में फट जाये ॥८॥

अभिसंखरित्वा कुहको, भेरवं सो अकित्तयि।
तस्स तं वचनं सुत्वा, बावरी दुक्खितो अहु ॥९॥
उस्सुस्सति अनाहारो, सोकसल्लसमप्पितो।
अथो'पि एवं चित्तस्स, झाने न रमती मनो ॥ १० ॥
उत्रस्तं दुक्खितं दिस्वा, देवता अत्थकामिनी।
बावरिं उपसंकम्म, इदं वचनमब्रवी ॥ ११ ॥
न सो मुद्धं पजानाति, कुहको सो धनत्थिको।
मुद्धनि मुद्धपाते वा, ञाणं तस्स न विज्जति ॥ १२ ॥
भोती चरहि जानाति, तं मे अक्खाहि पुच्छिता।
मुद्धं मुद्धाधिपातं च, तं सुणोम वचो तव ॥ १३ ॥
अहम्पेतं न जानामि, ञाणं मे'त्थ न विज्जति।
मुद्धं[1] मुद्धाधिपातो च[2], जिनानं हेत[3] दस्सनं ॥ १४ ॥
अथ को चरहि जानाति, अस्मिं पुथविमण्डले[4]।
मुद्धं मुद्धाधिपातं च, तं वे अक्खाहि देवते ॥ १५ ॥
पुरा कपिलवत्थुम्हा, निक्खन्तो लोकनायको।
अपच्चो ओक्काकराजस्स, सक्यपुत्तो पभंकरो ॥ १६ ॥
सो हि ब्राह्मण सम्बुद्धो, सब्बधम्मान पारगू।
सब्बाभिञ्ञाबलप्पत्तो, सब्बधम्मेसु चक्खुमा।
सब्बधम्मक्खयं[5] पत्तो, विमुत्तो उपधिसंखये ॥ १७ ॥
बुद्धो सो भगवा लोके, धम्मं देसेति चक्खुमा।
तं त्वं गत्वान पुच्छस्सु, सो ते तं व्याकरिस्सति ॥ १८ ॥
सम्बुद्धो'ति वचो सुत्वा, उदग्गो बावरी अहु।
सोकस्स तनुका आसि, पीतिं च विपुलं लभि ॥ १९ ॥

१–२. मुद्धनि मुद्धाधिपाते च—म०; मुद्धं मुद्धाधिपातञ्च—सी०। ३. हेत्थ—म०। ४. पथविमण्डले—म०। ५. सब्बकम्मक्खयं—म०।

उस ढोंगी ने बनावटी क्रिया करके भय दिखाकर कुछ बोला। उसकी उस बात को सुनकर बावरी दुःखित हुआ ॥९॥

वह शोक रूपी काँटा चुभने के कारण निराहार हो सूखने लगा। उसके ऐसा चित्त होने से ध्यान में मन नहीं लगता था ॥१०॥

उसे भयभीत और दुःखी देख एक हितैषी देवता[1] ने बावरी के पास आकर यह बात कही ॥११॥

वह धन चाहने वाला ढोंगी 'सिर' को नहीं जानता, सिर और सिर के गिरने में भी उसे जानकारी नहीं है ॥१२॥

बावरी—

हे देवते! यदि आप सिर और सिर के गिरने को जानते हैं, तो मुझे मेरे पूछने पर बतलायें। मैं आपकी बात सुनना चाहता हूँ ॥१३॥

देवता—

मैं भी इसे नहीं जानता, इसका मुझे ज्ञान नहीं है। सिर और सिर का गिरना—यह बुद्धों का विषय है ॥१४॥

बावरी—

हे देवते! मुझे बतलायें कि इस पृथ्वी-मण्डल पर सिर और सिर के गिरने को कौन जानता है? ॥१५॥

देवता—

पहले इक्ष्वाकुराज के पुत्र, शाक्यपुत्र, प्रकाशमान्, लोकनायक कपिलवस्तु नगर से निकले थे ॥१६॥

हे ब्राह्मण! वे सम्बुद्ध सभी धर्मों में पारंगत हैं, सब अभिज्ञा के बल को प्राप्त हैं, सब धर्मों में चक्षुष्मान् हैं, सभी क्लेशों का क्षय कर लिए हैं और आसक्तियों के नष्ट हो जाने से विमुक्त हो गए हैं ॥१७॥

वे चक्षुष्मान् भगवान् बुद्ध लोक में धर्मोपदेश दे रहे हैं, तुम उनके पास जाकर पूछो। वे तेरा उत्तर देंगे ॥१८॥

'सम्बुद्ध' वचन सुनकर बावरी प्रफुल्लित हो उठा। उसका शोक कम हो गया और बड़ा आनन्द हो आया ॥१९॥

१. आश्रमवासी देवता—अट्ठकथा।

सो बावरी अत्तमनो उदग्गो, तं देवतं पुच्छति वेदजातो।
कतमम्हि गामे निगमम्हि वा पुन, कतमम्हि वा जनपदे लोकनाथो।
यत्थ गन्त्वा[1] नमस्सेमु[2], सम्बुद्धं दिपदुत्तमं[3] ॥ २० ॥

सावत्थियं कोसलमन्दिरे जिनो, पहूतपञ्ञो वरभूरिमेधसो।
सो सक्यपुत्तो विधुरो अनासवो, मुद्धाधिपातस्स विदू नरासभो ॥२१॥

ततो आमन्तयी सिस्से, ब्राह्मणे मन्तपारगे।
एथ माणव अक्खिस्सं, सुणोथ वचनं मम ॥ २२ ॥

यस्सेसो दुल्लभो लोके, पातुभावो अभिण्हसो।
स्वज्ज लोकम्हि उप्पन्नो, सम्बुद्धो इति विस्सुतो।
खिप्पं गन्त्वान सावत्थिं, पस्सव्हो दिपदुत्तमं ॥ २३ ॥

कथं चरहि जानेमु, दिस्वा बुद्धो'ति ब्राह्मण।
अजानतं नो पब्रूहि, यथा जानेमु तं मयं ॥ २४ ॥

आगतानि हि मन्तेसु, महापुरिसलक्खणा।
द्वत्तिंसा[4] च व्याख्याता, समत्ता अनुपुब्बसो ॥ २५ ॥

यस्सेते होन्ति गत्तेसु, महापुरिसलक्खणा।
द्वे'व[5] तस्स गतियो, ततिया हि न विज्जति ॥ २६ ॥

सचे अगारं अज्झावसति,[6] विजेय्य पठविं इमं।
अदण्डेन असत्थेन, धम्मेनमनुसासति[7] ॥ २७ ॥

सचे च सो पब्बजति, अगारा अनगारियं।
विवत्तच्छदो[8] सम्बुद्धो, अरहा भवति अनुत्तरो ॥ २८ ॥

जातिं गोत्तं च लक्खणं, मन्ते सिस्से पुनापरे।
मुद्धं मुद्धाधिपातं च, मनसा येव पुच्छथ ॥ २९ ॥

---

१. गन्त्वान—म०। २. पस्सेम—म०। ३. द्विपदुत्तमं—म०। ४. द्वत्तिंसानि—म०। ५. द्वेयेव—म०; दुवे च—सी०। ६. अज्झावसति—क०। ७. धम्मेन अनुसासति—सी०। ८. विवटच्छदो—म०।

वावरी—

उस वावरी ने प्रसन्न, हर्षित और आनन्दित हो उस देवता से पूछा—'लोकनाथ किस ग्राम अथवा कस्वा या जनपद में हैं, जहाँ कि हम लोग जाकर उस नर-श्रेष्ठ सम्बुद्ध को नमस्कार करें ? ॥२०॥

देवता —

कोशल जनपद के श्रावस्ती नगर में वे महाप्रज्ञ, उत्तमप्रज्ञ, भारमुक्त, आश्रव रहित, नरश्रेष्ठ, सिर गिरने के ज्ञाता शाक्यपुत्र, जिन (=बुद्ध) हैं ॥२१॥

वावरी—

तब वेदों के पारंगत ब्राह्मण शिष्यों को उसने सम्बोधित किया—"हे माणव ! (=तरुण ब्राह्मण विद्यार्थी) आओ। मैं तुम लोगों से कहता हूँ, मेरी बात सुनो ॥२२॥

संसार में जिनका उत्पन्न होना प्रायः दुर्लभ है, वह आज सम्बुद्ध नाम से प्रसिद्ध संसार में उत्पन्न हो गए हैं। श्रावस्ती जाकर उन नर-श्रेष्ठ का दर्शन करो ॥२३॥

शिष्य—

हे ब्राह्मण ! कैसे हम लोग देखकर जानेंगे कि यह बुद्ध हैं ? हम न जानने वालों को बतायें, जिससे कि हम लोग उन्हें जान सकें ॥२४॥

वावरी—

वेदों में महापुरुष-लक्षण आये हुए हैं। क्रमशः और परिपूर्णतः वे बत्तीस बतलाये गये हैं ॥२५॥

जिनके शरीर में महापुरुष लक्षण होते हैं, उनकी दो ही गतियाँ होती हैं, तीसरी (गति) नहीं होती ॥२६॥

यदि वे इस पृथ्वी को जीतकर घर में रहते हैं तो विना दण्ड, विना शस्त्र के ही धर्म से शासन करते हैं ॥२७॥

यदि वे घरवार छोड़कर प्रव्रजित हो जाते हैं तो वे खुले ज्ञान वाले, सर्व-श्रेष्ठ, अर्हत् सम्बुद्ध होते है ॥२८॥

जाति, गोत्र, लक्षण, मंत्र, शिष्यों, सिर और सिर के गिरने को मन में ही पूछना ॥२९॥

अनावरणदस्सावी, यदि बुद्धो भविस्सति ।
मनसा पुच्छिते पञ्हे, वाचाय विस्सजेस्सति ॥ ३० ॥

बावरिस्स वचो सुत्वा, सिस्सा सोळस ब्राह्मणा ।
अजितो तिस्समेत्तेय्यो, पुण्णको अथ मेत्तगू ॥ ३१ ॥

धोतको उपसीवो च, नन्दो च अथ हेमको ।
तोदेय्यकप्पा दुभयो, जातुकण्णी च पण्डितो ॥ ३२ ॥

भद्रावुधो उदयो च, पोसालो चापि ब्राह्मणो ।
मोघराजा च मेधावी, पिंगियो च महा इसि ॥ ३३ ॥

पच्चेकगणिनो सब्बे, सब्बलोकस्स विस्सुता ।
झायी झानरता धीरा, पुब्बवासनवासिता ॥ ३४ ॥

बावरिं अभिवादेत्वा, कत्वा च नं पदक्खिणं ।
जटाजिनधरा सब्बे, पक्कामुं उत्तरामुखा ॥ ३५ ॥

अळकस्स पतिट्ठानं, पुरिमं[1] माहिस्सतिं[2] तदा ।
उज्जेनिं चापि गोनद्धं, वेदिसं वनसव्हयं ॥ ३६ ॥

कोसम्बिं चापि साकेतं, सावत्थिं च पुरुत्तमं ।
सेतब्यं कपिलवत्थुं, कुसिनारं च मन्दिरं ॥ ३७ ॥

पावं च भोगनगरं, वेसालिं मागधं पुरं ।
पासाणकं चेतियं च, रमणीयं मनोरमं ॥ ३८ ॥

तसितो वुदकं सीतं, महालाभं'व वाणिजो ।
छायं घम्माभितत्तो'व तुरिता पब्बतमारुहं ॥ ३९ ॥

भगवा च तम्हि समये, भिक्खुसंघपुरक्खतो ।
भिक्खूनं धम्मं देसेति, सीहो'व नदती वने ॥ ४० ॥

अजितो अद्दस सम्बुद्धं, वीतरंसीं'व[3] भानुमं ।
चन्दं यथा पन्नरसे, पारिपूरिं[4] उपागतं[5] ॥ ४१ ॥

१–२. पुरिमाहिस्सति—म०; पुरं माहिस्सति—स्या० । ३. सतरंसिं व—म० । ४–५. परिपूरिमुपागतं—सी० ।

यदि बुद्ध आवरण-रहित द्रष्टा होंगे तो मन में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर वचन से देंगे ॥३०॥

बावरी की बात सुन सोलह ब्राह्मण शिष्य—अजित, तिस्समेत्तेय्य, पुण्णक, मेत्तगू, धोतक, उपसीव, नन्द, हेमक, तोदेय्य और कप्प-दोनों, पण्डित जातुकण्णी, भद्रायुध, उदय और पोसाल ब्राह्मण, मेधावी मोघराजा, महाऋषि पिंगिय—सब प्रत्येक गणी थे, सब संसार में प्रसिद्ध थे। ध्यानी, ध्यान में लीन रहने वाले, धीर और पूर्व के अच्छे संस्कारों से युक्त थे। बावरी को प्रणाम कर, उसकी प्रदक्षिणा कर, सभी जटा और मृगछालाधारी उत्तर की ओर चल पड़े ।३१-३५।

वे पहले अलक के प्रतिष्ठान[1] गये, वहाँ से माहिष्मती[2] नगर गये। उज्जयिनी[3], गोनद्ध[4], विदिशा[5] और वन[6] नामक नगर ॥३६॥

कौशाम्बी[7] और साकेत[8] तथा उत्तम नगर श्रावस्ती[9], सेतव्य[10], कपिलवस्तु[11] और कुशीनारा[12] ॥ ३७ ॥

पावा,[13] भोगनगर,[14] वैशाली[15] और राजगृह[16] के रमणीय मनोरम पाषाण चैत्य में पहुँचे ॥ ३८ ॥

जैसे प्यासा मनुष्य शीतल जल की, व्यापारी महालाभ की और गर्मी से पीड़ित छाया की इच्छा करते हैं, वैसे ही वे शीघ्र पर्वत पर चढ़ गये ॥ ३९ ॥

उस समय भगवान् भिक्षुसंघ के बीच वन में सिंह के गर्जन करने के समान भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे ॥ ४० ॥

अजित ने प्रखर रश्मिरहित प्रकाशमान् सूर्य तथा पूर्णिमा के दिन पूर्णता को प्राप्त चन्द्रमा जैसे सम्बुद्ध को देखा ॥ ४१ ॥

१. पैठन। २. मध्यप्रदेश में स्थित माहिष्मती।

३. वर्तमान उज्जैन, मध्यप्रदेश। ४. गोधपुर का नाम है—अट्ठकथा।

५. वर्तमान भेलसा, मध्यप्रदेश। ६. तुम्बनगर को कहते हैं, वर्तमान तुम्बेन, मध्यप्रदेश। कोई-कोई 'वनश्रावस्ती' भी कहते हैं—अट्ठकथा।

७. कोसम, जिला इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश। ८. अयोध्या, उत्तरप्रदेश।

९. सहेट महेट, जिला बहराइच, उत्तरप्रदेश। १०. अज्ञात।

११. पिपरहवा, जिला बस्ती, उत्तरप्रदेश। १२. कुशीनगर, जिला देवरिया, उत्तरप्रदेश।

१३. सठियांव, जिला देवरिया, उत्तरप्रदेश। १४. अज्ञात।

१५. बनिया बसाढ़, जिला वैशाली, बिहार। १६. वर्तमान राजगिर, बिहार। मागधपुर राजगृह का नाम है—अट्ठकथा।

अनावरणदस्सावी, यदि बुद्धो भविस्सति ।
मनसा पुच्छिते पञ्हे, वाचाय विस्सजेस्सति ॥ ३० ॥

बावरिस्स वचो सुत्वा, सिस्सा सोळस ब्राह्मणा ।
अजितो तिस्समेत्तेय्यो, पुण्णको अथ मेत्तगू ॥ ३१ ॥

धोतको उपसीवो च, नन्दो च अथ हेमको ।
तोदेय्यकप्पा दुभयो, जातुकण्णी च पण्डितो ॥ ३२ ॥

भद्रावुधो उदयो च, पोसालो चापि ब्राह्मणो ।
मोघराजा च मेधावी, पिंगियो च महा इसि ॥ ३३ ॥

पच्चेकगणिनो सब्बे, सब्बलोकस्स विस्सुता ।
झायी झानरता धीरा, पुब्बवासनवासिता ॥ ३४ ॥

बावरिं अभिवादेत्वा, कत्वा च नं पदक्खिणं ।
जटाजिनधरा सब्बे, पक्कामुं उत्तरामुखा ॥ ३५ ॥

अळकस्स पतिट्ठानं, पुरिमं[1] माहिस्सतिं[2] तदा ।
उज्जेनिं चापि गोनद्धं, वेदिसं वनसव्हयं ॥ ३६ ॥

कोसम्बिं चापि साकेतं, सावत्थिं च पुरुत्तमं ।
सेतब्यं कपिलवत्थुं, कुसिनारं च मन्दिरं ॥ ३७ ॥

पावं च भोगनगरं, वेसालिं मागधं पुरं ।
पासाणकं चेतियं च, रमणीयं मनोरमं ॥ ३८ ॥

तसितो वुदकं सीतं, महालाभं'व वाणिजो ।
छायं घम्माभितत्तो'व तुरिता पब्बतमारुहुं ॥ ३९ ॥

भगवा च तम्हि समये, भिक्खुसंघपुरक्खतो ।
भिक्खूनं धम्मं देसेति, सीहो'व नदती वने ॥ ४० ॥

अजितो अद्दस सम्बुद्धं, वीतरंसी'व[3] भानुमं ।
चन्दं यथा पन्नरसे, पारिपूरिं[4] उपागतं[5] ॥ ४१ ॥

१–२. पुरिमाहिस्सति—म०; पुरं माहिस्सति—स्या० । ३. सतरंसि व—म० । ४–५. परिपूरिमुपागतं—सी० ।

यदि बुद्ध आवरण-रहित द्रष्टा होंगे तो मन में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर वचन से देगें ॥३०॥

बावरी की बात सुन सोलह ब्राह्मण शिष्य--अजित, तिस्समेत्तेय्य, पुण्णक, मेत्तगू, धोतक, उपसीव, नन्द, हेमक, तोदेय्य और कप्प-दोनों, पण्डित जातुकण्णी, भद्रायुध, उदय और पोसाल ब्राह्मण, मेधावी मोघराजा, महाऋषि पिंगिय—सब प्रत्येक गणी थे, सब संसार में प्रसिद्ध थे। ध्यानी, ध्यान में लीन रहने वाले, धीर और पूर्व के अच्छे संस्कारों से युक्त थे। बावरी को प्रणाम कर, उसकी प्रदक्षिणा कर, सभी जटा और मृगछालाधारी उत्तर की ओर चल पड़े ।३१-३५।

वे पहले अलक के प्रतिष्ठान[1] गये, वहाँ से माहिष्मती[2] नगर गये। उज्जयिनी[3], गोनद्ध[4], विदिशा[5] और वन[6] नामक नगर ॥३६॥

कौशाम्बी[7] और साकेत[8] तथा उत्तम नगर श्रावस्ती[9], सेतव्य[10], कपिलवस्तु[11] और कुशीनारा[12] ॥ ३७ ॥

पावा,[13] भोगनगर,[14] वैशाली[15] और राजगृह[16] के रमणीय मनोरम पाषाण चैत्य में पहुँचे ॥ ३८ ॥

जैसे प्यासा मनुष्य शीतल जल की, व्यापारी महालाभ की और गर्मी से पीड़ित छाया की इच्छा करते हैं, वैसे ही वे शीघ्र पर्वत पर चढ़ गये ॥ ३९ ॥

उस समय भगवान् भिक्षुसंघ के बीच वन में सिंह के गर्जन करने के समान भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे ॥ ४० ॥

अजित ने प्रखर रश्मिरहित प्रकाशमान् सूर्य तथा पूर्णिमा के दिन पूर्णता को प्राप्त चन्द्रमा जैसे सम्बुद्ध को देखा ॥ ४१ ॥

---

१. पैठन। २. मध्यप्रदेश में स्थित माहिष्मती।

३. वर्तमान उज्जैन, मध्यप्रदेश। ४. गोधपुर का नाम है—अट्ठकथा।

५. वर्तमान भेलसा, मध्यप्रदेश। ६. तुम्बनगर को कहते हैं, वर्तमान तुम्बेन, मध्यप्रदेश। कोई-कोई 'वनश्रावस्ती' भी कहते हैं—अट्ठकथा।

७. कोसम, जिला इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश। ८. अयोध्या, उत्तरप्रदेश।

९. सहेट महेट, जिला बहराइच, उत्तरप्रदेश। १०. अज्ञात।

११. पिपरहवा, जिला बस्ती, उत्तरप्रदेश। १२. कुशीनगर, जिला देवरिया, उत्तरप्रदेश।

१३. सठियाँव, जिला देवरिया, उत्तरप्रदेश। १४. अज्ञात।

१५. बनिया बसाढ़, जिला वैशाली, बिहार। १६. वर्तमान राजगिर, बिहार। मागधपुर राजगृह का नाम है—अट्ठकथा।

अथ'स्स गत्ते दिस्वान, परिपूरं च व्यञ्जनं।
एकमन्तं ठितो हट्ठो, मनोपञ्हे अपुच्छथ ॥ ४२ ॥

आदिस्स जम्मनं[1] ब्रूहि, गोत्तं ब्रूहि सलक्खणं।
मन्तेसु पारमिं ब्रूहि, कति वाचेति ब्राह्मणो ॥ ४३ ॥

वीसं वस्ससतं आयु, सो च गोत्तेन बावरि।
तीणिस्स[2] लक्खणा गत्ते, तिण्णं वेदान पारगू ॥ ४४ ॥

लक्खणे इतिहासे च, सनिघण्डुसकेटुभे।
पञ्चसतानि वाचेति, सधम्मे पारमिं गतो ॥ ४५ ॥

लक्खणानं पविचयं, बावरिस्स नरुत्तम।
तण्हच्छिद पकासेहि, मा नो कंखायितं अहू ॥ ४६ ॥

मुख जिव्हाय छादेति, उण्णस्स भमुकन्तरे।
कोसोहितं वत्थुगुह्यं, एवं जानाहि माणव ॥ ४७ ॥

पुच्छं हि किञ्चि असुणन्तो, सुत्वा पञ्हे वियाकते[3]।
विचिन्तेति जनो सब्बो, वेदजातो कतञ्जलि ॥ ४८ ॥

को नु देवो वा ब्रह्मा वा, इन्दो वा'पि सुजंपति।
मनसा पुच्छिते पञ्हे, कमेतं पटिभासति ॥ ४९ ॥

मुद्धं मुद्धाधिपातं च, बावरी परिपुच्छति।
तं व्याकरोहि भगवा, कंखं विनय नो इसे ॥ ५० ॥

अविज्जा मुद्धा'ति जानाहि, विज्जा मुद्धाधिपातिनी।
सद्धासतिसमाधीहि, छन्दविरियेन संयुता ॥ ५१ ॥

ततो वेदेन महता, संथम्भित्वान माणवो।
एकंसं अजिनं कत्वा, पादेसु सिरसा पति ॥ ५२ ॥

बावरी ब्राह्मणो भोतो, सह सिस्सेहि मारिस।
उदग्गचित्तो सुमनो, पादे वदन्ति चक्खुम ॥ ५३ ॥

---

१. जप्पनं—क० । २. तीणस्स—सी० । ३. व्याकते—म० ।

तब उनके शरीर में परिपूर्ण लक्षणों को देखकर हर्षित हो, एक ओर खड़े ही अपने मन में प्रश्नों को पूछा ॥ ४२ ॥

मेरे आचार्य की आयु बतावें, जाति बतावें, गोत्र बतावें, लक्षण बतावें, वेदों की योग्यता बतावें, (यह भी बतावें कि) वह कितने ब्राह्मणों को पढ़ाते हैं ? ॥ ४३ ॥

भगवान्—

उसकी आयु सौ वर्ष है, वह गोत्र से बावरी है, उसके शरीर में तीन लक्षण हैं और वह तीनों वेदों में पारगत हैं ॥ ४४ ॥

वह लक्षण (शास्त्र), इतिहास तथा निघण्टु सहित कैटुभ को पाँच सौ को पढ़ाता है और वह अपने धर्म में पारंगत है ॥ ४५ ॥

अजित—

हे नर-श्रेष्ठ ! तृष्णा का छेदन करने वाले आप बावरी के लक्षणों का वर्णन करें, जिससे कि हमारे लिए कोई शंका न रहे ॥ ४६ ॥

भगवान्—

वह जीभ से मुख को ढँक देता है। भौंहों के बीच ऊष्णलोम है, लिंग कोष में छिपा है—माणव ! इस प्रकार जानो ॥४७॥

किसी प्रश्न को बिना सुने ही प्रश्न का उत्तर देते सुनकर सभी लोग प्रमुदित हो, अञ्जलिबद्ध हो सोचने लगे ॥४८॥

किस देव, ब्रह्मा, इन्द्र या सुजम्पत्ति द्वारा मन में किये गये प्रश्नों के उत्तर ये देते हैं ? ॥४९॥

अजित—

सिर और सिर गिरने के विषय में बावरी पूछता है। भगवान् उसका उत्तर दें, ऋषि ! हमारी शंका दूर करें ॥५०॥

भगवान्—

अविद्या को सिर जानो और श्रद्धा, स्मृति, समाधि, छन्द तथा वीर्य से युक्त विद्या को सिर का गिरना जानो ॥५१॥

तब माणव बड़े आनन्द से अपने को सम्हाल कर, एक कंधे पर मृगछाला करके भगवान् के पैरों पर सिर से गिर पड़ा ॥५२॥

अजित—

हे मार्ष ! शिष्यों सहित बावरी ब्राह्मण हर्षित और प्रसन्न हो चक्षुष्मान् के पैरों की वन्दना करता है ॥५३॥

सुखितो बावरी होतु, सह सिस्सेहि ब्राह्मणो।
त्वं चापि सुखितो होहि, चिरं जीवाहि माणव ॥ ५४ ॥

बावरिस्स च तुय्हं वा, सब्बेसं सब्बसंसयं।
कतावकासा पुच्छव्हो, यं किञ्चि मनसिच्छथ ॥ ५५ ॥

सम्बुद्धेन कतोकासो, निसीदित्वान पञ्जलि।
अजितो पठमं पञ्हं, तत्थ पुच्छि तथागतं ॥ ५६ ॥

वत्थुगाथा निट्ठिता।

१—अजितमाणवपुच्छा (५, २)

केन'स्सु निवुतो लोको (इच्चायस्मा अजितो), केन'स्सु नप्पकासति।
किस्साभिलेपनं ब्रूसि, किं सु तस्स महब्भयं ॥ १ ॥

अविज्जाय निवुतो लोको (अजिताति भगवा),
वेविच्छा पमादा नप्पकासति।
जप्पाभिलेपनं ब्रूमि, दुक्खं अस्स महब्भयं ॥ २ ॥

सवन्ति सब्बधी सोता (इच्चायस्मा अजितो), सोतानं किं निवारणं।
सोतानं संवरं ब्रूहि, केन सोता पिधिय्यरे[1] ॥ ३ ॥

यानि सोतानि लोकस्मिं (अजिताति भगवा), सति तेसं निवारणं।
सोतानं संवरं ब्रूमि, पञ्ञायेते पिधिय्यरे ॥ ४ ॥

पञ्ञा चेव सती च[3] (इच्चायस्मा अजितो), नामरूपं च मारिस।
एतं मे पुट्ठो पब्रूहि, कत्थेतं उपरुज्झति ॥ ५ ॥

यं एतं पञ्हं अपुच्छि, अजित तं वदामि ते।
यत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झति।
विञ्ञाणस्स निरोधेन, एत्थेतं उपरुज्झति ॥ ६ ॥

---

१. पिधिय्यरे—म०; पिधीयरे—क०, सी०।
२–३. सति यत्र—म०; सती चेव—स्या०।

भगवान्—

बावरी ब्राह्मण शिष्यों सहित सुखी हो। तुम भी सुखी हो। माणव! चिरंजीवी होओ ॥५४॥

बावरी तथा तुम सबकी सभी शंकाओं के विषय में पूछने के लिए अवकाश दे रहा हूँ। जो चाहो सो पूछो ॥५५॥

सम्बुद्ध के अवकाश देने पर बैठकर अञ्जलिबद्ध हो अजित ने वहाँ तथागत से पहला प्रश्न किया ॥५६॥

वत्थुगाथा समाप्त।

२—अजितमाणवपुच्छा (५, २)

अजित—

संसार किससे ढँका हुआ है? किससे प्रकाशित नहीं होता? किसे इसका आलेप कहते हैं? इसके लिए क्या महाभय है? ॥१॥

भगवान्—

संसार अविद्या से ढँका हुआ है। लोभ तथा प्रमाद के कारण वह प्रकाशित नहीं होता। तृष्णा को मैं इसका आलेप कहता हूँ। दुःख इसके लिए महाभय है ॥२॥

अजित—

सर्वत्र तृष्णा की धारायें बहती हैं। धाराओं का क्या निवारण है? धाराओं के आवरण को बतावें, धारायें किससे बन्द हो जाती हैं? ॥३॥

भगवान्—

संसार में जितनी धारायें हैं, स्मृति उनका निवारण है। इन धाराओं का आवरण बताता हूँ। ये प्रज्ञा से बन्द हो जाती हैं ॥४॥

अजित—

हे मार्ष! प्रज्ञा, स्मृति और नाम-रूप—इनका अन्त कहाँ होता है? पूछने पर मुझे इसे बतायें ॥५॥

भगवान्—

अजित! जो प्रश्न तुमने किया है, मैं तुम्हें उसे बताता हूँ। जहाँ नाम और रूप सम्पूर्णतः निरुद्ध हो जाते हैं, विज्ञान के निरोध से इनका निरोध हो जाता है ॥६॥

ये च संखतधम्मासे, ये च सेखा पुथू इध ।
तेसं मे निपको इरियं, पुट्ठो पब्रूहि मारिस ॥७॥
कामेसु नाभिगिज्झेय्य, मनसा'नाविलो सिया ।
कुसलो सब्बधम्मानं सतो भिक्खु परिब्बजे'ति ॥८॥

अजितमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

३—तिस्समेत्तेय्यमाणवपुच्छा (५, ३)

को'ध सन्तुसितो लोके (इच्चायस्मा तिस्सो मेत्तेयो),
कस्स नो सन्ति इञ्जिता ।
को उभ'न्तमभिञ्ञाय, मज्झे मन्ता न लिप्पति ।
कं ब्रूसि महापुरिसो'ति, को इध सिब्बनिमच्चगा ॥१॥
कामेसु ब्रह्मचरियवा (मेत्तेय्याति भगवा), वीततण्हो सदा सतो ।
संखाय निब्बुतो भिक्खु, तस्स नो सन्ति इञ्जिता ॥२॥
सो उभन्तमभिञ्ञाय, मज्झे मन्ता न लिप्पति ।
तं ब्रूमि महापुरिसो'ति, सो इध सिब्बनिमच्चगा'ति ॥३॥

तिस्समेत्तेय्यमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

४—पुण्णकमाणवपुच्छा (५, ४)

अनेजं मूलदस्साविं (इच्चायस्मा पुण्णको), अत्थि[1] पञ्हेन आगमं ।
किं निस्सिता इसयो मनुजा, खत्तिया ब्राह्मणा देवतानं ।
यञ्ञमकप्पयिंसु पुथु इध लोके, पुच्छामि तं भगवा ब्रूमि मेतं ।१।

१. अत्थी—स्या० ।

अजित—

जो सभी बातों को जान गये हैं और जो यहाँ शैक्ष्य और दूसरे लोग हैं, मार्ष ! पूछने पर ज्ञानी आप उनकी चर्या को बतायें ॥७॥

भगवान्—

कामभोगों में लिप्त न हो, मन को निर्मल रखे, सभी धर्मों में कुशल हो; भिक्षु स्मृति के साथ विचरण करे ॥८॥

अजितमाणवपुच्छा समाप्त ।

३—तिस्समेत्तेय्यमाणवपुच्छा (५, ३)

तिस्समेत्तेय्य—

इस संसार में कौन सन्तुष्ट है ? किसमें चंचलताएँ नहीं ? कौन ज्ञानी दोनों अन्तों को जानकर बीच में लिप्त नहीं होता ? किसे महापुरुष कहते हैं ? कौन यहाँ तृष्णा से परे हो गया है ? ॥१॥

भगवान्—

जो काम-भोगों को त्याग ब्रह्मचारी है, तृष्णा-रहित है, स्मृतिमान् है और जो भिक्षु ज्ञान द्वारा मुक्त है, उसमें चंचलताएँ नहीं हैं ॥२॥

वह ज्ञानी दोनों अन्तों को जानकर बीच में लिप्त नहीं होता है । मैं उसे महापुरुष बताता हूँ, वही यहाँ तृष्णा के परे हो गया है ॥३॥

तिस्समेत्तेय्यमाणवपुच्छा समाप्त ।

४—पुण्णकमाणवपुच्छा (५, ४)

पुण्णक—

तृष्णारहित, अकुशलमूल आदि के देखने वाले के पास मैं प्रश्न करने आया हूँ । किस कारण ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने देवताओं के नाम इस संसार में बहुत यज्ञ किये थे ? भगवान् ! आपसे यह पूछता हूँ, आप इसे बतावें ॥ १ ॥

ये केचि'मे इसयो मनुजा (पुण्णकाति भगवा), खत्तिया ब्राह्मणा देवतानं यञ्ञमकप्पयिंसु पुथू इध लोके, आसिंसमाना[1] पुण्णक इत्थभावं[2] जरं सिता यञ्ञमकप्पयिंसु ॥२॥

ये केचि'मे इसयो मनुजा (इच्चायस्मा पुण्णको),
खत्तिया ब्राह्मणा देवतानं, यञ्ञमकप्पयिंसु पुथू'ध लोके, ॥३॥
कच्चि सु ते भगवा यञ्ञपथे अप्पमत्ता,
अतारुं जातिं च जरं च मारिस ।
पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥४॥

आसिसन्ति थोमयन्ति अभिजप्पन्ति जुहन्ति (पुण्णकाति भगवा)
कामाभिजप्पन्ति पटिच्च लाभं ।
ते याजयोगा भवरागरत्ता, नातरिंसु जातिजरं'ति ब्रूमि ॥५॥

ते चे नातरिंसु याजयोगा (इच्चायस्मा पुण्णको),
यञ्ञेहि जातिं च जरं च मारिस ।
अथ को चरहि देवमनुस्सलोके, अतारि जातिं च जरं च मारिस ।
पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥६॥

संखाय लोकस्मिं परोवरानि (पुण्णकाति भगवा),
यस्सिञ्जितं नत्थि कुहिंचि लोके ।
सन्तो विधूमो अनिघो निरासो,
अतारि सो जातिजरं'तिब्रूमी'ति ॥७॥

पुण्णकमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

५—मेत्तगूमाणवपुच्छा (५, ५)

पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं (इच्चायस्मा मेत्तगू),
मञ्ञामि तं वेदगुं भावितत्तं ।
कुतो नु दुक्खा समुदागता इमे, ये केचि लोकस्मिं अनेकरूपा ॥१॥

---

१. आसीसमाना—म० । २. इत्थत्तं—म० ।

भगवान्—

पुण्णक ! बुढ़ापे को प्राप्त होने पर जीवन की कामना करते हुए इस संसार में ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों ने देवताओं के नाम बहुत से यज्ञ किये थे ॥ २ ॥

पुण्णक—

इस संसार में जिन ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों ने देवताओं के नाम बहुत यज्ञ किये थे, भगवान् ! क्या वे यज्ञपथ में अप्रमत्त हो जन्म और बुढ़ापा के पार हो गये ? हे मार्ष ! मैं यह पूछता हूँ, भगवान् ! आप इसे बतावें ॥ ३—४ ॥

भगवान्—

हे पुण्णक ! लाभ के कारण वे देवताओं के गुण गाते हैं, प्रशंसा करते हैं, चर्चा करते हैं, यज्ञ करते हैं और काम-भोग की इच्छा करते हैं। मैं बताता हूँ कि यज्ञ में आसक्त, भव-तृष्णा में रत वे जन्म तथा बुढ़ापा के पार नहीं हुए ॥ ५ ॥

पुण्णक—

हे मार्ष ! दान में रत लोग यज्ञों द्वारा जन्म तथा बुढ़ापा के पार नहीं हो गए तो फिर हे मार्ष ! देव-मनुष्य लोक में कौन जन्म तथा बुढ़ापा के पार हो गया है ? मैं यह पूछता हूँ। भगवान् ! मुझे यह बतावें ॥६॥

भगवान्—

जो संसार के आर-पार को जान गया है, जिसमें संसार के प्रति कहीं भी तृष्णा नहीं है, शान्त, वासना रहित, पाप रहित, आसक्ति रहित वह जन्म तथा बुढ़ापा के पार हो गया है—ऐसा मैं बताता हूँ ॥ ७ ॥

पुण्णकमाणवपुच्छा समाप्त।

५—मेत्तगूमाणवपुच्छा (५, ५)

मेत्तगू—

भगवान् ! आप से पूछता हूँ, मुझे बतावें। मैं आपको ज्ञानी तथा संयमी मानता हूँ। संसार में जो अनेक प्रकार के दुःख हैं, ये कहाँ से उत्पन्न हुए हैं ? ॥ १ ॥

दुक्खस्स[1] वे मं पभवं अपुच्छसि (मेत्तगूति भगवा),

तं ते पवक्खामि यथा पजानं ।

उपधीनिदाना पभवन्ति दुक्खा, ये केचि लोकस्मिं अनेकरूपा ॥२॥

यो वे अविद्वा उपधिं करोति, पुनप्पुनं

दुक्खस्स जातिप्पभवानुपस्सी ॥३॥

यं तं अपुच्छिम्ह अकित्तयी नो, अञ्ञं तं पुच्छामि[2] तदिंघ ब्रूहि ।

कथं नु धीरा वितरन्ति ओघं, जातिजरं सोकपरिद्दवं च ।

तं मे मुनि साधु वियाकरोहि, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥४॥

कित्तयिस्सामि ते धम्मं (मेत्तगूति भगवा), दिट्ठे[3] धम्मे अनीतिहं ।

यं विदित्वा सतो चरं, तरे लोके विसत्तिकं ॥ ५ ॥

तं चाहं अभिनन्दामि, महेसी धम्ममुत्तमं ।

यं विदित्वा सतो चरं, तरे लोके विसत्तिकं ॥ ६ ॥

यं किञ्चि संपजानासि (मेत्तगूति भगवा),

उद्धं अधो तिरियं चापि मज्झे ।

एतेसु नन्दिं च निवेसनं च, पनुज्ज विञ्ञाणं भवे न तिट्ठे ॥ ७॥

एवं विहारी सतो अप्पमत्तो, भिक्खु चरं हित्वा मामायितानि ।

जातिजरं सोकपरिद्दवं च, इधेव विद्वा पजहेय्य दुक्खं ॥ ८ ॥

एताभिनन्दामि वचो महेसिनो, सुकित्तितं गोतम'नूपधीकं ।

अद्धा हि भगवा पहासि दुक्खं, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥ ९ ॥

---

१. दुक्खाय—सी० ।

२. पुच्छाम—म० ।

३. दिट्ठेव—म० ।

भगवान्—

तुम मुझसे दुःख की उत्पत्ति को पूछते हो, मैं जैसा जानता हूँ, तुम्हें वताता हूँ। संसार में जो कोई अनेक प्रकार के दुःख हैं, वे तृष्णा (=उपधि) के कारण उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

जो अजानकार तृष्णा करता है, वह मूर्ख वार-वार दुःख में पड़ता है। इसलिए जानते हुए, 'दुःख की उत्पत्ति तृष्णा के कारण होती हैं'—ऐसा मनन करते हुए, तृष्णा न करे ॥ ३ ॥

मेत्तगू—

मैंने आपसे जो पूछा, उसे आपने वताया। अब मैं दूसरा प्रश्न पूछ रहा हूँ, उसे वतायें। कैसे धीर लोग जन्म, वुढ़ापा, शोक और विलाप की बाढ़ को पार करते हैं ? हे मुनि ! उसे मुझे भली प्रकार वतायें, क्योंकि इस धर्म को आप वैसा जानते हैं ॥ ४ ॥

भगवान्—

मैं तुम्हें उस धर्म को वताऊँगा, जिसे इसी जन्म में स्वयं साक्षात्कार कर, जानकर स्मृतिमान् हो विचरण करते हुए संसार में तृष्णा को पार कर जाता है ॥ ५ ॥

मेत्तगू—

हे महर्षि ! मैं उस उत्तम धर्म का अभिनन्दन करता हूँ जिसे जानकर स्मृतिमान् हो विचरने वाला संसार में तृष्णा को पार करता है ॥ ६ ॥

भगवान्—

ऊपर, नीचे, तिरछे तथा वीच में जो भी जानते हो उनमें तृष्णा तथा राग को त्याग कर मन को भव में न लगने दे ॥ ७ ॥

इस प्रकार स्मृतिमान् और अप्रमादी होकर विहरने वाला भिक्षु ममत्व, जन्म, वुढ़ापा, शोक और विलाप को छोड़ कर विचरण करते यहीं जानकर दुःख को त्याग दे ॥ ८ ॥

मेत्तगू—

महर्षि की इस वात का अभिनन्दन करता हूँ। हे गौतम ! आपने निर्वाण को सुन्दर ढंग से बतलाया। अवश्य ही भगवान् ने दुःख का प्रहाण कर लिया है, क्योंकि आपने वैसा ही इस धर्म को जान लिया है ॥ ९ ॥

ते चापि नून[1] पजहेय्य[2] दुक्खं, ये त्वं मुनि अट्ठितं ओवदेय्य।
तं तं नमस्सामि समेच्च नाग,अप्पेव मं भगवा अट्ठितं ओवदेय्य ॥१०॥
यं ब्राह्मणं वेदगुं आभिजञ्ञा, अकिञ्चनं कामभवे असत्तं।
अद्धा हि सो ओघमिमं अतारि, तिण्णो च पारं अखिलो अकंखो ॥११॥
विद्वा च सो[3] वेदगू नरो इध, भवाभवे संगमिमं विसज्ज।
सो वीततण्हो अनिघो निरासो,अतारि सो जातिजरं'ति ब्रूमी'ति ॥१२॥

मेत्तगूमाणवपुच्छा निट्ठिता।

६—धोतकमाणवपुच्छा (५, ६)

पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं (इच्चायस्मा धोतको),
वाचाभिकंखामि महेसि तुय्हं।
तव सुत्वान निग्घोसं, सिक्खे निब्बाणमत्तनो ॥ १ ॥
तेन हातप्पं करोहि (धोतकाति भगवा), इधेव निपको सतो।
इतो सुत्वान निग्घोसं, सिक्खे निब्बाणमत्तनो ॥ २ ॥
पस्सामहं देवमनुस्सलोके, अकिञ्चनं ब्राह्मणं इरियमानं।
तं तं नमस्सामि समन्तचक्खु, पमुञ्च मं सक्क कथंकथाहि ॥ ३ ॥
नाहं गमिस्सामि[4] पमोचनाय, कथंकथिं धोतक कञ्चि लोके।
धम्मं च सेट्ठं आजानमानो[5], एवं तुवं ओघमिमं तरेसि ॥ ४ ॥

१-२. नूनप्पजहेय्य—म०।
३. यो—म०, सी०।
४. सहिस्सामि—म०, समिस्सामि—स्या०।
५. अभिजानमानो—म०।

निश्चय ही वे भी दुःख को त्याग देंगे, जिन्हें हे मुनि ! आप सदा उपदेश देंगे। हे नाग ! (=उत्तम पुरुष !) मैं आपके पास आकर नमस्कार करता हूँ। बहुत अच्छा हो कि भगवान् ! मुझे सदा उपदेश दें।। १० ।।

भगवान्—

जिस ब्राह्मण को ज्ञानी, अकिंचन, कामों में अनासक्त जानना तो समझ लेना कि अवश्य ही उसने इस (संसार रूपी) बाढ़ को पार कर लिया है और वह पार उतरकर चित्त-मल तथा सन्देह से रहित हो गया है ।। ११ ।।

विज्ञ, ज्ञानी वह मनुष्य पुनर्जन्म की आसक्ति को छोड़कर, तृष्णा-रहित हो, पाप-रहित हो, कामना-रहित हो जन्म तथा बुढ़ापा को पार कर लिया है—ऐसा मैं कहता हूँ ।। १२ ।।

मेत्तगूमाणवपुच्छा समाप्त।

६—धोतकमाणवपुच्छा (५, ६)

धोतक—

हे भगवान् ! मैं आप से यह पूछता हूँ, मुझे बतायें। हे महर्षि ! मैं आपकी बात की आकांक्षा करता हूँ। आपकी बात को सुनकर अपनी निर्वाण-प्राप्ति के लिए अभ्यास करूँगा ।। १ ।।

भगवान्—

तो तुम प्रयत्न करो। यहीं एकान्तवासी और स्मृतिमान् हो, यहाँ बात सुनकर, अपनी निर्वाण-प्राप्ति के लिए अभ्यास करो ।। २ ।।

धोतक—

मैं देव और मनुष्य लोक में आप अकिंचन ब्राह्मण को विचरण करते हुए देखता हूँ। हे समन्तचक्षु ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे शक्र ! (=श्रेष्ठ !) मुझे संशयों से मुक्त करें ।। ३ ।।

भगवान्—

हे धोतक ! मैं संसार में किसी संशयी को मुक्त करने नहीं जाऊँगा। जब तुम श्रेष्ठ धर्म को जान लोगे तो इस प्रकार तुम इस बाढ़ को पार कर जाओगे ।। ४ ।।

अनुसास ब्रह्मे करुणायमानो, विवेकधम्मं यमहं विजञ्ञं।
यथाहं आकासो'व अव्यापज्जमानो, इधेव सन्तो असितो चरेय्य ॥५॥
कित्तयिस्सामि ते सन्तिं (धोतकाति भगवा) दिट्ठे धम्मे अनीतिहं।
यं विदित्वा सतो चरं, तरे लोके विसत्तिकं ॥६॥

तं चाहं अभिनन्दामि, महेसिं[1] सन्तिमुत्तमं।
यं विदित्वा सतो चरं, तरे लोके विसत्तिकं ॥ ७ ॥

यं किञ्चि संपजानासि (धोतकाति भगवा), उद्धं अधो तिरियंचापि मज्झे।
एतं विदित्व संगो'ति लोके, भवाभवाय मा'कासि तण्ह'न्ति ॥ ८ ॥

धोतकमाणवपुच्छा निट्ठिता।

७—उपसीवमाणवपुच्छा (५, ७)

एको अहं सक्क महन्तमोघं (इच्चायस्मा उपसीवो)
अनिस्सितो नो विसहामि तारितुं।
आरम्मणं ब्रूहि समन्तचक्खु, यं निस्सितो ओघमिमं तरेय्य ॥ १ ॥
आकिञ्चञ्ञं पेक्खमानो सतीमा (उपसीवाति भगवा),
नत्थीति निस्साय तरस्सु ओघं।
कामे पहाय विरतो कथाहि, तण्हक्खयं रत्तमहाभिपस्स[2] ॥ २ ॥
सब्बेसु कामेसु यो वीतरागो (इच्चायस्मा उपसीवो),
आकिञ्चञ्ञं निस्सितो हित्वमञ्ञं[3]।
सञ्ञाविमोक्खे परमे विमुत्तो[4],
तिट्ठे नु सो तत्थ अनानुयायी[5] ॥३॥

---

१. महेसिं—म०।

२. नत्तमहा'भिपस्स—म०, सी०।

३. हित्वा मञ्ञं—म०।

४. धिमुत्तो—म०।

५. अनानुवायी—स्या०, क०।

धोतक—

हे ब्रह्मा ! करुणा करते हुए मुझे उपदेश दें जिससे कि मैं विवेकी धर्म को जान लूँ और आकाश के समान निर्मल हो यहीं शान्त हो, अनासक्त हो विचरण करूँ ॥ ५ ॥

भगवान्—

मैं तुम्हें शान्ति को बताऊँगा, जिसे इसी जन्म में साक्षात् कर, जान कर, स्मृतिमान् हो विचरण करोगे और संसार में तृष्णा को पार कर लोगे ॥ ६ ॥

धोतक—

महर्षि ! मैं उस उत्तम शान्ति को भी प्रणाम करता हूँ, जिसे जानकर, स्मृतिमान् हो विचरण करते संसार में तृष्णा को पार कर जाय ॥ ७ ॥

भगवान्—

ऊपर, नीचे, तिरछे तथा बीच में जो कुछ भी जानते हो, उसे संसार में आसक्ति जानकर पुनर्जन्म के लिए तृष्णा न करो ॥ ८ ॥

धोतकमाणवपुच्छा समाप्त।

७—उपसीवमाणवपुच्छा (५, ७)

उपसीव—

हे शक्र ! मैं अकेला हूँ। यह बहुत बड़ी बाढ़ है। बिना सहारा के मैं इसे पार करने में समर्थ नहीं हूँ। हे समन्तचक्षु ! कोई आलम्बन बतायें, जिसके सहारे मैं इस बाढ़ को पार कर जाऊँ ॥ १ ॥

भगवान—

आकिंचन्यायतन को देखते हुए, स्मृतिमान् हो 'कुछ नहीं है' को आलम्बन करके बाढ़ को पार कर जाओ। कामों को त्याग कर, संशयों से विरत हो, रात-दिन तृष्णा-क्षय का चिन्तन करो ॥ २ ॥

उपसीव—

जो सभी कामों से विरत है, जिसने आकिंचन्यायतन के सहारे अन्य सबको[1] त्याग दिया है, (सातों) संज्ञा विमोक्षों में उत्तम आकिंचन्यायतन में विमुक्त हो तो क्या वह वहाँ गए बिना रह सकता है ? ॥ ३ ॥

---

१. अन्य नीचे की छः प्रकार की समापत्तियों को त्याग कर—अट्ठकथा।

सब्बेसु कामेसु यो वीतरागो (उपसीवाति भगवा),
आकिञ्चञ्ञं निस्सितो हित्वमञ्ञं ।
सञ्ञाविमोक्खे परमे विमुत्तो,
तिट्ठेय्य सो तत्थ अनानुयायी ॥४॥

तिट्ठे चे सो तत्थ अनानुयायी, पूगं'पि वस्सानं समन्तचक्खु ।
तत्थेव सो सीति सिया विमुत्तो, भवेथ विञ्ञाणं तथाविधस्स ॥५॥

अच्ची यथा वातवेगेन खित्तो[1] (उपसीवाति भगवा),
अत्थं पलेति न उपेति संखं ।
एवं मुनी नामकाया विमुत्तो, अत्थं पलेति न उपेति संखं ॥६॥

अत्थं गतो सो उद वा सो नत्थि, उदाहु वे सस्सतिया अरोगो ।
तं मे मुनि साधु वियाकरोहि, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥७॥

अत्थं गतस्स न पमाणमत्थि (उपसीवाति भगवा),
येन नं वज्जु[2] तं तस्स नत्थि ।
सब्बेसु धम्मेसु समूहतेसु, समूहता वादपथा'पि सब्बे'ति ॥८॥

उपसीवमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

८—नन्दमाणवपुच्छा (५, ८)

सन्ति लोके मुनयो[3] (इच्चायस्मा नन्दो), जना वदन्ति तयिदं कथंसु ।
ञाणूपपन्नं नो मुनिं वदन्ति, उदाहु वे जीवितेनूपपन्नं ॥१॥

न दिट्ठिया न सुतिया न ञाणेन, मुनीध नन्द कुसला वदन्ति ।
विसेनिकत्वा अनिघा[4] निरासा, चरन्ति ये ते मुनयो'ति ब्रूमि ॥२॥

---

१. खित्ता—सी०, म०; खित्तं—स्या० ।
२. वज्जुं—म० ।
३. मुनि नो—स्या०, क० ।
४. अनीघा—म० ।

भगवान्—

जो सभी कामों से विरत है, जिसने आकिंचन्यायतन के सहारे अन्य सबको त्याग दिया है, (सातों) संज्ञा-विमोक्षों में उत्तम आकिंचन्यायतन में विमुक्त हो, तो वह वहाँ गए विना रह सकता है ॥ ४ ॥

उपसीव—

हे समन्तचक्षु ! यदि वह वहाँ गए विना भी वहुत वर्षों तक रहे तो उस प्रकार के व्यक्ति का विज्ञान वहीं (=आकिंचन्यायतन में ही) विमुक्त और शांत हो जाय ॥ ५ ॥

भगवान्—

जैसे चिनगारी तेजी से फेंकने पर वुझ जाता है, फिर दिखायी नहीं देती, इसी प्रकार मुनि नाम-काय से विमुक्त होकर वुझ जाता है, फिर दिखायी नहीं देता ॥ ६ ॥

उपसीव—

वह वुझ गया या वह नहीं है अथवा वह अपरिवर्तनशील और शाश्वत हो गया है ? हे मुनि ! उसे मुझे भली प्रकार वतायें, क्योंकि आपने इस धर्म को वैसा जान लिया है ॥ ७ ॥

भगवान् —

वुझ गए का कोई प्रमाण नहीं है, जिससे उसे वतलाया जाता, वह उसे नहीं है । सारे धर्मों के शान्त हो जाने पर सभी वादपथ भी शान्त हो गए ॥८॥

उपसीवमाणवपुच्छा समाप्त ।

८—नन्दमाणवपुच्छा (५, ८)

नन्द—

लोग कहते हैं कि संसार में मुनि हैं, सो किस प्रकार ? ज्ञान के कारण किसी को मुनि कहते हैं अथवा आजीविका के कारण ? ॥ १ ॥

भगवान्—

नन्द ! पण्डित जन न दृष्टि के कारण, न श्रुति के कारण और न ज्ञान के कारण यहाँ किसी को मुनि कहते हैं । जो शोक, पाप और तृष्णा से रहित हो विचरण करते हैं, उन्हें मैं मुनि कहता हूँ ॥ २ ॥

ये केचि'मे समणब्राह्मणासे (इच्चायस्मा नन्दो),
दिट्ठस्सुतेना'पि वदन्ति सुद्धिं।
सीलब्बतेनापि वदन्ति सुद्धिं, अनेकरूपेन वदन्ति सुद्धिं।
कच्चिसु[1] ते भगवा तत्थ यता चरन्ता,
अतारुं जातिं च जरं च मारिस।
पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥३॥

ये केचिमे समणब्राह्मणासे (नन्दाति भगवा),
दिट्ठस्सुतेनापि वदन्ति[2] सुद्धिं।
सीलब्बतेनापि वदन्ति सुद्धिं, अनेकरूपेन वदन्ति सुद्धिं।
किञ्चापि ते तत्थ यता चरन्ति, नातरिंसु जातिजरं'ति ब्रूमि ॥४॥

ये केचिमे समणब्राह्मणासे (इच्चायस्मा नन्दो),
दिट्ठस्सुतेनापि वदन्ति सुद्धिं।
सीलब्बतेनापि वदन्ति सुद्धिं, अनेकरूपेन वदन्ति सुद्धिं।
सचे मुनि ब्रूसि अनोघतिण्णे, अथ को चरहि देवमनुस्सलोके।
अतारि जातिं च जरं च मारिस, पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥५॥

नाहं सब्बे समणब्राह्मणासे (नन्दाति भगवा), जातिजराय
निवुता'ति ब्रूमि।
येसीध दिट्ठं'व सुतं मुतं वा, सीलब्बतं वापि पहाय सब्बं।
अनेकरूपं'पि पहाय सब्बं, तण्हं परिञ्ञाय अनासवासे।
ते वे[3] नरा ओघतिण्णाति ब्रूमि ॥६॥

एताभिनन्दामि वचो महेसिनो, सुकित्तितं गोतम'नूपधीकं।
येसीध दिट्ठं' व....पे०....अनासवासे।
अहम्पि ते ओघतिण्णाति ब्रूमी'ति ॥७॥

नन्दमाणवपुच्छा निट्ठिता।

---

१. कच्चिस्सु—म०। २. दिट्ठेन सुतेनापि—सी०। ३. चे—म०।

नन्द—

जो कोई श्रमण-ब्राह्मण हैं, वे देखने और सुनने से भी शुद्धि बताते हैं, शील-व्रत से भी शुद्धि बताते हैं, अनेक प्रकार से शुद्धि बताते हैं। क्या हे भगवान् ! हे मार्ष ! इस प्रकार उसमें संयमी हो विचरण करने वालों ने जन्म और बुढ़ापा को पार कर लिया है ? भगवान् ! मैं आपसे पूछ रहा हूँ; उसे मुझे बतायें ॥३॥

भगवान्—

जो कोई श्रमण-ब्राह्मण हैं, वे देखने और सुनने से भी शुद्धि बताते हैं, अनेक प्रकार से शुद्धि बताते हैं। यद्यपि वे उसमें संयमी हो विचरण करते हैं, उन्होंने जन्म और बुढ़ापा को पार नहीं कर लिया है—ऐसा मैं कहता हूँ ॥ ४ ॥

नन्द—

जो कोई श्रमण-ब्राह्मण हैं, वे देखने और सुनने से भी शुद्धि बताते हैं, शील-व्रत से भी शुद्धि बताते हैं, अनेक प्रकार से शुद्धि बताते हैं। यदि हे मुनि ! आप उन्हें बाढ़ से पार नहीं बताते हैं तो किसने देव-मनुष्य लोक में मार्ष ! जन्म और बुढ़ापा को पार किया है ? भगवान् ! मैं आपसे पूछता हूँ, मुझे बतायें ॥ ५ ॥

भगवान्—

मैं सभी श्रमण-ब्राह्मण को 'जन्म और बुढ़ापा से आच्छादित हैं'—ऐसा नहीं कहता। जिन्होंने यहाँ सारे देखे, सुने, विचारे या सारे शील-व्रत को त्याग दिया है, सारे अनेक रूपों को त्याग दिया है, जो तृष्णा को जानकर आश्रव-रहित हो गए हैं, उन्हीं मनुष्यों को मैं "बाढ़ पार कर गए हैं"–ऐसा कहता हूँ ॥ ६ ॥

नन्द—

महर्षि की इस बात का मैं अभिनन्दन करता हूँ। हे गौतम ! आपने निर्वाण को सुन्दर ढंग से बतलाया। जिन्होंने यहाँ सारे देखे, सुने, विचारे या सारे शील-व्रत को त्याग दिया है, सारे अनेक रूपों को त्याग दिया है, जो तृष्णा को जानकर आश्रव-रहित हो गए हैं, मैं भी उन्हें "बाढ़ को पार किया हुआ" कहता हूँ ॥ ७ ॥

नन्दमाणवपुच्छा समाप्त।

९—हेमकमाणवपुच्छा (५, ९)

ये मे पुब्बे वियाकंसु (इच्चायस्मा हेमको),
हुरं गोतमसासना, 'इच्चासि इति भविस्सति'।
सब्बं तं इतिहीतिहं, सब्बं तं तक्कवड्ढनं।
नाहं तत्थ अभिरमिं[1] ॥१॥

त्वं च मे धम्ममक्खाहि, तण्हानिग्घातनं मुनि।
यं विदित्वा सतो चरं, तरे लोके विसत्तिकं ॥२॥

इध दिट्ठसुतमुतविञ्ञातेसु, पियरूपेसु हेमक।
छन्दराग विनोदनं, निब्बाणपदमच्चुतं ॥ ३ ॥

एतदञ्ञाय ये सता, दिट्ठधम्माभिनिब्बुता।
उपसन्ता च ते सदा, तिण्णा लोके विसत्तिक'न्ति ॥ ४ ॥

हेमकमाणवपुच्छा निट्ठिता।

१०—तोदेय्यमाणवपुच्छा (५, १०)

यस्मिं कामा न वसन्ति (इच्चायस्मा तोदेय्यो), तण्हा यस्स न विज्जति।
कथंकथा च यो तिण्णो, विमोक्खो तस्स कीदिसो ॥ १ ॥

यस्मिं कामा न वसन्ति (तोदेय्याति भगवा), तण्हा यस्स न विज्जति।
कथंकथा च यो तिण्णो, विमोक्खो तस्स नापरो ॥ २ ॥

निरासयो सो उद आससानो, पञ्ञाणवा सो उद पञ्ञकप्पी।
मुनिं अहं सक्क यथा विजञ्ञं, तं मे वियाचिक्ख समन्तचक्खु ॥ ३ ॥

निरासयो[2] सो न सो आससानो, पञ्ञाणवा सो न च पञ्ञकप्पी।
एवं पि तोदेय्य मुनिं विजान, अकिञ्चनं कामभवे असत्त'न्ति ॥ ४ ॥

तोदेय्यमाणवपुच्छा निट्ठिता।

---

१. अभिरमि—सी०। २. निरासओ—म०, सी०।

९—हेमकमाणवपुच्छा (५, ९)

हेमक—

आप गौतम के शासन से पहले जिन लोगों ने मुझे (अपनी धारणा के सम्बन्ध में) बताया, सभी ने कहा—"ऐसा था, ऐसा होगा।" वह सारी बातें कल्पित और तर्क को बढ़ाने वाली थीं, उनमें मेरा मन नहीं लगा ॥ १ ॥

हे मुनि ! आप मुझे तृष्णा को नष्ट करने का धर्म बतायें, जिसे जान स्मृति के साथ विचरण करते संसार में तृष्णा को पार कर ले ॥ २ ॥

भगवान्—

हेमक ! यहाँ दृष्ट श्रुत, ज्ञात प्रिय रूपों के प्रति दृढ़ आसक्ति को जो दूर करना है, वह अच्युत निर्वाण पद है ॥ ३ ॥

जो स्मृतिमान् यह जानकर इसी जन्म में शान्त हो गये हैं, सदा उपशान्त वे संसार में तृष्णा को पार कर गये हैं ॥ ४ ॥

हेमकमाणवपुच्छा समाप्त ।

१०—तोदेय्यमाणवपुच्छा (५, १०)

तोदेय्य—

जिसमें वासनाएँ नहीं हैं जिसे तृष्णा नहीं है और जो सन्देह से परे हो गया है, उसका विमोक्ष कैसा है ? ॥ १ ॥

भगवान्—

जिसमें वासनाएँ नहीं हैं, जिसे तृष्णा नहीं है और जो सन्देह से परे हो गया है, उसका विमोक्ष दूसरा कोई नहीं है ॥ २ ॥

तोदेय्य

वह तृष्णारहित है या तृष्णायुक्त है ? वह प्रज्ञावान् है या प्रज्ञा की प्राप्ति में लगा है ? हे समन्तचक्षु ! आप बतायें जिससे कि मैं मुनि को जान सकूँ ॥ ३ ॥

भगवान्—

वह तृष्णारहित है, न कि तृष्णायुक्त है, वह प्रज्ञावान् है, न कि प्रज्ञा की प्राप्ति में लगा हुआ। हे तोदेय्य ! अकिंचन, कामभव में अनासक्त मुनि को ऐसे भी जानो ॥ ४ ॥

तोदेय्यमाणवपुच्छा समाप्त ।

११—कप्पमाणवपुच्छा (५, ११)

मज्झे सरस्मिं तिट्ठतं। इच्चायस्मा कप्पो , ओघे जाते महब्भये।
जरामच्चुपरेतानं, दीपं पब्रूहि मारिस।
त्वं च मे दीपमक्खाहि, यथयिदं[1] नापरं सिया ॥१॥
मज्झे सरस्मिं तिट्ठतं। कप्पाति भगवा), ओघे जाते महब्भये।
जरामच्चुपरेताल, दीपं पब्रूमि कप्प ते ॥२॥
अकिंचनं अनादानं, एतं दीपं अनापरं।
निब्बाणं इति नं ब्रूमि, जरामच्चुपरिक्खयं ॥ ३ ॥
एतदञ्ञाय ये सता, दिट्ठधम्माभिनिब्बुता।
न ते मारवसानुगा, न ते मारस्स पद्धगू'ति ॥ ४ ॥

कप्पमाणवपुच्छा निट्ठिता।

१२—जतुकण्णिमाणवपुच्छा (५, १२)

सुत्वान'हं वीरमकामकामिं (इच्चायस्मा जतुकण्णी),
ओघातिगं पुट्ठुमकाममागमं।
सन्तिपदं ब्रूहि सहाजनेत्त, यथातच्छं भगवा ब्रूहि मे तं ॥१॥
भगवा हि कामे अभिभुय्य इरियति,
आदिच्चो'व पठविं तेजि तेजसा।
परित्तपञ्ञस्स मे भूरिपञ्ञ, आचिक्ख धम्मं यमहं विजञ्ञं।
जातिजराय इध विप्पहानं ॥२॥
कामेसु विनय गेधं (जतुकण्णीति भगवा),
नेक्खम्मं दट्ठु खेमतो।
उग्गहीतं[2] निरत्तं वा, मा ते विज्जित्थ किञ्चनं ॥३॥
यं पुब्बे तं विसोसेहि, पच्छा ते मा'हु किञ्चनं।
मज्झे चे नो गहेस्ससि, उपसन्तो चरिस्ससि ॥४॥

---

१. यथायिदं—म०। २. उग्गहितं—सी०।

११—कप्पमाणवपुच्छा (५, ११)

कप्प—

हे मार्ष ! जलाशय रूपी संसार के बीच रहने वालों के लिए बुढ़ापा और मृत्युरूपी महाभयानक बाढ़ के आने पर (सुरक्षा के लिए) द्वीप बतायें और, आप ऐसा द्वीप बतायें जहाँ कि यह दुःख फिर न हो ॥ १ ॥

भगवान्—

हे कप्प ! जलाशय रूपी संसार के बीच रहने वालों के लिए बुढ़ापा और मृत्युरूपी महाभयानक बाढ़ के आने पर (सुरक्षा के लिए) मैं तुम्हें द्वीप बता रहा हूँ ॥ २ ॥

अकिंचन और अनासक्ति ही वह द्वीप है, दूसरा नहीं। बुढ़ापा और मृत्यु के अन्त को निर्वाण बताता हूँ ॥ ३ ॥

यह जानकर जो स्मृतिमान् इसी जन्म में शान्त हो गये हैं, वे मार के वशी-भूत नहीं हैं और न तो वे मार के अनुगामी ही हैं ॥ ४ ॥

कप्पमाणवपुच्छा समाप्त।

१२—जतुकण्णिमाणवपुच्छा (५, १२)

जतुकण्णि—

हे सर्वज्ञ[१] ! मैं आपको निष्काम और बाढ़ को पार किया हुआ सुनकर प्रश्न करने की इच्छा से आया हूँ। शान्तिपद को बतायें। यथार्थ रूप से भगवान् मुझे यह बतायें ॥ १ ॥

भगवान् काम-वासनाओं पर विजयी हो उसी प्रकार प्रकाशमान् हो विचरण करते हैं, जिस प्रकार कि सूर्य अपने तेज से पृथ्वी को प्रकाशित करता है। हे महाप्रज्ञ ! मुझ अल्पप्रज्ञ को धर्म बतायें जिससे कि मैं यहाँ जन्म और बुढ़ापा को दूर करना जान लूँ ॥ २ ॥

भगवान्—

निष्कामता को कल्याणकर देखते हुए कामभोगों की आसक्ति को त्याग दो। तुम्हें अपनाने या त्यागने के लिए कुछ न रहे ॥ ३ ॥

जो पूर्व के संस्कार हैं उन्हें नष्ट कर दो और पीछे कुछ न अपनाओ। यदि तुम बीच में कुछ ग्रहण नहीं करोगे तो उपशान्त होकर विचरण करोगे ॥ ४ ॥

---

१. सहाजनेत्ताति = सहजातसब्बञ्ञुतञाणचक्खु—अट्ठकथा।

सब्बतो नामरूपस्मिं, वीतगेधस्स ब्राह्मण।
आसवा'स्स न विज्जन्ति, येहि मच्चुवसं वजे'ति ॥५॥

जतुकण्णिमाणवपुच्छा निट्ठिता।

१३—भद्रावुधमाणवपुच्छा (५, १३)

ओकंजहं तण्हच्छिदं अनेजं (इच्चायस्मा भद्रावुधो)
नन्दिजहं ओघतिण्णं विमुत्तं।
कप्पंजहं अभियाचे सुमेधं,
सुत्वान नागस्स अपनमिस्सन्ति इतो ॥१॥
नाना जना जनपदेहि संगता, तव वीर वाक्यं अभिकंखमाना।
तेसं तुवं साधु वियाकरोहि, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥२॥
आदानतण्हं विनयेथ सब्बं (भद्रावुधाति भगावा),
उद्धं अधो तिरियं चापि मज्झे।
यं यं हि लोकस्मिं उपादियन्ति, तेनेव मारो अन्वेति जन्तुं ॥३॥
तस्मा पजानं न उपादियेथ, भिक्खु सतो किञ्चनं सब्बलोके।
आदानसत्ते इति पेक्खमानो, पजं इमं मच्चुधेय्ये विसत्त'न्ति ॥४॥

भद्रावुधमाणवपुच्छा निट्ठिता।

१४—उदयमाणवपुच्छा (५, १४)

झायिं विरजमासीनं (इच्चायस्मा उदयो), कतकिच्चं अनासवं।
पारगुं सब्बधम्मानं, अत्थि पञ्हेन आगमं।
अञ्ञाविमोक्खं पब्रूहि, अविज्जाय पभेदनं ॥१॥
पहानं कामच्छन्दानं (उदयाति भगवा), दोमनस्सान चूभयं।
थीनस्स च पनूदनं, कुक्कुच्चानं निवारणं ॥२॥
उपेक्खा सतिसंसुद्धं, धम्मतक्कपुरेजवं।
अञ्ञाविमोक्खं पब्रूमि, अविज्जाय पभेदनं ॥ ३ ॥

हे ब्राह्मण ! जो सब प्रकार से नामरूप के प्रति तृष्णारहित है, उसे वासनाएँ नहीं रहतीं जिनसे कि वह मृत्यु के वश में आये ॥ ५ ॥

जतुकण्णिमाणवपुच्छा समाप्त ।

१३—भद्रावुधमाणवपुच्छा (५, १३)

भद्रावुध—

गृहत्यागी, तृष्णारहित, चंचलतारहित, राग-त्यागी, (भव-) बाढ़ को पार किये, विमुक्त, ससार-त्यागी ज्ञानी से मैं याचना करता हूँ। आप श्रेष्ठ (=नाग) के उपदेश को सुनकर (लोग) यहाँ से चले जायेंगे ॥ १ ॥

हे वीर ! आपके वचन की आकांक्षा करते हुए जनपदों से अनेक प्रकार के लोग एकत्रित हुए हैं। आप उन्हें भली प्रकार बतायें, क्योंकि आपको यह धर्म वैसा ज्ञात है ॥ २ ॥

भगवान्—

ऊपर, नीचे, तिरछे और बीच में सारी आसक्ति रूपी तृष्णा को त्याग दो। संसार में लोग जो-जो अपनाते हैं, उसी के कारण मार मनुष्य के पीछे पड़ जाता है ॥ ३ ॥

इसलिए तृष्णा में आसक्त, मृत्यु-राज्य में लीन इस प्रजा को देखते हुए स्मृतिमान् भिक्षु सारे संसार में किसी के प्रति आसक्ति न करे ॥ ४ ॥

भद्रावुधमाणवपुच्छा समाप्त ।

१४—उदयमाणवपुच्छा (५, १४)

उदय—

ध्यानी, मलरहित, कृतकृत्य, आश्रवरहित, सभी धर्मों में पारंगत, मैं आपके पास प्रश्न करने आया हूँ। आज्ञा की विमुक्ति[1] और अविद्या के नाश को बतायें ॥ १ ॥

भगवान्—

काम-रागों और दौर्मनस्य—इन दोनों का त्याग, स्त्यान (=शारीरिक आलस्य) को नष्ट करना, कौकृत्य (=सन्देह) का निवारण, उपेक्षा, स्मृति की पारिशुद्धि और धार्मिक विचार से उत्पन्न आपको मैं आज्ञा की विमुक्ति और अविद्या का नाश बतलाता हूँ ॥ २-३ ॥

---

१. प्रज्ञा विमुक्ति ।

किं सु संयोजनो लोको, किं सु तस्स विचारणं।
किस्स'स्स विप्पहानेन, निब्बाणं इति वुच्चति ॥ ४ ॥
नन्दी संयोजनो लोको, वितक्कस्स विचारणा।
तण्हाय विप्पहानेन, निब्बाणं इति वुच्चति ॥ ५ ॥
कथं सतस्स चरतो, विञ्ञाणं उपरुज्झति।
भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, तं सुणोम वचो तव ॥ ६ ॥
अज्झत्तं च बहिद्धा च, वेदनं नाभिनन्दतो।
एवं सतस्स चरतो, विञ्ञाणं उपरुज्झती'ति ॥ ७ ॥

उदयमाणवपुच्छा निट्ठिता।

१५—पोसालमाणवपुच्छा (५, १५)

यो अतीतं आदिसति (इच्चायस्मा पोसालो), अनेजो छिन्नसंसयो।
पारगुं सब्बधम्मानं, अत्थि पञ्हेन आगमं ॥ १ ॥
विभूतरूपसञ्ञिस्स, सब्बकायप्पहायिनो।
अज्झत्तं च बहिद्धा च, नत्थि किञ्चीति पस्सतो।
ञाणं सक्कानुपुच्छामि, कथं नेय्यो तथाविधो ॥ २ ॥
विञ्ञाणट्ठितियो सब्बा (पोसालाति भगवा), अभिजानं तथागतो।
तिट्ठन्तमेनं जानाति, विमुत्तं तप्परायणं ॥ ३ ॥
आकिञ्चञ्ञासंभवं ञत्वा, नन्दी संयोजनं इति।
एवमेवमभिञ्ञाय, ततो तत्थ विपस्सति।
एतं[1] ञाणं तथं तस्स, ब्राह्मणस्स वुसीमतो'ति ॥ ४ ॥

पोसालमाणवपुच्छा निट्ठिता।

---

१. एवं—म०।

उदय—

लोक का वन्धन क्या है ? उसकी विचरण-भूमि क्या है ? किसके त्याग को निर्वाण कहा जाता है ? ॥ ४ ॥

भगवान्—

लोक का वन्धन राग है । वितर्क उसकी विचरण-भूमि है । तृष्णा का त्याग निर्वाण कहा जाता है ॥ ५ ॥

उदय

स्मृतिमान् व्यक्ति के कैसे विचरण करते विज्ञान का निरोध होता है ? भगवान् के पास पूछने आए हैं । हम आपकी वात सुनना चाहते हैं ॥ ६ ॥

भगवान्—

भीतर और वाहर की वेदना का अभिनन्दन न करते हुए—ऐसे स्मृतिमान् व्यक्ति के विचरण करते विज्ञान का निरोध हो जाता है ॥ ७ ॥

उदयमाणवपुच्छा समाप्त ।

१५—पोसालमाणवपुच्छा (५, १५)

पोसाल—

जो भगवान् भूतकालिक (जन्मों की) वातें वतलाते हैं, जो चंचलता-रहित, संशय-नष्ट और सव धर्मों में पारंगत हैं, आपके पास हम प्रश्न पूछने आए हैं ॥१॥

हे शक्र ! रूप-संज्ञाओं से रहित, सभी अरूप-संज्ञाओं से मुक्त, "भीतर और वाहर कुछ नहीं है"—ऐसा देखने वाले के ज्ञान को पूछता हूँ । वैसे व्यक्ति को आगे कैसे ज्ञान उत्पन्न करना चाहिए ? ॥ २ ॥

भगवान्—

विज्ञान की सभी स्थितियों के ज्ञाता तथागत, स्थिर, विमुक्त और विमुक्ति-परायण व्यक्ति को जानते हैं ॥ ३ ॥

आकिंचन्यायतन को उत्पन्न करने वाले कर्म-संस्कार को जानकर, राग को वन्धन समझकर—ऐसा जान वहाँ विपश्यना करता है'[1] उस पूर्णता को प्राप्त ब्राह्मण का यह ज्ञान यथार्थ होता है ॥ ४ ॥

पोसालमाणवपुच्छा समाप्त ।

---

१. वहाँ, वह आकिंचन्यायतन समापत्तिसे उठकर उस समापत्ति की अनित्य आदि के तौर पर विपस्यना करता है—अट्ठकथा ।

१६—मोघराजमाणवपुच्छा (५, १६)

द्वाहं सक्कं अपुच्छिस्सं (इच्चायस्मा मोघराजा),
न मे व्याकासि चक्खुमा ।
याव ततियं च देवीसि, व्याकरोतीति मे सुतं ॥१॥

अयं लोको परो लोको, ब्रह्मलोको सदेवको ।
दिट्ठिं ते नाभिजानामि, गोतमस्स यसस्सिनो ॥२॥

एवं अभिक्कन्तदस्साविं, अत्थि पञ्हेन आगमं ।
कथं लोकं अवेक्खन्तं, मच्चुराजा न पस्सति ॥३॥

सुञ्ञतो लोकं अवेक्खस्सु, मोघराज[1] सदा सतो ।
अत्तानुदिट्ठिं उहच्च, एवं मच्चुतरो सिया ।
एवं लोकं अवेक्खन्तं, मच्चुराजा न पस्सती'ति ॥४॥

मोघराजमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

१७—पिंगियमाणवपुच्छा (५, १७)

जिण्णो'हमस्मि अबलो वीतवण्णो (इच्चायस्मा पिंगियो) ।
नेत्ता न सुद्धा सवनं न फासु ।
मा'हं नस्सं मोमुहो अन्तराय ।
आचिक्ख धम्मं यमहं विजञ्ञं ।
जातिजराय इध विप्पहानं ॥१॥

दिस्वान रूपेसु विहञ्ञमाने (पिंगियाति भगवा),
रुप्पन्ति रूपेसु जना पमत्ता ।
तस्मा तुवं पिंगिय अप्पमत्तो,
जहस्सु रूपं अपुनब्भवाय ॥२॥

दिसा चतस्सो विदिसा चतस्सो, उद्धं अधो दस दिसता इमायो ।

---

१. मोघराजा—सी० ।

१६—मोघराजमाणवपुच्छा (५, १६)

मोघराज—

हे शक्र ! मैंने दो बार आपसे प्रश्न किया। चक्षुष्मान् ! आपने मेरा उत्तर नहीं दिया। मैंने सुना है कि देवर्षि ! तीसरी बार उत्तर देते हैं ॥ १ ॥

यह लोक, परलोक तथा देव सहित ब्रह्मलोक हैं। आप यशस्वी गौतम की-दृष्टि मैं नहीं जानता ॥ २ ॥

इस प्रकार विशुद्धदर्शी ! मैं आपके पास प्रश्न पूछने आया हूँ। संसार को किस रूप में देखने वाले को मृत्युराज नहीं देख पाता ? ॥ ३ ॥

भगवान्—

हे मोघराज ! सदा स्मृतिमान् हो शून्य के रूप को देखो। इस प्रकार आत्म-दृष्टि का नाशकर मृत्यु को पार कर जाओगे। इस रूप में संसार को देखने वाले को मृत्युराज नहीं देख पाता ॥ ४ ॥

मोघराजमाणवपुच्छा समाप्त।

१७—पिंगियमाणवपुच्छा (५, १७)

पिंगिय—

मैं जीर्ण हूँ, दुर्बल हूँ और मेरी सुन्दरता जाती रही[१], मेरे नेत्र शुद्ध नहीं, कान ठीक नहीं। मुझे धर्म का उपदेश करें जिसे जानकर यहाँ मैं जन्म-जरा का अन्त कर लूँ और बीच में मोह के साथ न मरूँ ॥ १ ॥

भगवान्—

रूपों के कारण परेशान, रूपों के कारण नाश को प्राप्त होने वाली प्रमत्त जनता को देखकर पिंगिय ! अप्रमत्त बनो और रूप का अन्त करो, जिससे कि आवागमन बन्द हो ॥ २ ॥

---

१. पिंगिय की अवस्था एक सौ बीस वर्ष थी—अट्ठकथा।

न तुय्हं अदिट्ठं असुतं मुतं वा,
अथो अविञ्ञातं किञ्चनमत्थि[1] लोके।
आचिक्ख धम्मं यमहं विजञ्ञं,
जातिजराय इध विप्पहानं ॥३॥
तण्हा'धिपन्ने मनुजे पेक्खमानो (पिंगियाति भगवा),
सन्ताप जाते जरसा परेते।
तस्मा तुवं पिंगिय अप्पमत्तो,
जहस्सु तण्हं अपुनब्भवाया'ति ॥४॥

पिंगियमाणवपुच्छा निट्ठिता।

१८—पारायणसुत्तं (५, १८)

इदमवोच भगवा मगधेसु विहरन्तो पासाणके चेतिये, परिचारक सोळसानं[2] ब्राह्मणानं अज्झिट्ठो पुट्ठो पुट्ठो पञ्हे[3] व्याकासि[4]। एकमेकस्स चे'पि पञ्हस्स अत्थं अञ्ञाय धम्मं अञ्ञाय धम्मानुधम्मं पटिपज्जेय्य, गच्छेय्येव जरामरणस्स पारं। पारंगमनीया इमे धम्मा'ति; तस्मा इमस्स धम्मपरियायस्स पारायणं[5] त्वेव[6] अधिवचनं।

अजितो तिस्समेत्तेय्यो, पुण्णको अथ मेत्तगू।
धोतको उपसीवो च, नन्दो च अथ हेमको ॥ १ ॥
तोदेय्यकप्पा दुभयो, जतुकण्णी च पण्डितो।
भद्रावुधो उदयो च, पोसालो चापि ब्राह्मणो।
मोघराजा च मेधावी, पिंगियो च महाइसि ॥ २ ॥
एते बुद्धं उपागञ्छुं, सम्पन्नचरणं इसिं।
पुच्छन्ता निपुणे पञ्हे, बुद्धसेट्ठं उपागमुं ॥ ३ ॥
तेसं बुद्धो व्याकासि, पञ्हे पुट्ठो यथातथं।
पञ्हानं वेय्याकरणेन[7], तोसेसि ब्राह्मणे मुनि ॥ ४ ॥
ते तोसिता चक्खुमता, बुद्धेनादिच्चबन्धुना।
ब्रह्मचरियमचरिंसु, वरपञ्ञस्स सन्तिके ॥ ५ ॥

---

१. किञ्चि नत्थि—रो०; किञ्चि मत्थि—स्या०। २. परिचारकसोलसन्नं—स्या०। ३. पञ्हे—म०। ४. ब्याकासि—म०। ५–६. पारायनन्त्वेव—म०। ७. वेय्याकरणे—म०।

पिंगिय—

चार दिशायें, चार अनुदिशायें, ऊपर और नीचे—ये दश दिशायें हैं, इस लोक में आप द्वारा कुछ भी अदृष्ट, अश्रुत या अविचारित अथवा अज्ञात नहीं है, आप मुझे धर्म वतलायें जिसे जानकर मैं यहाँ जन्म और बुढापे का अन्त कर डालूं ॥ ३ ॥

भगवान्—

तृष्णा के वशीभूत, सन्तप्त, बुढ़ापे से परेशान, मनुष्यों को देखकर पिंगिय। तुम अप्रमत्त हो फिर जन्म न लेने के लिए तृष्णा का त्याग कर दो ॥ ४ ॥

पिंगियमाणवपुच्छा समाप्त।

१८—पारायणसुत्त (५, १८)

भगवान् ने मगध में पाषाणक चैत्य में विहार करते हुए यह कहा था। (वावरी के) सोलह ब्राह्मण शिष्यों के पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर दिया। यदि एक-एक भी प्रश्न के अर्थ, धर्म और धर्मानुधर्म को जानकर उस पर चले तो जरा-मरण से पार चला ही जाय। ये पार की ओर ले जाने वाले धर्म हैं, इसलिए इस धर्मोपदेश का 'पारायण' ही नाम है।

अजित, तिस्समेत्तेय्य, पुण्णक और मेत्तगू, धोतक और उपसीव, नन्द और हेमक, तोदेय्य, कप्प दोनों और पण्डित जातुकण्णि, भद्रावुध, उदय और पोसाल ब्राह्मण, बुद्धिमान् मोघराज और महर्षि पिंगिय—ये आचारवान् ऋषि बुद्ध के पास पहुँचे, निपुण प्रश्न पूछते हुए श्रेष्ठ बुद्ध के पास गए ॥ १-३ ॥

बुद्ध ने उनके पूछे प्रश्नों के यथार्थ रूप से उत्तर दिए। मुनि ने प्रश्नों के उत्तर से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर दिया ॥ ४ ॥

आदित्यबन्धु, चक्षुष्मान् बुद्ध द्वारा सन्तुष्ट किये जाने पर उन्होंने श्रेष्ठ प्रज्ञा वाले (बुद्ध) के पास ब्रह्मचर्य का पालन किया ॥ ५ ॥

एकमेकस्स पञ्हस्स, यथा बुद्धेन देसितं।
तथा यो पटिपज्जेय्य, गच्छे पारं अपारतो ॥ ६ ॥
अपारा पारं गच्छेय्य, भावेन्तो मग्गमुत्तमं।
मग्गो सो पारं गमनाय, तस्मा पारायणं इति ॥ ७ ॥
पारायणमनुगायिस्सं (इच्चायस्मा पिंगियो),
यथा अद्दक्खि तथा अक्खासि, विमलो भूरिमेधसो।
निक्कामो निब्बनो[1] नाथो, किस्स हेतु मुसा भणे ॥८॥
पहीनमलमोहस्स, मानमक्खप्पहायिनो।
हन्दाहं कित्तयिस्सामि, गिरं वण्णूपसंहितं ॥ ९ ॥
तमोनुदो बुद्धो समन्तचक्खु, लोकन्तगू सब्बभवातिवत्तो।
अनासवो सब्बदुक्खप्पहीनो, सच्चव्हयो ब्रह्मे उपासितो मे ॥१०॥
दिजो[2] यथा कुब्बनकं पहाय, बहुप्फलं काननं आवसेय्य।
एवं'पहं अप्पदस्से पहाय, महोदधिं हंसरिव'ज्झपत्तो[3] ॥११॥
ये'मे पुब्बे वियाकंसु, हुरं गोतमसासना 'इच्चासि इति भविस्सति'।
सब्बं तं इतिहीतिहं, सब्बं तं तक्कवड्ढनं ॥१२॥
एको तमनुदासीनो, जातिमा सो पभंकरो।
गोतमो भूरिपञ्ञाणो, गोतमो भूरिमेधसो ॥१३॥
यो मे धम्ममदेसेसि, सन्दिट्ठिकमकालिकं।
तण्हक्खयमनीतिकं, यस्स नत्थि उपमा क्वचि ॥१४॥
किं नु तम्हा विप्पवस'सि, मुहुत्तमपि पिंगिय।
गोतमा भूरिपञ्ञाणा, गोतमा भूरिमेधसा ॥१५॥
यो ते धम्मदेसेसि, संदिट्ठिकमकालिकं।
तण्हक्खयमनीतिकं, यस्स नत्थि उपमा क्वचि ॥१६॥

---

१. निब्बुता–म०। २. द्विजो–सी०। ३. हंसोरिव अज्झपत्ते–म०।

एक-एक प्रश्न का जैसा कि बुद्ध ने उत्तर दिया, वैसा जो करेगा, तो वह इस पार से उस पार चला जायेगा ॥ ६ ॥

उत्तम मार्ग का अभ्यास करता हुआ वह इस पार से उस पार चला जायेगा, वह पार जाने का मार्ग है, इसलिए इसे पारायण कहा जाता है ॥ ७ ॥

पिंगिय—

मैं पारायण का वर्णन करूँगा, जिस निर्मल महाप्रज्ञ ने जैसा देखा, वैसा बताया। नाथ निष्काम हैं, तृष्णा रहित हैं। वे असत्य क्यों बोलें ? ॥८॥

मोहमल रहित, मान और म्रक्ष रहित भगवान् के मधुर स्वर का वर्णन मैं करूँगा ॥ ९ ॥

हे ब्राह्मण ! अन्धकार को दूर करने वाले, बुद्ध, समन्तचक्षु (=सर्वदर्शी) लोक के अन्त के जानकर, सारे भवों से पार हो गए, अनाश्रव, सारे दुःखों का प्रहाण करने वाले, सत्य नाम वाले मेरे द्वारा उनको उपासना की गई है ॥१०॥

जैसे पक्षी छोटे वन को छोड़कर बहुत फल वाले जंगल में बसता है, वैसे ही मैं अल्पदर्शियों को छोड़ कर महाजलाशय[1] में जाने वाले हंस की भाँति बुद्ध के पास पहुँचा ॥ ११ ॥

गौतम (बुद्ध) के शासन से बाहर के जो पहले मुझ से कहते थे—"ऐसा था, ऐसा होगा" वह सभी काल्पनिक था, वह सभी तर्क पर आधारित था ॥१२॥

अन्धकार को दूर करने वाले एक ही वे श्रेष्ठ हैं, वे प्रकाश देने वाले हैं, गौतम महाज्ञानी हैं; गौतम महाप्रज्ञावान् हैं ॥ १३ ॥

जिन्होंने मुझे आँखों के सामने तत्काल फलदायी, तृष्णा को नाश करने वाले और दुःख को दूर करने वाले धर्म का उपदेश दिया, जिसकी किसी से उपमा नहीं दी जा सकती ॥ १४ ॥

हे पिंगिय ! तुम उन महाज्ञानी गौतम, महाप्रज्ञावान् गौतम से मुहूर्त भर भी अलग रह सकते हो ? ॥ १५ ॥

जिन्होंने तुम्हें आँखों के सामने तत्काल फलदायी, तृष्णा को नाश करने वाले और दुःख को दूर करने वाले धर्म का उपदेश दिया, जिसकी किसी से उपमा नहीं दी जा सकती ॥ १६ ॥

---

१. महोदधि=अनवतप्त (=मानसरोवर) आदि के समान बड़े जलाशय में—अट्ठकथा।

नाहं तम्हा विप्पवसामि, मुहुत्तमपि ब्राह्मण ।
गोतमा भूरिपञ्ञाणा, गोतमा भूरिमेधसा ॥१७॥

यो मे धम्ममदेसेसि, सन्दिट्ठिकमकालिकं ।
तण्हक्खयमनीतिकं, यस्स नत्थि उपमा क्वचि ॥१८॥

पस्सामि नं मनसा चक्खुना'व, रत्तिंदिवं ब्राह्मण अप्पमत्तो ।
नमस्समानो विवसेमि[1] रत्तिं, तेनेव मञ्ञामि अविप्पवासं ॥१९॥

सद्धा च पीती च मनो सती च, नापेन्ति[2] मे गोतमसासनम्हा ।
यं यं दिसं वजति भूरिपञ्ञो, स तेन तेनेव नतो'हमस्मि ॥२०॥

जिण्णस्स मे दुब्बलथामकस्स, तेनेव कायो न पलेति तत्थ ।
संकप्पयत्ताय[3] वजामि निच्चं, मनो हि मे ब्राह्मण तेन युत्तो ॥२१॥

पंके सयानो परिफन्दमानो, दीपा दीपं उपप्लविं[4] ।
अथ'द्दसासिं सम्बुद्धं, ओघतिण्णमनासवं ॥२२॥

यथा अहू वक्कलि मुत्तसद्धो,
भद्रावुधो आळविगोतमो च ।
एवमेव त्व'पि पमुञ्चस्सु सद्धं,
गमिस्ससि त्वं पिंगिय मच्चुधेय्यपारं[5] ॥२३॥

एस भिय्यो पसीदामि, सुत्वान मुनिनो वचो ।
विवत्तच्छद्दो[6] सम्बुद्धो, अखिलो पटिभानवा ॥२४॥

अधिदेवे अभिञ्ञाय, सब्बं वेदि परोवरं[7] ।
पञ्हानन्तकरो सत्था, कंखीनं पटिजानतं ॥२५॥

असंहीरं असंकुप्पं, यस्स नत्थि उपमा क्वचि ।
अद्धा गमिस्सामि न मे'त्थ कंखा,
एवं मं धारेहि अधिमुत्तचित्त'न्ति ॥२६॥

पारायणवग्गो निट्ठितो । निट्ठितो सुत्तनिपातो ।

अट्ठभाणवारपरिमाणाय पाळिया ।

---

१. ववसेमि—सी० । २. नामेन्ति—सी० । ३. संकप्पयन्ताय—म० । ४. उपल्लवि—स्या० । ५. मच्चुधेय्यस्स पारं—म० । ६. विवटच्छदो—म० । ७. वरोवरं—म० ।

हे ब्राह्मण ! मैं महाज्ञानी गौतम, महाप्रज्ञावान् गौतम से मुहूर्त भर भी अलग नहीं रह सकता ॥ १७ ॥

जिन्होंने मुझे आँखों के सामने तत्काल फलदायी, तृष्णा को नाश करने वाले और दुःख को दूर करने वाले धर्म का उपदेश दिया, जिसकी किसी से उपमा नहीं दी जा सकती ॥ १८ ॥

हे ब्राह्मण ! मैं रात-दिन अप्रमत्त हो मन की आँख से ही उन्हें देखता हूँ। नमस्कार करते हुए ही मैं रात व्यतीत करता हूँ। उसी से मैं उनसे अलग रहना नहीं समझता हूँ ॥ १९ ॥

मेरी श्रद्धा, प्रीति, मन और स्मृति गौतम की शिक्षा से नहीं हटतीं। जिन-जिन दिशाओं में महाप्रज्ञ जाते हैं, मैं वहाँ-वहाँ नतमस्तक होता हूँ ॥ २० ॥

जीर्ण, बलहीन मेरा शरीर वहाँ नहीं जा सकता। मैं नित्य मन से जाता हूँ। हे ब्राह्मण ! मेरा मन उनके साथ है ॥ २१ ॥

मैं कीचड़ में सोते[1] छटपटाते हुए एक द्वीप से दूसरे द्वीप पर[2] जाता रहा। तब मैंने (संसार रूपी) बाढ़ से पार हुए, अनाश्रव सम्बुद्ध को देखा ॥ २२ ॥

भगवान्—

जिस प्रकार वक्कलि, भद्रावुध और आलवी गौतम श्रद्धा द्वारा मुक्त हुए, उसी प्रकार तुम भी श्रद्धा करो। पिंगिय ! तुम मृत्यु के राज्य से परे हो जाओगे ॥२३॥

पिंगिय—

मैं मुनि की इस बात को सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हूँ। आप खुले ज्ञान वाले, सम्बुद्ध, चित्तमल-रहित और ज्ञानी हैं ॥ २४ ॥

आप श्रेष्ठ धर्मों को जानकर आर-पार का सब कुछ जान गये। शास्ता सन्देह करने वालों और समझदार लोगों के प्रश्नों का अन्त करने वाले हैं ॥२५॥

निर्वाण अजेय है। अटल है। जिसकी कोई उपमा नहीं। मैं अवश्य उसे प्राप्त करूँगा। उसके विषय में मुझे कोई सन्देह नहीं। हे पूर्ण रूप से मुक्त चित्त वाले ! (भगवान् !)—ऐसा मुझे धारण करें ॥ २६ ॥

पारायणसुत्त समाप्त।

आठ भाणवार के बराबर पालि में सुत्तनिपात समाप्त।

---

१. कामभोग के कीचड़ में सोते—अट्ठकथा।

२. एक शास्ता के पास से दूसरे शास्ता के पास जाता रहा—अट्ठकथा।

पाँच वर्गों, आठ भाणवारों तथा बहत्तर सूत्रों में
संग्रहीत खुद्दकनिकायान्तर्गत

सुत्तनिपात

समाप्त ।

परिशिष्ट

१. उपमा-सूची

—o—

२. नाम-अनुक्रमणी

स

ह

३. शब्द-अनुक्रमणिका

फ

ब

भ

म

—०—